



मासिकचम्-वि०-अनन्यमासायाः पञ्चविंशतितमो प्रश्नः

पण्डितराजमहोदयविरचितम्

जम्बूस्वामिचरितम्

अध्यात्म-कमलमार्तण्डश्च



सशोधक

श्रीजगदीशचन्द्रशास्त्री एम्० ए०



प्रकाशिका

मा०-वि०-अनन्यमासा-समितिः

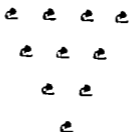


भाषिन १९९१ वि



मूल्यां सार्वभूषणम्

प्रकाशक  
नाथूराम शर्मा  
मंत्री का रिजिस्ट्रार  
दिल्ली, इण्डिया



मुद्रक  
रघुनाथ दिपाजी देसाई,  
श्री मध्य प्रिंटिंग प्रेस,  
१ केन्द्रेवादी गिरजाघर इण्डिया



जिनवाणी भक्त छाला मुसदीलालजी पत्न उम्मदसिंहजी  
 [ भांगे एत प्रपम्पत्ताके रवावी फरदम इकमुज १ १) व दिवे हैं और एतके  
 समस्त प्रप्रीका नवने अधिक प्रचार किया है । ]  
 ग्रामनिधि—१ कुपार लन १८५८ ३



## प्रस्तावना

### कवि राजमल्ल

दिगम्बर-परम्परामें राजमल्ल अथवा रामल्ल नामके कई विद्वान् हो गये हैं। प्रस्तुत विद्वान् पण्डित रामल्ल अथवा कवि राजमल्लके मामसे प्रख्यात थे। आप अपने मामके साथ 'स्याद्वागानवधगणपथ विद्याविशारद' विशेषणका प्रयोग करते हैं। कवि राजमल्लकी रचनाओंके ऊपरसे मात्स्य होता है कि आप जैनागमके बड़े मारी बेठा एक अनु-मनी विद्वान् थे। आपने जैन बाण्यमें पारंगत होनेके लिये कुन्दकुन्द समस्तसूत्र, नेमिचन्द्र, अमृतचन्द्र आदि विद्वानोंके ग्रन्थोंका विशाल तथा सूक्ष्म दृष्टिसे अध्ययन और आलोचन किया था। प० राजमल्ल केवल आचार-शास्त्रके ही पण्डित न थे, बल्कि आपन अभ्यास, काम्य और न्यायमें भी कुशलता प्राप्त की थी, यह आपकी विविध रचनाओंसे स्पष्ट मात्स्य होता है।

प० राजमल्ल स्वयं अपन विषयमें कोई परिचय नहीं देते। इसलिये आप कहींके रहनेवाले थे, आपके गुरुका क्या नाम था इत्यादि बातोंकी जानकारीसे हमें सर्वथा बंचित ही रहना पड़ता है। अटी-सहितकी प्रशस्तिमें एक स्थानपर आप अपनेको हेमचन्द्रकी आश्रा-यक विद्वान् कहकर उल्लेख करते हैं। इससे केवल इतना ही ज्ञात

होता है कि आप हेमचन्द्रकी आज्ञासूक्तों से । पर ये हेमचन्द्र कौन थे इसका कुछ पता नहीं चलता ।

### राजमहलकी कृतियाँ

आजसे अनेक वर्ष पूर्व जब स्व० प० गापालदासजी बरैयाकी इयासे जैन विद्वानोंमें पञ्चाध्यायी नामक ग्रन्थके पठन-याचनका प्रचार हुआ, उस समय छेगोंकी यह माय्यता हो गई कि यह ग्रन्थ अमृतचन्द्र-सूरिकी रचना है । परन्तु छाटीसंहिताके प्रकाशमें आनेपर यह धारणा सर्वथा निर्मूल सिद्ध हुई । और अब तो यह और भी निश्चय-पूर्वक कहा जा सकता है कि पञ्चाध्यायी, छाटीसंहिता, जम्भूस्वामि चरित और अप्यारमकमन्मार्तण्य ये चारों ही कृतियाँ एक ही विद्वान् प० राजमहलके हैं ।

पञ्चाध्यायीके महात्माचरणमें ग्रन्थकार पञ्चाध्यायीको 'ग्रन्थराज' के नामसे उल्लेख करते हैं और इस स्वामिका सिंघनेमें प्रेरित होते हैं इस ग्रन्थको पौष अध्यायोंमें सिंघनेकी प्रतिज्ञा की गई है । दुर्भाग्यसे

१५ सुपतकिशोरजीका कहना है कि कहीं किम हेमचन्द्रका उल्लेख है वे ही वादालकी मठरक हेमचन्द्र आज पढ़ते हैं, यां महुर पच्छ और पुष्कर यनाम्बकी मठरक कुमारोंके पछिष्ण तथा पछान्नि मठरकके पच्छ के और किन्हीं कविने छाटी-संहिताके प्रथम सर्गमें बहुत प्रशंसा की है । ... .. इन्हीं मठरक हेमचन्द्रकी आज्ञासूक्तों में उल्लेख विद्वान्को भी सूचित किया है । इस विषयमें कोई उल्लेख नहीं करना कि कवि राजमहल एक वादालकी विद्वान् थे । आजसे अनेकों हेमचन्द्रका विषय का प्रतिष्ठा न सिंघाकर आज्ञाकी सिंघा है, और पछान्नि के राजमहल आज्ञासूक्तोंमें प्रशंसा होकर छाटी-संहिताके सिंघनेको सूचित किया है । इन्हीं सब सब कवि लिखतली है कि आज सुनि नहीं के बहुत संभव है कि आप पुरस्कारार्थ हैं या आज्ञासूक्तों के पत्रपर प्रेरित हैं । छाटीसंहिताकी मुद्रिका ( मूलिकचन्द्र ग्रन्थमात्र ) पृ २३





ग्रन्थ है। कविने इस रचनाको अनुच्छिद्य और नवीन स्वरूप में सज्जित किया है। इसमें सात सर्ग हैं। इसकी पद्य-संख्या अगम्य १६०० के है। यह ग्रन्थ अमरावती-वशावतस मगधयोत्री साहु इत्यादि पुत्र सभके अभिपति 'फामन' नामके धनिकके लिये बनाया गया था। कविने फामनके वशाका विस्तृत वर्णन करते हुए, फामनके पूर्वजोंका मूल निवासस्थान 'डौकनि' नगरी बताया है। इन फामनने स्वयं ही बैरट नगरके 'ताम्हू' नामक विद्वान्को इत्यादि धर्म-उपदेश किया था। कविने इसी बैरट नगरके जिनान्दयमें रहकर छाटी-सहितकी रचना की है। छाटी-सहितमें कविने बैरट नगरका और इस नगरके स्वामी अकबर बादशाहका विस्तृत वर्णन किया है। यह सब ऐतिहासिक वर्णन छाटी-सहितके कथामुक्त-वर्णन भागके प्रथम सर्गमें उपलब्ध होता है। अन्य छह सर्गोंमें ग्रन्थकारने आठ मूल्यांश, सात व्यसन सम्यदर्शन और भावकके बारह प्रतीका विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। ग्रन्थमें सम्यदर्शनके वर्णन करनेके लिये दो सर्ग और बहिःसाधुमतके लिये एक स्वतंत्र सर्गकी रचना की गई है। ग्रन्थमें अनेक उद्धरण उक्त शब्दोंके रूपमें पाये जाते हैं; जो विशेष करके कविके गोमन्तसार-सटीक ज्ञानि सिद्धान्त-ग्रन्थोंके और पुन्दकुन्द व्याख्यान-ग्रन्थोंके विशाल विस्तृत वाचनको सूचित करते हैं। कवि राजमछुने छाटी-

१ " यह बैरट नगर वही धान पक्या है जिसे बैरट भी कहते हैं और जो अस्तुती वरीय ४ नौके अन्तर्गत है। किसी समय यह निरुद्ध कवना मरण देसकी राजधानी थी और कविने संभवतो पुत्र देसमें रचना करा करत है। छाटी-सहितकी मूलिका पृ १९

संहिताको वि० स० १६४१ में आश्विन-सुक्ला दशमी रविवारके दिन समाप्त किया था ।

कवि राजमछकी तीसरी रचना जन्मस्वामिभरित है । यह ग्रन्थ वि० स० १६३२ में चैत्र वदी ८ के दिन पुनर्वसु नक्षत्रमें बनाकर समाप्त किया गया था । अर्थात् यह काम्य छाटी-संहितासे नौ वर्ष पूर्व बन चुका था । उस समय बर्गलपुर ( धामरे ) में अकबर बादशाहका राज्य था । इसमें भी कविने चगता (चगतार्ह) जातिके शिरोमणि बाबर और हुमायूँ बादशाहका वर्णन करते हुए बादशाह अकबरका सविस्तर वर्णन दिया है, और अकबरके ' जेनिया ' कर और मघकी कदी कचनेका उल्लेख किया है । ग्रन्थकारने इस काम्यको अग्रवाल जातिमें उत्पन्न गर्गीगोत्री साहु ( साहु ) टोडरके लिये बनाया था । ये साहु टोडर महाउदारता, परोपकारिता, दानशीलता, विनयसंपन्नता आदि सर्व गुणोंसे सम्पन्न थे । ये मटानियाँ ( कोल ) नगरके रहनेवाले, काष्ठस्थी कुमारसेनकी आम्नायके थे । कविने छाटी-संहिताकी तरह यहाँ भी साहु टोडरके बरा आदिका विस्तृत वर्णन किया है । साहु टोडरको कविने वैष्णवमतानुयायी गडमछ साहु और अरजानी-पुत्र ठाकुर इष्णाम्नाछ चौबरीका प्रियपात्र, तथा टकसालके काममें बहुत दक्ष बताया है ।

एक बारकी बात है कि ये साहु टोडर सिद्धक्षेत्रकी यात्रा करने मथुरामें आये । वहाँपर बीचमें जन्मस्वामीका स्तूप ( निःसृष्टिस्थान ) बना हुआ था, और उनके चरणोंमें विष्णुचर मुनिका स्तूप था ।

१ कोल जलौगढ़का पुराण नाम है । मटानियाँ जलौगढ़के दक्ष कोल नाम मछस छोटा है ।

वासपास वस्य मोक्ष जानवाडे अनेक मुनियोंक स्तूप भी मीबूद थे । इन मुनियोंके स्तूप कहीं पाँच, कहीं आठ, कहीं दस और कहीं बीस इस तरह बन हुए थे । साहु टोडरको इन स्तूपोंको खीर्ण-शीर्ण बनस्थामें देखकर इनका जीर्णोद्धार करनेकी प्रबळ भावना जागृत हुई । फलतः टोडरन शुभ दिन और शुभ क्षण देखकर अत्यन्त उत्साहपूर्वक इस पवित्र कार्यका समारम्भ कर दिया । साहु टोडरने इस पुनीत कार्यमें बहुत-सा धन व्यय करके १ १ स्तूपोंका एक समूह और ११ स्तूपोंका दूसरा समूह, इस तरह कुल ५१४ स्तूपोंका निर्माण करवाया । तथा इन स्तूपोंके पास ही १२ द्वारपाल आदिकी भी स्थापना की । यह प्रतिष्ठानका कार्य वि सं० १६३० में श्येष्ठ शुक्ल १२ को बुधवारके दिन नी चर्चा व्यतीत होनेपर सूरि पंथपूर्वक निर्दिष्ट सानन्द समस्त हुआ । साहु टोडरने अनुर्विष सपको आमंत्रित किया । सपने परम आनन्दित होकर टोडरको आशीर्वाद दिया और गुहने उसके मस्तकपर पुष्प-वृष्टि की । तत्पश्चात् साहु टोडरने सभामें सचे होकर दाखल कबि राजमण्डसे प्रार्थना की कि मुझे अम्बुस्वामि-पुण्यके पुननेकी बड़ी उत्कण्ठा है, सो आप कृपा करके इस कथाको विस्तारसे कहिये । इस प्रार्थनासे प्रेरित होकर कबि राजमण्डने अम्बुस्वामिचरितकी रचना की ।

इस काव्यमें कुल ११ सर्ग हैं जिनकी पद्य-संख्या सब मिठाकर कममा २४ के है । जान पड़ता है कि कबिने अम्बुस्वामि चरितको आगरेमें रखकर ही बनाया था । कबिने कथासुख-वर्णन नामक सर्गमें आगरेके बाबायें आणिका वर्णन भी दिया है । काव्यमें वैराग्यकी प्रघातता है । कहींपर सुखका वर्णन करते समय बीररस

भी आ गया है। बीच बीचमें धर्मशास्त्र, और कहीं कहीं नीति भी आती है। जम्बुकुमारके साथ जो ठनकी कियों और त्रिभुवरके सवाट हुए हैं, वे बहुत रोचक हैं, और ऐतिहासिक दृष्टिसे भी महत्वके हैं।

कवि रामलुकी चौपी इति अप्यात्मकमउमार्चण्ड है। इस ग्रन्थमें चार परिच्छेद हैं, जिनमें सब मिलाकर २५० श्लोक सख्या है। पहिले परिच्छेदमें मोक्ष और मोक्षमार्गका उल्लेख, दूसरेमें द्रव्यसामान्य, तीसरेमें द्रव्यविशेष और चौथे परिच्छेदमें सात तत्व और नौ पदार्थोंका वर्णन है। कविने इस ग्रन्थका 'कान्य' कहकर उल्लेख किया है, और इसके पठन करनेसे सम्पददर्शनकी प्राप्ति होना बताया है। जमूतचन्द्रसूरिके आत्मख्याति समयसारकी तरह यहाँ भी ग्रन्थके आदिमें विद्वान्महाशयको नमस्कार करके, ससार-तापकी शान्तिके लिये कविने अपने ही मोक्षनीय कर्मके माश करनेके लिये इस शास्त्रकी रचना की है। ग्रन्थकारने ग्रन्थमें कुन्दकुन्द आचार्य और

१ कविने बीरोंको जोस बेते हुए लिखा है —

कमोद्वयं कात्रधर्मस्य सन्मुखत्वं बराहरे ।

वरं प्राणासयकात्र मान्यथा जीवन् वरं ॥

ये शूद्रविषसं पूर्णं पूर्णं भगवात्सदाहरे ।

पतावति विना बुद्धिं विद् तावन्ममभीमवान् ॥

जम्बूतमिचरित १-३ ३१ ।

२ उदाहरणके लिये मनु-विनुवाले दशतथी कथा महाभारत अर्धमें, बौद्धिक अथवा साहित्यमें और त्रिभुवरके सविज्ञानमें पाई जाती है, इसलिये यह उदाहरणके सर्वमान्य कथा-साहित्यकी दृष्टिसे बहुत महत्वकी है। शृगाल और वनपक्षी कथा भी हितोपदेशमें आती है। इसी तरह अन्य कथाओंके भी तुल्यतुल्य अर्थकर करनेसे इस विषयकी विशेष खोज हो सकती है।

अमृतधन्त्रसुरिको स्मरण किया है । कविने इस छोटेसे प्रथम अक्षर-  
व्याप्ति समयसारके उगपर अनेक छन्द, अक्षरकार आदिसे सुसज्जित  
अभ्यात्मशास्त्रकी एक अति सुन्दर रचना करके सचमुच जैन साहि-  
त्यके गौरवको वर्द्धित किया है ।

कवि राममल्लकी इन चार कृतियोंमें, जैसा ऊपर कहा जा चुका  
है अमृतधन्त्रसुरिकी रचना वि० स० १६१२ और छाटीसंहिताकी  
रचना वि० स० १६४१ में हुई है । दोष दो ग्रन्थोंके समयके विषयमें  
ग्रन्थकारने स्वयं कुछ भी उल्लेख नहीं किया । परन्तु मान्य होता है  
कविकी सर्वप्रथम रचना अमृतधन्त्रसुरिकी है, और इसी रचनानके  
ऊपरसे इन्होंने ' कवि ' की प्रख्याति प्राप्त की । इसके बाद किसी  
कारणसे कविको आगरेसे बैरठ नगरमें जाना पड़ा, और वहाँ जाकर  
इन्होंने अमृतधन्त्रसुरिके नीचे वर्ष बाद छाटीसंहिताका निर्माण  
किया । अमृतधन्त्रसुरिके कई वर्ष भी छाटीसंहितामें अक्षरशः  
अपवाद कुछ परिवर्तनके साथ उपलब्ध होते हैं । पञ्चाध्यायी और  
अभ्यात्मकमन्मार्चण्ड कविकी इन रचनाओंके बरकी ही कृतियों  
जान पड़ती हैं । मान्य होता है जैसे जैसे कवि राम-  
मल्ल अक्षरशास्त्र और विचारोंमें प्रौढ़ होते गये जैसे जैसे उनकी रुचि  
अभ्यात्मकी और बढ़ती गई । फलतः उन्होंने अपने आत्म-रक्षणाजके  
क्षिय इन दोनों ग्रन्थोंका निर्माण किया । अब इन दोनोंमें समझ है  
कि पञ्चाध्यायी पहिले बनी हो, और उसके सज्जित सारको लेकर

१५ तुलनाकियेकेलिये छाटीसंहिता और पञ्चाध्यायीमें ४३८ अक्षर पदोंके  
पारिभाषिका उल्लेख अपनी उक्त कृतियोंमें किया है । इन पदोंका छाटीसंहितामें  
ही उल्लेख पञ्चाध्यायीमें रचका आद्य अक्षर संज्ञा जान पड़ता है ।

अध्यात्मकमञ्जरी रचना की हो, अथवा यह भी संभव है कि पहिले अध्यात्मकमञ्जरी रचना हो चुकी हो तथा कविने पञ्चाध्यायीका निर्माण आरम्भ कर दिया हो और असमयमें ही वे काष्ठ-धर्मको प्राप्त हो गये हों ।

इन चार कृतियोंके अतिरिक्त समव ज्ञान पड़ता है कि कविने और भी रचनाओंका निर्माण किया है और उन रचनाओंमें किसी एक गद्यकी कृतिके होनेका भी अनुमान है ।

### जैन-साहित्यमें जम्बूस्वामीका स्थान

दिगम्बर और श्वेताम्बर परम्परामें जम्बूस्वामीका नाम बहुत महत्त्वके साथ लिया जाता है । महावीर स्वामीके निर्वाणके पश्चात् गौतम, सुवर्मा और जम्बूस्वामी इन तीन केवलियोंका होमा दोनों ही आत्म-योंको मान्य है । इसके बाद ही दोनों सम्प्रदायोंकी परम्परामें भेद पाया जाता है । दिगम्बर-परम्परामें जम्बूस्वामीके पश्चात् विष्णु, नन्दी, अपराजित, गोवर्धन और भद्रबाहु, तथा श्वेताम्बर-परम्परामें प्रमथ, गण्धमथ, यशोभद्र, आर्यसमूतविजय और भद्रबाहु इन पाँच श्रुतकेवलियोंके नाम आते हैं । जो कुछ भी हो, जम्बूस्वामी दोनों सम्प्रदायोंमें अन्तिम केवली स्वीकार किये गये हैं और इसी कारण दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों विद्वान् इनका जीवनचरित लिखनेमें प्रवृत्त हुए हैं । श्वेताम्बर शास्त्रमें सर्वप्रथम पयप्ता (प्रकीर्णक) साहित्यमें जम्बू पयप्ताका नाम आता है । श्वेताम्बर जैन कान्फरेन्सद्वारा प्रकाशित जैन-ग्रन्थालिसे विदित होता है कि जम्बूपयप्ताकी यह प्रति डेक्कन काठेज पूनाके मठार ( मांडारकर इन्स्टिट्यूट ) में मौजूद है । इसके कर्ताका नाम अविष्टित है । श्लोकके कोष्ठमें 'पत्र ४५ खंड ५'

लिखा हुआ है। इसके पश्चात् अन्य श्रेताम्बर विद्वानोंने भी जम्भूस्वामि-  
चरितका निर्माण किया है परन्तु इनमें कच्छिकाण्ड-सर्वज्ञ हेमचन्द्र  
आचार्य और जयशेखरसूरिका नाम विशेष महत्त्वका है। हेमचन्द्र  
१२ वीं शताब्दिके प्रसिद्ध आचार्य हो गये हैं। इन्होंने अपने परि-  
शिष्ट पर्वके आठके पार व्याख्यानमें जम्भूस्वामीका चरित लिखा है।  
जयशेखरसूरिका समय मि स० १४२६ इ। ये कवि-चक्रवर्तीके  
नामसे प्रसिद्ध हो गये हैं। इन्होंने ६ प्रकरणोंमें ७२६ श्लोक-समाप्त  
जम्भूस्वामिचरित नामक काव्यकी रचना की है।

दिगम्बर-साहित्यमें भी प्राकृत और संस्कृत भाषामें कई जम्भू-  
स्वामि-चरित होमेका अनुमान किया जाता है। उक्त जैन-  
ग्रन्थान्त्रिमें प्राकृत संस्कृत और गद्यमें लिखे हुए नौ जम्भूस्वामि-  
चरित और कपालकोंका उल्लेख किया गया है और उनमें पाँच  
ग्रन्थकर्ताओंके तो नाम भी मिले हैं। ये नाम निम्न प्रकारसे हैं—  
पं सगरदत्त, मुचनकीर्ति, पद्मसुन्दर, सकलार्घ्य और मानसिंह। इन  
सब ग्रन्थकर्ताओंका विशेष परिचय नहीं दिया गया है। मुचनकी-  
र्तिके विषयमें लिखा है—‘मुचनकीर्ति सकलचन्द्रके शिष्य थ’। यद्यपि  
मुचनकीर्ति श्रेताम्बर आम्नायमें भी हो गये हैं परन्तु प्रस्तुत मुचन  
कीर्ति दिगम्बर-परम्पराके ही मातृम होते हैं। प्रो बेबर (W. Beer)  
ने सकलचन्द्रका समय १५२० मि स लिखा है। समस्त मुचन-  
कीर्तिके इस काव्यको विक्रमकी सोस्रहवीं शताब्दिमें लिखा है। यह प्रति  
राधनपुरमें मातृ है। दिगम्बर आम्नायमें कवि राजमल्लके कतिरिख  
त्रिनदासने भी हिन्दीमें उक्तचन्द्र जम्भूस्वामिचरितकी रचना की है।  
सम्भवत ये त्रिनदास वही ब्रह्मचारी त्रिनदास हैं जो सकलचन्द्रकीर्तिके

शिष्य था । इस पुस्तकको जिनदासन किसी सुसूक्त काव्यक आधारसे रचा है । इसमें और पं० राजमछक जम्बूस्वामीके कथानकमें कुछ अतकथामें भेद भी पाया जाता है ।

### जम्बूस्वामीकी कथा

जम्बूद्वीप-भरतक्षेत्रमें मगध नामक देश है । उसमें श्रेणिक नामका राजा राज्य करता था । एक दिन राजा श्रेणिक सुमामें बैठे हुए थे । वनपाखने आकर विपुलाच्छ पर्वतपर वर्धमान स्वामीके समक्षारणके आनेका समाचार दिया । श्रेणिक धुनकर परम आनन्दित हुए और उन्होंने अपने सैन्य, कुटुम्ब आदिके साथ मगधान्का दर्शन करनेके लिये प्रयाण किया । श्रेणिक वर्धमान स्वामीको नमस्कार करके बैठ गये और उन्होंने तत्त्वोपदेश सुननेकी अभिलाषा प्रकट की । श्रेणिकने तत्त्वोपदेशका श्रवण किया । इतनेमें कोई तेजोमय देव आकाश मार्गसे अवतरित होता हुआ इष्टिगोचर हुआ । श्रेणिक राजाके द्वारा इस देवके विषयमें पूछे जानेपर गौतम स्वामिने उत्तर दिया कि इसका नाम विष्णुनाम्ही है और यह अपनी चार देवगानाओंके साथ यहाँ

१ इस पुस्तकको मुन्शी नामसुख अनेकाले सन् १९११ में कलकत्तामें छपाया था । इसीके आधारसे मास्टर बीपबंदजीने इसे हिन्दी गद्यमें लिखा है जो सूरतमें छपा है ।

२ हेमचन्द्र आचार्यकी कथानुसार महात्मीरकी कथा करके लिखे जाते हुए दो शैलिक भागमें सम्पन्न करते हुए प्रसन्नचन्द्र मुनिने इसका उत्तरे तर्क विषयमें कुछ चर्चा करते हैं । यहाँ उसी मर्यादे जाते हुए शैलिक राजा उस मुनिसे कथा करके समक्षारणमें पहुँचकर गौतम स्वामीसे उस मुनिके विषयमें प्रश्न करते हैं । गौतम स्वामी इस प्रश्नके उत्तरमें पोटनपुरके राजा सोमचन्द्र तथा उसके प्रसन्नचन्द्र और कच्छवीरि नामके दो पुत्रोंकी कथासे विस्तारसे करते हैं । यह कथा बहुत रोचक है । इसके लिये पाठकोंको परिशिष्टार्थ देखना चाहिये ।



बन्दना करनेके लिये आया है । यह आज्ञसे सातवें दिन स्वर्गसे चप कर मध्य लोकमें उत्पन्न होकर उसी भस्से मोक्ष प्राप्त करेगा । श्रेणिकने इस देशके विषयमें विज्ञेय जाननेकी अभिलाषा प्रगट की । गौतम स्वामी कहने लगे — " इसी देशमें वर्धमान नामक एक नगर है । उसमें आर्यवसु नामका एक ब्राह्मण रहता था । उसकी स्त्रीका नाम सोमशमा था । इस दंपतिके भास्देव और मन्वेदव नामके दो पुत्र हुए । इन दोनोंने विद्यामें अति निपुणता प्राप्त की । कुछ समय बाद आर्यवसु कुछ रोगसे पीड़ित हुआ और परलोक सिंभार गया । सोमशमनि भी पतिके वियोगसे व्यथित हुआ और चित्तमें प्रवेश करके अपने प्राणोक्त त्याग किया । कुछ दिन बीतनेके पश्चात् उस नगरमें सौभर्म नामके मुनिका आगमन हुआ । मुनिने धर्मका उपदेश दिया । भास्देवने भी इस धर्मका श्रवण किया और सुनकर मुनिसे दीक्षा लेने की अभिलाषा प्रकट की । भास्देव दीक्षित होकर तपस्या करने लगे । कुछ समय बीतनेपर एक दिन सौभर्म मुनि संप्रसन्नित वर्धमान नगरमें पधारे । भास्देवको अपने कनिष्ठ भ्राताके ऊपर कृपा उत्पन्न हुई । वे गुड़की लज्जा लेकर मन्वेदको भोज देनेके लिये चले । उस समय मन्वेद अपने विवाहके उत्सवमें सुखी थे । मन्वेदने अपने श्वशुर भ्राताको मुनिके बेघमें देखकर उसका बहुत लालच किया । मन्वेदने धर्म-श्रवण करके पश्चात् मुनिके आहार दिया । जब मुनि विहार करने लगे, उस समय और लोगोंके साथ मन्वेद भी उनके पीछे पीछे चले । घोड़े

१ मन्वेदको श्रेणिके सम्प्रत्यक्षितमें कथित कथाका आरंभ होता है । इसके पूर्वका भाग उद्यमें नहीं पाया गया । ईमचन्द्र और जगद्वर दोनोंके अनुसार भास्देवकी कथा बड़े मूर्खता लभ भवत आता है । तथाके प्रथम अरण्यके रहने-वाले थे और इनके पिताका नाम आर्यवसु तथा मातृका नाम रेवती था ।

समयमें दोनों जाने गुरुकुल पास पहुँचे गये । यह देखकर सब मुनि  
 माण्डवेयकी प्रशंसा करने लगे । मण्डवेयको उपायान्तर न होनेसे  
 दीक्षा लेनेके लिये बाध्य होना पड़ा । कुछ दिनों पश्चात् सौधर्म मुनि  
 फिर वर्धमान नगरमें आये । मण्डवेय अपनी स्त्रीका विचार करके वहाँ  
 एक जिनालयमें पहुँचे । वहाँ उन्होंने एक अर्बिकाको देखा । उससे  
 उन्होंने अपनी स्त्रीके सम्यक्की कुशाह-वार्ता पूछी । अर्बिकाजने  
 मुनिके विचित्रो चक्षयमान देखकर उन्हें धर्ममें स्थिर किया  
 और कहा कि वह आपकी स्त्री मैं ही हूँ । मण्डवेय छेदोपस्थापना  
 पूर्वक चारित्र्यमें फिरसे तत्पर हुए । अन्तमें दोनों मर्द मरकर सनत्कुमार  
 स्वर्गमें देव हुए । माण्डवेय स्वर्गसंभ्रुत होकर पुण्डरीकिणी नगरीमें  
 ब्रह्मदत्त नृपतिके घर सागरचन्द्र नामका, और मण्डवेय बीतशोक नगरीमें  
 महाप्रमथकवर्तकके घर शिवकुमार नामका पुत्र हुआ । ये दोनों युवा  
 होकर मोगोंके मोगनेमें मग्न हो गये । एक बार पुण्डरीकिणीमें कोई  
 मुनि पधारे । सागरचन्द्रने मुनिका उपदेश श्रवण किया । पश्चात्  
 मुनिने उन दोनों मर्दोंके पूर्वमर्षोका वर्णन किया । सागरचन्द्रने  
 संसारके मोगोंसे विरक्त होकर जिनदीक्षा ग्रहण की । उपश्चात् अपने  
 मर्दको बोध करानेके लिये सागरचन्द्र बीतशोका नगरीमें गय, और

१ इस कथा-भागमें भी स्वैताम्बर और दिगम्बर-परम्परामें कुछ भेद पाया  
 जाता है । उक्त स्वैताम्बर विद्वान्कें अनुसार जिस समय मण्डवेय (माण्डवेय) अपने  
 लघु ब्रह्मप्रथम बोध देनेके लिये आये उस समय बह्मिष्ठे बालावरबन्धो देवदत्त स्वर्ग  
 मण्डवेय ही महाप्रमथ वर्तित हो गये है । वे वास्तव होते आते हैं और अपने  
 साथी मुनि इतना मण्डवेयका उपहास करने हैं । मण्डवेय फिरसे मण्डवेयके हीचित्त  
 करनेकी प्रतिज्ञा करके उनके पास आते हैं, और उक्त विधी तत्काल परके पर त्पद्य  
 हीतिन करते हैं ।

उन्हें देखकर शिवकुमारको जातिस्मरण हो आया। शिवकुमारने अपने माता पितासे दौआ खेनेकी अनुमति माँगी, परन्तु उन्होंने दौआकी अनुमति न दी। शिवकुमार १४०० वर्षतक घरमें तपश्चर्या करते हुए रहने लगे। अन्तमें सागरचन्द्र और शिवकुमार दोनोंके बीच ब्रह्मोत्तर स्वर्गमें गये। शिवकुमार तपश्चरणके प्रमाणसे विष्णुमाळी नामका यह देव हुआ है।”

तपश्चात् श्रेणिक राजाने विष्णुमाळीकी चार देवियोंके विषयमें विशेष जाननेकी जिज्ञासा प्रकट की। गौतम स्वामीने कहा कि अथापुठी नामकी नगरमें सूरसेन नामक कोई सेठ रहता था। इसके चार स्त्रियाँ थीं। पायोदयसे सेठका शरीर रोगग्रस्त हो गया। वह अपनी स्त्रियोंको मारने पीटने लगा और उन्हें नाना प्रकारके कुत्सित बंधन बोकने लगा। स्त्रियोंने अति दुःखित होकर अर्जिकाके व्रत प्रवृत्त किया। ये स्त्रियाँ मरकर इसी स्वर्गमें विष्णुमाळीकी देवियाँ हुई हैं।

श्रेणिक राजाके विषयमें प्रथम करनपर गौतम स्वामीने कहा कि इस्लामपुरके सगर नामके राजाके विष्णुवर नामका पुत्र हुआ। विष्णुवरने सब विद्याओंमें कुशलता प्राप्त की थी। एक चौर्म-विद्या ही ऐसी रह गई थी जो उसने नहीं सीखी थी। राजाने विष्णुवरको बहुत सम्मानाया, पर उसने चौर्म करना न छोड़ा। विष्णुवर राजगृह नगरमें जाकर कामरुता वेद्याके साथ रमण करते हुए समय व्यतीत करने लगा। गौतम स्वामीने कहा कि यह विष्णुमाळी देव राजगृह नगरमें बर्हिदास नामक सेठके पुत्र होगा, और उसी भक्त मोक्ष जायेगा।

यह कथन हो ही रहा था कि इतनेमें एक पक्ष बाँहें आकर

तृप्त करने लगा । श्रेणिकके इसके नाचनेका कारण पूछ तो गौतम स्वामीने उचर दिया कि यह यक्ष अर्द्धदासका उधु भ्राता था । यह सप्त व्यसनमें आसक्त था । एक बार यह नूँएमें द्रम्य हार गया और इस द्रम्यको न दे सकनेके कारण दूसरे जुआरीने इसे मार मारकर अधमरा कर दिया । अर्द्धदासने इसे अन्त समय नमस्कार-मंत्र सुनाया, जिसके प्रभावसे वह मरकर यक्ष हुआ है । यक्ष यह सुनकर हर्षसे तृप्त कर रहा है कि उसके भ्राता अर्द्धदासके अंतिम केषलीका जन्म होगा ।

यहाँसे, दौचबे पर्वसे, असली जम्बूस्वामीका शरित आरम्भ होता है । अर्द्धदासके घर जम्बूकुमारका जन्म हुआ । जम्बूकुमार युवा हुए । उनकी श्रमिल सेठोंकी चार कन्याओंके साथ सगाई हो गई । उन्होंने मन्थेमत्त हाथीका बशमें करके अपनी बीरता प्रकट की । जम्बूकुमारने एक बार सनचूब नामके विधाधरको पराजित करके दृगाक विधाधरकी सहायता की, जिससे दृगाकने अपनी पुत्रीका श्रेणिक राजाके साथ विवाह किया । तत्पश्चात् जम्बूकुमार सीधर्म नामक मुनिसे, जो भवनेबद्ध जीव था, भवन्तर सुनकर बैराग्यको प्राप्त हुए । जम्बूकुमारने माता पितासे प्रव्रग्या लेनेकी अनुमति माँगी । माता पिताने बहुत समझाया, पर जम्बूकुमार न माने । अन्तमें पितानी आज्ञाको शिरोधार्य करके उन्होंने विरह करनेके एक दिन बाट दीक्षा ले लेनेका निश्चय किया । मूह टाट-बाटसे जम्बूकुमारका विवाह हो गया । चारों क्षिपेले अनेक हाथ-भागोंसे जम्बूकुमारको शिवय-भोग भोगनेके लिये आनर्पित किया, पर व मेरुके समान बरसे और रू रहे । बाटमें बहीं त्रिपुर चोर भी पहुँच गया । चारों नव-विवाहिता बधुओं वीर

विष्णुचर तथा जम्बुजुमारका बहुत रोचक संवाद हुआ। अन्तमें जम्बु स्वामीकी विजय हुई। उन्होंने जिन-दीक्षा ग्रहण की। साथमें विष्णुचरको भी उपदेश दिया। वह भी अनेक लोगोंके साथ दीक्षित हुआ। अन्तमें वे दोनों अनेक मुनियोंके साथ विष्णुवाचळ पर्वतपर निर्वाणका पनारे।

### मूल प्रतियों

अन्तमें कुछ समय मूल प्रतियाँके विषयमें भी लिख देना उचित है। जम्बुस्वामिचरित देहलीके सरके कूचेवाले जैनमन्दिरकी प्रतिके ऊपरसे संपादित किया गया है। इसका स्थिरे इसके प्रेषक बानू पद्म-समन्तजी अपवाचको अनेक वन्दनाएँ हैं। इस प्रतिके ऊपर कोई सज्ज नहीं है। फिर भी यह प्रति प्राचीन माहूम होती है। यह बीचमेंसे कई स्थानोंपर श्रुति भी है। बहुत प्रयत्न करनेपर भी इस पुस्तककी दूसरी कोई प्रति न मिलनेसे, इसी एक और ही अष्टादश प्रतिके आधारसे प्रत्यक्ष सम्पादन करना पड़ा है। मूल प्रतिके जो पाठ अष्टादश जान पड़े, उन्हें मूल पाठमें रखकर कोष्ठकमें छुद्र पाठ दिया

१ हेमचन्द्र और कण्ठेश्वरके कथात्ममें जम्बुजुमारके शिष्याका नाम प्रथमपक्ष और मातृपक्ष नाम बतरीची जाता है। तथा जम्बुजुमारका पत्न कन्दर्पोधी कण्ठेश्वर कथात्मके साथ विवाह होता है। इन कथात्ममें विष्णुचरकी कथा प्रथम पक्षेश्वर नाम जाता है। ( १ एमचन्द्रके जम्बुस्वामिचरितमें भी— प्रथमपक्षेश्वरका नाम—प्रथमपक्ष नाम जाता है, पर वे हीन हैं, इसका अर्थमें कुछ विचार नहीं करता )। इसके अतिरिक्त जम्बुजुमार और उनकी शिष्यों तथा प्रथमके बीचमें जो कथाएँ हुए उनमें सुकेरुचत महेस्वरवत अक्षरवस्तु संवाचाम्ब, विष्णुस्वामी बुद्धि-विधि, जैन अतिथान् अतिथी कथाएँ जाती हैं जो वे एमचन्द्रके जम्बुस्वामि-चरितमें नहीं पाई जाती। हेमचन्द्र और कण्ठेश्वरचरितकी अंतर्गतताओंमें ही कुछ साम्य है पर फल जाता है।

गया है । इसकी और अध्यात्मकमलमार्तण्डकी प्रेस-कापी नातेपूते ( शोलापुर ) के अध्यापक प० छुछचन्द्रजी शास्त्रीके द्वारा तैयार कराई गई थी ।

अध्यात्मकमलमार्तण्डकी दो ही प्रतियाँ उपलब्ध हो सकी । एक सरस्वती-मठन वर्न्डकी और दूसरी प्रति प० नाथूराम प्रेमीजीके पास की । सरस्वती-मठनकी प्रतिके लेखकने उसकी मांभारकर इन्स्टिट्यूटकी स० १६६३ वैशाख सुदी १३ शनिवारके दिन छिन्नी हुई प्रतिके आधारसे नकल की है । माझूम नहीं मूळ प्रतिके इतनी प्राचीन होनेपर भी यह प्रति इतनी अद्भुत क्यों है ? समझ है नकल करनेमें लेखक महाशयकी कृपा हुई हो । दूसरी प्रति स० १८४४ आषण कृष्णा पष्ठीके दिनकी छिन्नी हुई है । इस प्रतिके ऊपर खरकी मोहर मारी हुई है, जिसपर ' महारक धी महेसरकीरतीनी, सवाई जयपुर सन् १९३९ ' खुदा हुआ है । दुर्भाग्यसे यह प्रति भी छुद नहीं है । इस प्रतिके लेखक सुरेन्द्रकीर्ति महारक हैं । यह बिनदास पंडितकी अद्भुत प्रतिके आधारसे शीघ्रतामें सर्वसुख नामके छात्रके लिये, जिस समय बृन्दावती नगरीमें ब्यसनहरि (†) चुपका रह्य था, पार्श्वनाथके मन्दिरमें छिन्नी गई है । इस प्रतिमें अगमग दो परिच्छेदोंके ऊपर टिप्पणी भी है । माझूम नहीं यह अचूरी टिप्पणी स्वयं प० राजमल्लकी है अथवा किसी दूसरे विद्वानकी । इन दोनों प्रतियोंके साथ साथ पाठ्यतरोको पुननाटमें दे लिया गया है ।

बुविडीबाग, वारदेव  
बम्बई  
१९१०-१२६

जगदीशचन्द्र



नमः श्रीश्रीतत्त्वज्ञानाय

पण्डितराजमल्लविरचित

# जम्बूस्वामिचरितम्

उदीपी (श्री १) कृतपरमानदाघात्मचतुष्टयं च बुधाः ।

निगर्दति यस्य गर्भाद्युत्सवमिह तं स्तुषे श्रीरम् ॥ १ ॥

बहिरतरंगमंगं संगच्छद्भिः स्वभाषपर्यायैः ।

परिणममानः शुद्धः सिद्धसमूहाऽपि वो भिर्यं दिक्षतु ॥ २ ॥

धरिभ्रमोद्धारिबिनिर्जयाद्यतिर्बिरज्य श्रय्याश्रयनाश्रनादपि ।

वर्तं तपःश्रीलक्षणांश्च धारयन्स्वयीव जीयाद्यदि वा मुनिभ्यो ॥३॥

रवेः करालीष निधुन्वती तमो यदांतरं स्यात्पद्वादिभारती ।

पदापसार्यो पदवीं ददर्श या मनोम्भुजे मे पदमावनोतु सा ॥४॥

अयास्ति विल्लीपतिरद्भुतोद्भयो दयान्वितो बम्बरनन्दनः ।

अकम्बरः श्रीपद्मोमितोऽभितो न केवलं नामतपार्यताऽपि यः ५

अस्ति स्र चाद्यापि विभाति जाति परा बगत्ताभिषया पूयिष्याम्

परंपराभूरिब भूपतीनां महान्वयानामपि माननीया ॥ ६ ॥

१ श्रुतजम्बूस्वामिं ब्रह्मिणी लीचकरं महात्तरम् ।

वधिति विचमद्येवं स्वरीपि कञ्चत्रमेधमिव बभूविति ॥ ब्रह्मरीचरितावाम् १-२ ।

२ प्रवीं ब्रह्मत्वं विनमिद्धारिणां वर्यां मुनीनामुपमौपद्येपिदम् ।

पद्मवं धारयता विषेवद्यम् पदं मुनेरिदमिवादिदम्बतः ॥ ब्रह्मरीचरितावाम् १-४ ।



तत्र प्रजापतिर्जातमन्मनः समेकच्छ्रीकृतदिग्बधुवरान् ।  
 प्रकाशित्वेनासमिहानुभूयुमः कवीन्द्रधृदा लसदिदुकीर्ति ॥ ७ ॥  
 अतः कृतमित् कृतसाहिमद्वकः समाननीयो विपिषद्विपभिताम् ।  
 यथा कथा वाचरषंशमाभिता प्रकाश्यते मन्त्रिरया निरंतरम् ॥ ८ ॥  
 सुंभीर्वाचरपाविसाहिरमचभिरित्य षड्भून्वसा-  
 शिद्धीश्रीऽपि समुद्रवारिषसनां शौणी कसुभायताम् ।  
 कुर्बभैकबसो दिगगममलं फ्रीहन् ययेच्छं विभुः  
 स्यात्प्रासकपासमौसिधिस्ररस्यायीष सन्मघश्च ॥ ९ ॥  
 तस्युभौऽग्निमानुमानिष गिरराक्रम्य भूमद्वस  
 भूपेभ्य करमाहरमपि घनं यच्छन् जनेभ्याऽपिकम् ।  
 चद्रच्छस्त्रकरमतापतरसा मात्सर्यमभ्येरेयः  
 मङ्गापासतया भदत्वमहरभान्ना हुमाऊनुपः ॥ १० ॥  
 तत्सुनुः शिपमुद्रश्च भूमवसादेकातपप्रौ सुपि  
 श्रीमत्साहिरकम्परो वरमतिः साम्राज्यरामद्वपुः ।  
 तेमःपुंमयो वल्लकम्पसनमज्वासाकराखानस  
 समारीन् वदति स्म निर्देयमना उन्मूल्य भूखावपि ॥ ११ ॥  
 अशीष दीप्तः क्लिप्तं शंशुषंऽपि यः  
 कलाकलापैर्यद्वेषं समुच्छवसैः ।

१ अतीवुम्भमप्रवर्तित्वा वा लक्ष्मणैरामका  
 कलाभूयतिव्यप्युरिष परा कलिकम्पताभिसा ।  
 तस्यं चकरवतिव्याहिरमचभिरित्य षड्भून् वस-  
 दिग्मिन्द्रमभिरित्यमकला पूर्वेष्टावामकः ॥ अतीवैरिद्विषाम् १-११ ।

तदापि नञ्जीकृतभूमिपालकः  
कपालमालामभिभिद्य चिद्विषाम् ॥ १२ ॥

ततः क्रमाद्यौवनमाभिता धय  
स्तत्रा श्रवन् संगरसंगतः क्षणात् ।

स्त्रियाऽपि कन्दर्पमपमपारत  
द्विपत्र वडाविन तापसंज्ञक ॥ १३ ॥

गमाश्रयान्तातिरयाद्रिषु यो<sup>१</sup>  
मंभ्रासिदुर्गप्रविण्यु कान्पि ।

सिलस्त्र छत्रां भवितव्यताभिता  
धमं स्वैसाद्रिक्रममाप्रसंभवम् ॥ १४ ॥

सम्भावकाद्यादयत्रा प्रसंगा  
घता इता दुजेनकिंकराकराः ।

तदत्र नामापि न गृह्यते मया  
अधुमहाणौ ननु पौरुषं कियत् ॥ १५ ॥

अथास्ति किञ्चिद्यत्रि धिप्रकृष्टक  
मुत्स्यातिलस्त्रीकृतधिप्रकृष्टकम् ।

अतारणस्तममत्राप हेसया  
किमद्भुतं तत्र ममानमानत ॥ १६ ॥

जगत्त्र (अ) गात्री धुजरातमध्यगा मुगाधिपात्रप्यधिष्ठः प्रभावत ।  
मद्रच्युतो धिरिगमस्तदानीमितस्तत्रा याति पलायमानः ॥ १७ ॥

१ अधुमहाणम् । २ अक्षय्यतः । ३ इत्येतेषु । ४ स्थापीनं इत्यत्रम् । इति इत्य-  
क्षिप्रित्तुस्तत्रित्यस्यम् ।

तताऽपि घृत्वा गिरिगह्वरान्ति धिता नर्षं केचन बंधन सणात् ।  
 महाहया र्षभसलादिबाहताः प्रपेतुरापभिधिसंनिधानके ॥ १८ ॥  
 न केवल दिग्मिजयऽस्य भूमृतां सहस्रसंबैरिह भावितं भृष्टम् ।  
 सुबाऽपि निम्नागतमानयानया चलच्चमूमारभरातिमाभतः ॥ १९ ॥  
 अपि क्रमास्मूरतिसंज्ञको गिरेरपानिधेः सनिधितः समस्सर\* ।  
 कदापि कनापि न स्मृद्धिती यतस्ततोऽस्ति दुर्गो मसिनां हि दुजय\*  
 अनेन सोऽपि सणमाप्रवेगादनेकस्वै कृतमर्जरा जितः ।  
 विलंघ्य वार्द्धि रघुनायबधया परं विधेयः कस्मिन्तुकाविष ॥ २१ ॥  
 यवापुः कै(धित्)रिपयः पयोनिधेः परं तत् कोटिमठा नटंत ।  
 ततोऽस्य मन्ये न कुतोऽप्यपूयंत मर्षद्वारिकमपक्रमाद्भवम् ॥ २२ ॥  
 धितं कृपाणेऽस्य विदारितारितः ( जः ? )

पलाशनात्कूर्बति पानमम्भितः ।

ततोऽधिकं सारतया मुद्गलितः अगस्त्रयं प्रासमगादनईसः ॥ २३ ॥  
 तथाविधोऽप्युद्धतवीरकर्मणि दयालुता चास्य निसर्गताऽभवत् ।  
 क्रमेण युगपन्नमया रसाः स्फुटमभिन्यपिभ्रा महतां हि शक्तयः २४  
 मपासयामास ममाः मजापतिरस्वददं यदस्वदमदसम् ।  
 अस्वदसद्वचपु सुरास्त्रयं धितामरानेव स बंधुषुद्धितः ॥ २५ ॥  
 कर न मन भगतोऽतिदुष्कर परंतुकेसौ यदि योपितां मृदुम् ।  
 मर्दं न भग्राह कुतोऽपि करजादपि द्विपन्त्रानिह तद्वैताऽप्यवा २६  
 सुमात्र शुल्कं स्वयं भैभियामिधं स यावद्दमोधरमूधराधरम् ।  
 धराश्च मर्षः सरितापतेः पयः यज्ञान्ध्रीध्रीमदकम्बरस्य च २७  
 बंधनमेतद्रूपनं कदास्यती म मिर्मंत कापि निसर्गतं द्वि(वस्त्रि)तिप्र  
 अनेन तपूतमुदस्तमनसः सुबमरामः किल बर्तितऽधुना ॥ २८ ॥

प्रमादमादाय जन मवर्तत कुभमवर्गेषु यतः प्रयत्तपीः ।  
 तताऽपि मद्य तद्वद्यकारणं निवारयामास विदोषर स हि ॥२९॥  
 अन्नपतः स्ताहमलं न माहृशा समानदानादिगुणानसम्पत् ।  
 ततोऽस्य दिम्माप्रतयाश्चितु सम पयाधितो वा अलम्पंजलिस्थितम्  
 चिरं चिरं नीव चिरायुरायतो मजाधिपः सतसमग्निमाग्निमम् ।  
 यथाभिनदुबमुषामुषाधिपं कलायिरेन परया मुदा मुत् ॥ ३१ ॥  
 अयाधिपानामिष राजपचन महानिहास्ति नगराधिपाधिप ।  
 यनाधिष्ठं मनुत स्म भूपति समस्तवस्त्राकर आगरारुषया ३२  
 यदीयश्चाल मुषिष्ठासतामया दिवं दिदृष्टु धुरनिघ्नगामिष ।  
 शिलोषयादुषरमबर नयन् वपुस्तदुषं यदमारुराहयत् ॥ ३३ ॥  
 यदभ्रमभ्रलिहसौषमं इमीश्चिरः स्त्रलद्वारद्वयादर्पतिः ।  
 पद वकाराधरदक्षिणायने स मीतमीतोऽप्र यतस्तिरोषति ॥३४॥  
 नानामनौसमाफीर्षे सरितां सलिलैरिब ।  
 सपापरतिगर्भीरुरुत्तर्जतमिषाम्मिधि ॥ ३५ ॥  
 महाद्विष महाभाग रस्नालार्कमदधितम् ।  
 गजाशादिपनापार्तयादाभिरिब दुषट्म् ॥ ३६ ॥  
 पंकजाननसंघोरदर्पतं कमपाकृतिम् ।  
 तन्नूपुररणन्कारइसेरारधितं कचिन् ॥ ३७ ॥  
 तटासाद्विष्मासाधेपीक्षितरमृतास्पदम् ।  
 भद्राफरकराद्भूतमन्त्रमदाहृषानलम् ॥ ३८ ॥  
 सांपाग्नित्रनिषपुष्पः पातस्थैरिष सस्थितम् ।  
 महामौल्यानि वस्तुनि नीत्वा गरुडद्विरात्मन ॥ ३९ ॥

भिक्षनामानि सुद्वतमापणानि बहूनि च ।  
 अंतरीपाणि तानीच सवस्तुनि पृथूनि च ॥ ४० ॥  
 सापस्थितमहांतुंगकनुमात्रापिराष्टुतम् ।  
 पतंभिभिः ममुद्धीनं षट्पत्तयस्य प्रामितम् ॥ ४१ ॥  
 राजनीतिमहामागादुत्पयापयगामिनाम् ।  
 निग्रहात्साधुबगाणां संग्रहात्सारसग्रहम् ॥ ४२ ॥  
 चतुर्दिक्षु महानीध्याऽप्यंतर्नीध्यस्तताऽपरा ।  
 इति कश्चिद्भद्रं भ्राता भ्रमावनमिब भित्तम् ॥ ४३ ॥  
 राधा यत्र शशकिन्त बद्रमानं ग्नि दिनम् ।  
 बणयामि कथं चर्नं नगरश्च महाणवम् ॥ ४४ ॥  
 पर कश्चिद्विद्वपाऽत्र नीचस्यं मसतात्मता ।  
 तापदुश्च पत्रासुड कनकाद्रिमिवाप्तम् ॥ ४५ ॥  
 जात्यभाम्भूनदाकारं सांघाऽद्याः सशुक्तिम् ।  
 गायन्तीकिभराभिदश्च निपेभ्यं मिषुभाधिपः ॥ ४६ ॥  
 द्रुमं पय्यन्तभूभागमूर्पणैर्भूपितं क्वचित् ।  
 रम्य फलाश्रयसञ्छायनेनानात्रिभनैरिव ॥ ४७ ॥  
 गजत्रंतसमाकर्षरैरन्तिष्ठतः सुविम्बुतम् ।  
 पंचपणमथै रत्नैः कश्चिरिहूर्म्मोरितं मृशम् ॥ ४८ ॥  
 चतुर्दिगंगमागेषु मध्यगं बभूवाकृतिम् ।  
 ज्यातिर्द्वेषिमानश्च सुर्मयैरिव सवितम् ॥ ४९ ॥  
 जिनपत्स्यष्टैः सार्गिः शुद्धैरिव समन्वितम् ।  
 तथम्यमिनविभ्यश्च पूतं रत्नमयैः स्वतः ॥ ५० ॥



तयार्हयोः प्रीतिरसामृतात्मकः स भाति नाना-टङ्कसार-दत्तकः ।  
 कर्म कयायां भवणोत्सुकः स्यादुपासकः कथं तन्वयं वदे ॥५९॥  
 भीमेति काष्ठासंघे माधुरगच्छस्य पुष्करे च गण ।  
 श्रीहाचार्यममृती समन्वये वर्तमानेऽप्य ॥ ६० ॥  
 तत्पद परममलयकीर्तिदिवास्तवः परं चापि ।  
 श्रीदुणमद्रः मूरिर्महारकसंज्ञकश्चाभूत् ॥ ६१ ॥  
 तत्पदसुखमुदयाद्रिमिभानुमानुः  
 श्रीभानुकीर्तिरिह भाति इवापकर\* ।  
 उदयातपभिसिस्मृस्मपद्रापसार्यान्  
 महारकौ भुवनपालकपद्मचुः ॥ ६२ ॥  
 तत्पदमम्पिमिबद्धनहेतुरिन्दुः  
 सौम्यः सदाद्यमयो ससर्दशुनासि\* ।  
 ब्रह्मप्रतावरणनिर्गितमारसेनी  
 महारकौ विमपतेऽप्य ह्यपारसेनः ॥ ६३ ॥  
 उग्रार्थातकर्मश्रमा वरमतिगोभि च गगोऽम्बत्  
 काष्ठासंघमघानिया (?) च नगर कसंति मात्रा वरात् ।  
 भीसाधुर्मदनास्यया तद्वृत्तो भ्राता स भास् सुधी  
 स्वत्युर्मा भिनधर्मधर्मनिरतः श्रीस्पर्षद्राहय\* ॥ ६४ ॥  
 तत्पुत्रः पुनरद्भुतोदयगुणग्रामैकचूडामणिः  
 श्रीपासांभरसाधुसाधुगदितः सर्वः सर्व साधुभिः ।  
 रेसा यस्य विराजते पुरि तदारंभ महौमस्विना  
 धर्मभीसुसदानमानयद्वसां जेनेऽप्य धर्म रतः ॥ ६५ ॥

१ सर्व शोकः कस्यैतद्विवाच्यमपि उपक्रम्यते ।

२ कथं तन्वय इति प्रतिक्र ।

तत्पुत्रोऽस्त्यत्र विख्यातः श्रीसाधुटोडरः सुधीः ।  
 महोदारी महाभागी महिम्ना कुलदीपकः ॥ ६६ ॥  
 श्याम्यः साधुसभामध्ये प्रियावान् धर्मतत्परः ।  
 देवशास्त्रगुरुणा च बत्सला विनयान्वितः ॥ ६७ ॥  
 परपां चोपकाराय शक्तिस्पागे च यस्य धी ।  
 विश्वं च धर्मकार्येषु चित्तमईदृश्यादिषु ॥ ६८ ॥  
 रागी धर्मफले धर्मे हृषर्मे तद्विपर्ययः ।  
 विमुख परदारामु सन्मुखा दानसंगर ॥ ६९ ॥  
 सद्गुणाश्चपि वा पाली मूफा दोषशतम्पि ।  
 नात्थोत्कर्षविषां वाग्मी स्वमेऽपि न दुराक्षय ॥ ७० ॥  
 किमत्र बहुनोक्तेन सबकायविषां क्षम ।  
 वित्तपुत्रादिसंपूर्णशैकाऽपि लक्षायत ॥ ७१ ॥  
 कृपालुः सर्वमीत्रेषु मन्त्रास्त्रेषु युद्धिमान् ।  
 दक्षः सर्वोपधानेषु धारकेषु महर्षेरः ॥ ७२ ॥  
 तस्य भाषा यथा नास्ति कीसुर्मी शोभनानना ।  
 साध्वी पतिग्रता चैवं भर्तृच्छदानुगामिनी ॥ ७३ ॥  
 तयाः पुत्राश्च सन्ति प्राच्यां मानारिबांशवः ।  
 उग्राश्चापि सदापु निर्णेपिपुपकारिण ॥ ७४ ॥  
 प्रापिदासाधिरं जीवानमप्र ज्यायान् गुणरपि ।  
 स्वतभाप्युमते ईश दिदीप धिरुम्भिर)ममसा ॥ ७५ ॥  
 माहृनाग्यधिरापुः स्याद्विनीयाऽप्यद्विनीपक ।  
 कणाऽप्यप्रपया दार्ढ्यं भम्ममास्तृम्न रिपून् ॥ ७६ ॥



वर्द्धतां मातुरं स्वस्वृतीया रूपमांगत ।  
 द्विगुण्यंगुमामामिमेदानैव मणिर्यथा ॥ ७७ ॥  
 एतया च पुत्रगणां मध्य भीसाधुर्दरः ।  
 व्यामणितोऽपि य पूर्व सद्यः मृष्यतऽधुना ॥ ७८ ॥  
 अर्यकत्रा महापुत्र्या मयुरायां कृताधमः ।  
 याभाय सिद्धसंज्ञस्य चेत्यानामगमत्सुत्वम् ॥ ७९ ॥  
 तस्याः पयन्तमृभाग इष्टा म्यान मनोहरम् ।  
 महर्षिभि समासीनं पूर्वं सिद्धास्वदापमम् ॥ ८० ॥  
 तत्रापश्यस्त प्रमात्मा निःसंहीत्यानमुचमम् ।  
 अस्त्यकैवमिना जम्बूस्वापिना मध्यमोऽत्रिमम् ॥ ८१ ॥  
 ततो विष्णुश्चरा नाम्ना मुनिः स्थाचद्रत्नग्रहात् ।  
 अतस्त्वस्यैव पादान्ते स्थापित पूरमूरिभिः ॥ ८२ ॥  
 ततः कर्षप महासत्त्वाः दुःखसंसारमोरवः ।  
 सन्निधानं तयो माप्य पदसाम्यं सम दधु ॥ ८३ ॥  
 ब्रह्मं च—

“होसां सडिणियदा अह अह संमयद् मन्वपुरिसस्त ।  
 तह तह जायद् कूनं सुसम्भसापगिगौरस्वह ॥ ८४ ॥”  
 तवा पुत्रमहामोहा अस्त्वद्वदतधारिणः ।  
 स्वापुरंते यथास्याने जग्मुस्तेभ्यो नयो नमः ॥ ८५ ॥  
 ततः स्थानानि तेषां हि तया पाश्वे ध्रुयुक्तितः ।  
 स्थापितानि यथाज्ञार्यं प्रमाणनयकत्रभिद् ॥ ८६ ॥

१ बहिर्बहि इति । २ मन्वन्तारिक इति वा पाठः ।

३ पाठान्तरिभिर्यत्र कथा कथा संभवति मन्वपुरिसस्त ।

तथा तथा अस्ते मन्व पुनस्तथाप्रामोहायम् ॥



यस्पोद्दयाहया जेतोरदया स्यात्कर्यचन ।  
 यद्मपि दयामाषो घटते चिदपेऽपि च ॥ ९८ ॥  
 तदसं ध्यास्मया चास्य चासा बभन्नुमशुभया ।  
 एकं मूलमनर्षानां यावता (?) तत्पररा ॥ ९९ ॥  
 तन्मिध्यात्वं परिस्यज्यमात्रां पममयीप्सुभिः ।  
 सम्यक्त्वे प्राणुपाद्वयं मूलं धर्मतरोरिह ॥ १०० ॥  
 स धर्मः कृपिता ह्येया निष्पयाद्दुःखहारतः ।  
 तत्र स्वात्माभितश्चापः स्याद्द्वितीयः पराभितः ॥ १०१ ॥  
 आत्मा र्थतन्मैकर्यस्तच्च चाचामगाधरः ।  
 स्वानुभूत्यङ्गम्यस्वात्म धमः पारमार्थिकः ॥ १०२ ॥  
 स पशोवर्द्धिं श्रुद्धात्मा स एव परमं तपः ।  
 स एव दधने ज्ञाने चारिभ्रं सुखमश्नुतम् ॥ १०३ ॥  
 स एव संवरः मौक्तः निर्मरा चाष्टकर्मणाम् ॥  
 किमत्र निस्वरचापि तत्फलं मुक्तिरात्मनः ॥ १०४ ॥  
 अथ तत्रासमधः सन् कश्चिन्मोहोदयावृतः ।  
 व्यावहारिकधर्मेषु स्याच्चिरेरीहाऽपि वर्तते ॥ १०५ ॥  
 याऽकार्पात्संशयं कश्चिन्म इवाचिनिष्पयात् ।  
 पिपासुर्मलदूरस्याऽप्याचसाजोऽस्ति तदुणात् ॥ १०६ ॥  
 तवा स्पृहास्तुः सद्दृष्टिः स्वात्मोत्पन्नसुखामृते ।  
 तस्सुखाप्येषु संशीतिः परतत्त्वेषु आपत ॥ १०७ ॥  
 तत्र रागाद्विकृत्यात्मा तदुपग्रामधितनात् ॥  
 व्यावहारिकधर्मे स्मान्गुह्या व्रतपाथिनि ॥ १०८ ॥

कृपापादेषु दुर्भ्यानिबन्धनार्थं तद्वर्षमान् ।  
 अर्हत्पूजादिकं घञ्छेद्राहानादिभिधेः क्रमात् ॥ १०९ ॥  
 एकादश्यादिषु पञ्चास्यपर्यन्तेषु च मंत्रेषु ।  
 समता स्यात्स्वतस्त्वस्य यः स्वयं दुःखभीरुकः ॥ ११० ॥  
 हिसादभिरेति प्रोक्तं प्रतं तद्विभिषं मतम् ।  
 देशतः सर्षता पत्ते भाषकाऽणु यतिमहत् ॥ १११ ॥  
 तल्लक्षणं तु संक्षिपाद्द्रव्यमाणं यथागमम् ।  
 नात्र विस्तरतः प्रोक्तं इति संबन्धमाश्रितः ॥ ११२ ॥  
 यत्फलं चास्य धर्मस्य महन्त्रादिमहाद्वयः ।  
 सर्वं पद्मालबलम्य भान्यायिनं कुटुम्बिनं ॥ ११३ ॥  
 ज्ञातधमफलः सोऽयं स्तूपान्यायिनवत्सवतः ।  
 कारयामास पुण्यार्थं यन्नं केन निवार्यते ॥ ११४ ॥  
 यन्नं कृते धनं केनैः केचिद्धर्मकृतेऽर्थतः ।  
 तद्द्वयायमसौ दध्नं यथा स्वाद्दु महौषधम् ॥ ११५ ॥  
 शीघ्रं शुभत्रिने लघ्ने मंगलद्रव्यपूर्वकम् ।  
 सास्ताह स समारंभं कृतवान् पुण्यभानिह ॥ ११६ ॥  
 ततोऽप्येकाग्रचित्तेन साधधानतपानिश्रम् ।  
 महाशरतया क्षत्रभिन्यै पूर्णानि पुण्यमाह ॥ ११७ ॥  
 क्षतानां पञ्च चापैकं शुद्धं चापिषयोदश ।  
 स्तूपानां तत्समीपं च द्वादश द्वारिकादिकम् ॥ ११८ ॥  
 संवत्सरं गताभ्यानां क्षतानां पादशं क्रमात् ।  
 शुद्धैस्त्रिंशत्त्रिरव्यैश्च साधिकं दधति स्फुटम् ॥ ११९ ॥

- शुभं ज्येष्ठ महामास शुक्र पक्ष महाद्वय ।  
 द्वादश्यां पुष्यारे स्याद् घटीनां च नवापरि ॥ १२० ॥  
 परमादश्वर्यपूर्णं पूर्णं स्थानं तीर्थममप्रभम् ।  
 श्वश्र्वं रुक्मगिरेः साक्षात् मत्समिवादिष्टनम् ॥ १२१ ॥  
 पूजया च यथाभक्तिं श्रुतिर्मम प्रतिष्ठितम् ।  
 शत्रुनिपमहासय समाहूयाम भीमता ॥ १२२ ॥  
 तताऽप्याशीषवः पूर्वं परमानन्दनाम्निनाम् ।  
 सुदया स्वान दत्तानि दद्यां कुमुदानि मस्तक ॥ १२३ ॥  
 ततोऽपि बर्द्धयामास पयोत्साहः मृदुश्रनात् ।  
 यथेन्दुदक्षनादादिर्बर्द्धते पयसापिकम् ॥ १२४ ॥  
 अथ मध्यसर्गं स्थित्वा हृद्मसीकृतकरद्वयम् ।  
 पृच्छति स्म स शुभ्रपुः सर्वमतस्फयानकम् ॥ १२५ ॥  
 यूयं परापञ्चाराय बद्धकला महाधिपः ।  
 उषीणाथ परं तीरं कृपाचारिमहाद्वय ॥ १२६ ॥  
 तताऽनुग्रहमाभाय बापयस्व तु मे मनः ।  
 जम्बून्धामिपुराणस्य शुभ्रपा इति बर्द्धते ॥ १२७ ॥  
 कथं धेयोऽर्जितं तेन कथं मातृ महीवरम् ।  
 कथं केवस्मुत्पाद्य सुसम्भं सुस्वयम्ययम् ॥ १२८ ॥  
 कथं विद्युत्तरा नाम्ना तन्निमित्ताद्भूभुनिः ।  
 तेन साह्यं भुनीतां स्वाच्छतं पय मितन्त्रियम् ॥ १२९ ॥  
 इदं महापसर्गं हि समापाय सहिष्णवः ।  
 बभूवुस्त महात्माना न स्वस्केषुः समापितः ॥ १३० ॥

कथं चैतस्क्रयावृत्तं कथयन्मपिस्तरात् ।  
 यथा बालैरपि प्रायो नाप्यं स्याद्धुमृदूक्तितः ॥ १३१ ॥  
 इत्युक्त्वा मुक्तिताऽभिज्ञः स्थितो बार्धयमीव सः ।  
 माघु माघुभिराभ्रातं साधा मुक्तिमित् त्वया ॥ १३२ ॥  
 ततः श्रीघण्टपङ्कजी मल्ल प्रोवाच मिष्टनाह ।  
 मध्येसमं गुरुणां वा कृपया लामिता यतः ॥ १३३ ॥  
 सर्वैर्भ्यापि लघुपायांश्च कषलं न क्रमादिह ।  
 ययसाऽपि लघुबुद्धो गुणैर्ज्ञानादिभिस्तया ॥ १३४ ॥  
 गुरीरनुग्रहं ज्ञात्वा सर्वैरादेशितस्त्वयम् ।  
 अन्यया तादृशो रंभः कथं वाचासतां वधौ ॥ १३५ ॥  
 मृगारिरिति नाज्ञा स्यादुत्कृषो न गजद्विपाम् ।  
 अत्र दापावतारऽपि महत्त्वं महतां कियत् ॥ १३६ ॥  
 किं तत्र प्रभयेनह य निसगोच सज्जना ।  
 धाराधरायतं येषां कृपाम्बुशिक्षिरं वच ॥ १३७ ॥  
 पवित्रीकुरुते विन्धं निर्वापयति तत्तपः ।  
 पुण्यसस्यादिकं मृतं तदास्तां हृदि भेदनिष्ठम् ॥ १३८ ॥  
 दुर्मनाऽप्यधमो वा तद्विक्रियायै स दुष्टधीः ।  
 यतोऽप्यनुद्धतं नम्रं परं सन्मानिताऽपि च ॥ १३९ ॥  
 भवेत्साधुरसाधुर्वा कृतं धितनयानया ।  
 स्वष्टं भुत्वावहं कार्यं सर्वैः स्वार्थं समीहताम् ॥ १४० ॥  
 यदि सति गुणा बाण्यामभौदायाद्रया क्रमात् ।  
 साधवः साधु मन्यन्त का भीतिः घटविद्विपाम् ॥ १४१ ॥

मय साधूनसाधूंश्च प्रतिषिद्धापयाम्यहम् ।  
 अथ भ्रान्तः ममादाढा समर्ध्वं स्मरसिन मयि ॥ १४२ ॥  
 मृदूकत्या कपितं किंचिद्यन्वयाप्यत्यमपसा ।  
 स्वानुभूत्यादि तत्सर्वं परीक्ष्याद्यनुमर्हय ॥ १४३ ॥  
 इत्याराधितसाधुक्तिर्हृदि पंषद्युक्तं नयन् ।  
 जम्बूस्वामिफ्रवाभ्याज्जादात्मानं तु पुनाम्यहम् ॥ १४४ ॥  
 सांख्यमात्मा शिशुदात्मा शिद्रूपो रूपवर्जित ।  
 अतः परं य(व) का संज्ञा सा मदीया न सन्नत ॥ १४५ ॥  
 यज्जानाति न तन्नाम यज्जामापि न बाधवन् ।  
 इति धेनाक्षयानाम कथ कर्तुं नियुज्यते ॥ १४६ ॥  
 अथासम्प्रातःश्रित्वाद्यैकौऽहं द्रव्यनिष्पयात् ।  
 नाज्जा पयायमात्रत्वादनंतस्वंपि किं वदं ॥ १४७ ॥  
 धन्यास्ते परमात्मतत्त्वममर्षं प्रत्यक्षमत्यस्रतः  
 साक्षात्स्वानुभवकृगम्यमहसां विवृति धं साधवः ।  
 सांख्यं सज्जनतया न यज्जनतया प्रज्ञाम्बिर्वातर्षसा-  
 स्नानानंतमुन्वामृताम्बुसरसीहंसाश्च तन्म्यौ नम ॥ १४८ ॥

इति श्रीजम्बूस्वामिचरिते मगधच्छ्रीपश्चिमतीर्थकृतोपदेशानुसरित-  
 स्यात्प्रज्ञानवदगणपयविद्याविशारदपण्डितराजमहोपनिषिते  
 साधुपास्तत्रमत्रसाधुटोडरत्नमम्यभिते  
 कथाऽनुसुखवर्जो नाम प्रथम सर्ग ।

## अथ द्वितीयः सर्ग



सम्यक्त्वरत्नं भवसाञ्जबाष्पौ पोषायमानं निपतञ्जनानाम्  
श्रीसाधुसाधार्षिणि दोढरस्य पासात्मजस्यास्त्रिलक्ष्मणे वै ॥ १ ॥

इत्याशीर्षाद् :

श्रीनाभेयं भिनं बंदि घृपतीर्षमवर्तकम् ।  
अमित निर्मिताश्लेषकर्माणं च जगद्गुरुम् ॥ १ ॥  
नानातरीपनिकरैः परितः परीतं  
स्वर्णाश्लेषमभृतातपवारणोऽसौ ।  
गंगीघषामरमुबीजित एष जम्बु-  
द्वीपीऽधिराम इव रामति मध्यवर्ती ॥ २ ॥  
तत्रार्द्धेदुसमाकारं शेषं स्याद्भरताद्वयम् ।  
उत्सर्पिण्यवसापिण्योर्षटीर्षमिवास्पदम् ॥ ३ ॥  
गंगासिन्धुनदीभ्यां च पदस्मंटीकृतविग्रहम् ।  
भिजयाद्धर्नेग मित्वा गताभ्यां लवणांशुषौ ॥ ४ ॥  
द्विरुक्ता सुपमाया स्याद्वितीया सुपमा यता ।  
सुपमा दुःपमान्तान्या सुपमांता च दुःपमा ॥ ५ ॥

- १ इत्यन्तरौषधिकरेः परितः परीतं  
स्वर्णाश्लेषमभृतातपवारणोऽसौ ।  
भयौषधामरमुबीजित एष जम्बु-  
द्वीपोधिराम इव रामति मध्यवर्ती ॥ अश्विर्षिण्यम् १-७ ।  
२ लवण । ३ मध्यवर्तः । ४ वर्तत ।



पथमी दुःपमा क्षेया समा पट्टपतिद्वुःपमा ।  
 भेदा इमञ्चसर्पिण्या वस्सर्पिण्या विपर्ययः ॥ ६ ॥  
 वस्सर्पिण्यवसर्पिण्यौ कासां सातमिदाविमौ ।  
 स्थित्युत्सप्पावसर्प्याभ्यां लम्पान्वयाभिषेनकां ॥ ७ ॥  
 काञ्चनक्रपरिस्रांस्या पदसमा परिषत्तन ।  
 तावुभौ परिषत्तेव तामिस्रेनरपेदावन् ॥ ८ ॥  
 पुरा स्यामवसर्पिण्यां क्षेपेऽस्मिन् भरताद्वय ।  
 मध्यमं न्वदमाभित्य प्रयते मयमा सर्मा ॥ ९ ॥  
 सागरोपमकोर्णां क्वाथी स्याच्चतुराहता ।  
 तस्य कामस्य परिमा क्वा स्थितिरियं मत्वा ॥ १० ॥  
 देवाचरकुम्भासु या स्थितिः समवस्थिता ।  
 सा स्थितिर्भारत वपे युगारंभे स्म जायत ॥ ११ ॥  
 तदा स्थितिमनुप्यार्णां त्रिपत्न्योपमसमिता ।  
 पत्सद्वस्त्राणि चापानाश्रुतवशा वपुषः स्मृतः ॥ १२ ॥  
 मञ्जास्थिवर्धनाः सौम्याः सुंन्राकारचारवः ।  
 निष्टसकनकञ्जाया वीम्वन्त ते नरोत्तमाः ॥ १३ ॥  
 मुकुट कुण्डलं हारो मन्वला कृत्कागद्री ।  
 कयूरं मङ्गमूर्धं च तेषां सद्वद्विभूषणम् ॥ १४ ॥  
 एते पुण्यादयाञ्चत रूपसावप्यसंपदः ।  
 ररम्यन्ते चिरं स्त्रीभिः सुरा इष सुरास्ये ॥ १५ ॥  
 महासन्ना महाधैर्या महागर्हका महामसः ।  
 महानुमावास्तं सर्वे महीर्यन्ते महादयाः ॥ १६ ॥

१ सावक्यमिषानो । २ वपुषि । ३ इत्युत्सप्पौ । ४ क्वा । ५ चिरतरं ।  
 ६ महासन्नाः ।

तेषामाहारसंप्रीतिर्जायते दिवसैस्त्रिभिः ।  
 केशलीफलमार्षं च दिव्यान्न विन्दन्ति वै ॥ १७ ॥  
 निर्व्यायामा निरासंका निर्नीहारा निरामयाः ।  
 निःस्वेदास्तं निराषाष जीवति पुरुषायुष ॥ १८ ॥  
 स्त्रियोऽपि तावदायुष्कास्तावदुत्सपशुचयः ।  
 कल्पद्रुमेषु संसक्ताः कल्पवन्त्य इषोज्ज्वलाः ॥ १९ ॥  
 पुरुषेष्वनुरक्तास्तास्त च तास्वनुरागिणः ।  
 यावज्जीवमसंश्लिष्टा भुंजते भोगसंपदः ॥ २० ॥  
 स्वभानमुदरं रूप स्वभावमधुरं च ।  
 स्वभावचतुरा घृष्टा तेषां स्वगायुषोमिव ॥ २१ ॥  
 रुष्याहारगूहातार्थमाल्यभूषाम्बरादिकम् ।  
 भोगसाधनमितेषां सर्षकल्पतरुञ्जयम् ॥ २२ ॥  
 मंदगंधवहाधृतचसर्द्धशुकपन्थमाः ।  
 नित्यान्नापा विरानंत कल्पोपपदपादपाः ॥ २३ ॥  
 कालानुभावसमूतसप्रसामभ्यष्टरिती ।  
 कल्पद्रुमास्तदा तेषां कल्पतेऽर्षीष्टसिद्धये ॥ २४ ॥  
 मनाभिरुचितान् भोगान् यस्मात्पुष्पकृतां नृणाम् ।  
 कल्पयन्ति घतस्तर्ग्वैनिरुक्ताः कल्पपादपाः ॥ २५ ॥  
 मधुसूयनिभूषास्रग्भ्योतिर्पिष्टहांगलाः ।  
 भामनामप्रबद्धांगा दृष्टभा कल्पप्रासिनः ॥ २६ ॥

१ कर इति शेषीनायाद्यं । २ मद्यवन्ति । ३ मन्मदरिणा । ४ विद्वद्विद्य ।  
 ५ देशान्नामिव । ६ वापिर्ष । ७ केपल । ८ पवन । ९ कल्पद्रुमा । १० वदित्वा ।

इति स्वनामनिर्दिष्टां कुर्वताऽर्थप्रियाममी ।  
 संज्ञाभिरेव निस्पृष्टास्तता मातिमत्तन्पत् ॥ २७ ॥  
 तथा मुक्त्वा चिर यौगान् स्वपुम्पपरिपाकजान् ।  
 स्वापुरंते विनीयंत तं पना इव शारदाः ॥ २८ ॥  
 नृभिकारममात्रेण तत्कामास्यधृतने वा ।  
 आदितां तदुं त्यक्त्वा तं दिवं यांत्यननसः ॥ २९ ॥  
 इत्यापहालभदाऽवसपिण्या वणिता मनाक् ।  
 लसत्कुरुसमः नया विपिरभावधार्यताम् ॥ ३० ॥  
 तथा पयाधर्म तस्मिन् काले गलनि मदताम् ।  
 यातासु वृसवृषायुःशरीरोत्सधृत्तिषु ॥ ३१ ॥  
 सुपमासप्तमः कालो द्वितीयः समवर्धतां ।  
 सागरापमज्योदीनां विद्यः कौट्योऽस्य समितिः ॥ ३२ ॥  
 तदास्य ( तदास्मिन् ) भारते शर्पे मध्यमोगहृदां स्थितिः ।  
 जायत स्व परां भूतिं तन्नाना कल्पपादैर् ॥ ३३ ॥  
 तदा मर्त्या हि मर्त्यामा द्विपत्यापमजीविनः ।  
 पशुःसरसपापोचविग्रहाः शुमर्षिष्टिताः ॥ ३४ ॥  
 कालोपरकलास्पदिदेहयोस्तनास्मिवाग्बलाः ।  
 दिनद्वयेन तेऽर्जति पार्श्वमधोत्तमाश्चक्रम् ॥ ३५ ॥  
 शेषो विपिस्तु निःशुषो हरिर्षसमो मतः ।  
 ततः क्रमेण कालेऽस्मिन्नवसर्पत्यनुक्रमात् ॥ ३६ ॥  
 प्रहीणाग्दासवीर्यादिभिश्चेपाः प्राक्तना यदा ।  
 जघन्यभागभूमीनां पर्यादाविरभूच्छदा ॥ ३७ ॥

यथावसर संप्राप्तस्त्वृतीयः कासपर्ययः ।  
 प्रवर्तते सुराम्ब स्वा मर्यादामलपयन् ॥ ३८ ॥  
 सागरोपमक्षेत्रीनां कोट्यौ द्वौ छम्पसंस्थितौ ।  
 कालेऽस्मिन् भारते वर्षे मर्त्या पत्योपमायुषः ॥ ३९ ॥  
 गम्भूतिममितोच्छ्रायाः मियग्रश्यामविग्रहाः ।  
 दिनान्तरेण संप्राप्ता पोप्रीफसमिताशना ॥ ४० ॥  
 ततस्त्वृतीयकालेऽस्मिन् व्यतिक्रामत्यनुभवात् ।  
 पत्योपमाष्टमागस्तु पदास्मिन् परिशिष्यत ॥ ४१ ॥  
 तदा कुलकरा नाम्ना प्रतिधुत्पादय ऋमात् ।  
 षट्पदा भवन्त्येव कर्मभूपूर्वभूपवत् ॥ ४२ ॥  
 तदा कर्मभुवां सर्वो व्यवहारः प्रवचत ।  
 मर्त्यग्रभूपर्वराहामनुसंख्य ममा इव ॥ ४३ ॥  
 कास प्रीत्यस्य चायस्य मयशृष्ट्यादयः प्रमात् ।  
 नायन्तश्च यथा नाभिराह कुलकरस्य च ॥ ४४ ॥  
 तस्यैव काले असदा कालिकाकपुरस्त्रियः ।  
 मादुरासभभोभाग सांद्रा सन्द्रनरासना ॥ ४५ ॥  
 नभानीरघमारुणपञ्चमृम्भम्भोभुवां चय ।  
 कालाद्भूतसामर्थ्यरारुणः मृत्सुपुद्गले ॥ ४६ ॥  
 विपुर्दतो महाजाना र्पता रेमिर घना ।  
 सदैमर्कसा मदिना नागा इव सश्रुतिता ॥ ४७ ॥

१ कालिका । २ प्रवचन्ते । ३ विपुः । ४ विषं विष्टिः (कर्म) । ५ कालिका । ६ कालिका । ७ कालिका । ८ कालिका । ९ कालिका । १० कालिका ।

पनायनपनष्पानैः महता गिरिभिश्चयः ।  
 मत्याभ्रोष्मिवातनुः प्रवृष्टाः मतिश्चन्द्रकैः ॥ ४८ ॥  
 यथा च पातवान्कूर्बन् कसोपौषान् कन्वापिनाम् ।  
 पनापनासिमुक्ताभः कणवाही समीरणः ॥ ४९ ॥  
 चातका मधुरं रेणुरभिर्नय पनागमम् ।  
 अकस्मात्ताडयारममातन शिखिनां कुसम् ॥ ५० ॥  
 अभिपक्षुमिषारम्भा गिरीर्नभामूर्धा चयाः ।  
 मुक्तपारं प्रथर्षतः मत्सरद्वारिनिर्घरात् ॥ ५१ ॥  
 श्वनंतो यश्चपुर्मुक्तस्पृष्टपारा पयाधराः ।  
 रुदत इव शीघ्रार्ताः कल्पवृक्षपरिस्रय ॥ ५२ ॥  
 विपुमद्यी नभोरंगे विशिभ्राहारमारिणी ।  
 मतिक्षप्यविहृत्तांगी नृत्स्वारंभमिषातनौत् ॥ ५३ ॥  
 तद्विहृत्क्षप्यसंसर्क्तं कसोपसैर्महाजसः ।  
 कृपिमक्षर्कैर्मेषैर्व्यक्तं पामरंक्रायितम् ॥ ५४ ॥  
 तदा जसभरोन्मुक्ताः मुक्ताफसदपदच्छाः ।  
 महीं निर्बापयामासुर्दिवाकरकराप्यतः ॥ ५५ ॥  
 गुणानाभिस्य सामग्री प्राप्य द्रव्यादिसप्तजम् ।  
 संख्यास्यंङ्कुरावस्यामभ्रत्या कणिष्ठास्रितः ॥ ५६ ॥  
 श्वनैः श्वनैर्विहृद्दानि शैभ्यु विरसं तदा ।  
 सस्यान्यकृष्टपय्यानि मानाभेदानि सर्वतः ॥ ५७ ॥  
 मजानां पूर्वमुकृतात्कालादपि च तादृशान् ।  
 मुपकानि यथाकासं फसदायीनि य(ज)ह्विरे ॥ ५८ ॥

नातिष्ठष्टिरष्टिर्षा वृत्तासीत्किन्तु मध्यमा ।  
ष्टिस्त्वत्सर्वेषान्यानां फलावाप्तिरधिष्ठिता ॥ ५९ ॥  
पाष्ठिकाकलमग्नीद्वियवगोधूमकङ्कव ।  
द्वयमाकृष्टाद्रथादारनीवारवरकास्तथा ॥ ६० ॥  
तिलावैस्वी ममूराश्च सर्पपो धान्यंभीरुर्षा ।  
सुद्धमापादकीराजमापनिष्पादकादधनाः ॥ ६१ ॥  
कुलस्यप्रिपुट्टौ धेति धान्यभेदास्त्विमं मताः ।  
सकुमुम्भा सफापासाः प्रजार्जीवनइतव ॥ ६२ ॥  
उपमागपु धान्येषु सत्स्वप्यपु तत्र प्रजाः ।  
तदुपायमजानानाः स्वता मूर्च्छसुद्धुर्मुहुः ॥ ६३ ॥  
कल्पद्रुमपु कास्त्वेन प्रतीनपु निराभयाः ।  
युगस्य परिवर्त्तेऽस्मिन्ममूवघ्नाकुलाकुलाः ॥ ६४ ॥  
तीव्रायामशनासा ( या ) यासुदीर्णाहारसंश्रया ।  
जीवनापायसंश्रितातिप्याङ्गुलीकृतपेतसः ॥ ६५ ॥  
युगसुख्यमुपासीनां नाभिपनुमपिचिमम् ।  
ते तं विद्यापयामामुरिति दीनिगिरां नरा ॥ ६६ ॥  
जीवामः कथमराप नापानाया विना द्रुमे ।  
कल्पदायिमिरान्यमबिस्माधरपुष्पकाः ॥ ६७ ॥  
इमे केषिदितो देव तरुभद्रा समुत्पिता ।  
धास्ताभि कमनघाभिराहयन्तीर नाऽपुना ॥ ६८ ॥

१ अष्टरिष्य । २ नापी । ३ अमली । ४ 'अमिषा' । ५ विवरकम्पु ।  
६ सुमुलकम् । ७ प्रजा ।

क्रिमिमे परिहृतव्याः किं वा भोग्यफला इमे ।  
 फलेग्रहीनिमज्मान्वा निवृणन्त्यनुपान्ति वा ॥ ६९ ॥  
 अमीषामुपपन्नत्पुं केष्यमी तृणाद्युत्पन्नाः ।  
 फलनम्रदिस्वा मीति विघ्नदिष्टु मितोऽभुतः ॥ ७० ॥  
 एतेषामुपयागः स्याद्विनियोग्य कथं नु वा ।  
 क्रिमिमे स्वैरसंग्राह्या न वेदीद पदाद्य नः ॥ ७१ ॥  
 स्वभेष सर्वमप्येतद्देत्सि नामेऽनभिष्टकाः ।  
 पृच्छामो वयमद्यार्थास्ततो बृहि प्रसीद नः ॥ ७२ ॥  
 इति कर्तव्यतामुद्धानविघ्नार्तास्तदार्थकान् ।  
 नामे ( वि ) र्त्त भयमित्युक्त्वा व्यामहार पुनः सतान् । ७३ ।  
 इमे कल्पतरुच्छेदे द्रुमाः पञ्चफलानताः ।  
 युष्मानद्यान्नुगृणंति पुरा कल्पद्रुमा यवा ॥ ७४ ॥  
 मद्रकास्तदिम योग्याः कार्या न भ्रान्तिरत्र वः ।  
 अमी च परिहृतव्या दूरतो विपमुलकाः ॥ ७५ ॥  
 इमाश्च काश्चनौषध्यः स्वैरकार्यादयो मताः ।  
 एताः संभोग्यमभ्यर्थं व्यजनाद्यैः सुसंस्कृतम् ॥ ७६ ॥  
 स्वभाबमधुराद्यैश्च दीर्घाः पुंद्गुदुश्चका ।  
 रसीकृत्य मपातव्या दन्तैर्यन्त्रैश्च पीडिताः ॥ ७७ ॥  
 गजकुम्भस्पृशे तेन मृदा निर्बन्धितानि च ।  
 पात्राणि विविधान्येषां स्वाल्पादीनि दयासुना ॥ ७८ ॥  
 इत्याद्युपायकचनेः प्रीत्या सत्कृत्य तं मनुम् ।  
 भेमे ( शु ) स्ववर्धितां बृधि प्रमाः काशौषितां वदा ॥ ७९ ॥

मजानां रितकृद्भूत्वा भागभूमिस्थितिव्युत्तौ ।  
 नाभिरामस्वताद्भूतो भेदे कल्पतरुस्थितिम् ॥ ८० ॥  
 तस्याद्वाहकस्यापि मरुद्भ्या समं तदा ।  
 यथाविधि सुराश्चक्रुः पाकशोसनभासनात् ॥ ८१ ॥  
 ततश्चापि महादेशानयोर्ध्यांश्च पुरीं व्यधुः  
 ग्रामपत्तनसीमादि सर्वे चक्रुः सुरास्वदा ॥ ८२ ॥  
 ततश्चभृति क्षेत्रेऽस्मिन् वचते कर्मभूरिति ।  
 अथस्यांतरमेव स्यात्कालचक्रपरिभ्रमात् ॥ ८३ ॥  
 सागरोपमकोटीनां कोटि स्यात्तदवस्थितिः ।  
 तुर्यपंचमपष्ठान्च भेदास्तत्राप्यमी क्रमात् ॥ ८४ ॥  
 तत्रोक्तसंख्यकस्तुर्यो कालः स्यात्किंचिद्दृक् ।  
 द्वाषट्कारिंश्चद्वर्दानां सदस्राणि दिनैश्च सः ॥ ८५ ॥  
 तत्रादौ तुर्यकालस्य षृपमस्तीर्यकृद्भवेत् ।  
 ततश्चभृति मासस्य मासश्च षष्ठोऽभवत् ॥ ८६ ॥  
 ततोत्सेपं शरीरस्य घनुः पंचशतं मतम् ।  
 तत्कर्षेण मनुष्याणां पंचविंशतिसापिकम् ॥ ८७ ॥  
 आयुश्चमाणमास्रातं पूर्वाणां कश्चिद्वत्तमम् ।  
 मध्यमं च निष्ठष्टं च विज्ञेयं परमागमात् ॥ ८८ ॥  
 तत्र तीर्यकराः सर्वे चतुर्विंशतिसम्पया ।  
 जायन्ते पंचकल्याणमासपूजादिर्बभूवुः ॥ ८९ ॥  
 तत्र केचिन्महात्मान कासनधिपयसादिह ।  
 मासावीन्द्रियसांस्यास्त निवार्तास्मानुमा वयम् ॥ ९० ॥



कैचित्सम्यक्त्वपूर्वाणि व्रतानि पात्य महाभियः ।  
 सर्वापिसिद्धिपर्यन्तं सुमतिं सुखमंगिनः ॥ ९१ ॥  
 परे व्रतानि संप्राप्य सम्यक्त्वेन विना बुधि ।  
 कुहवाऽपि प्रियायागाद् प्रेषयत्सुखं ययुः ॥ ९२ ॥  
 कैचित्सम्यक्त्वरिक्ताश्च व्रतेनापि परिष्पृताः ।  
 भद्रा दानरतिं प्राप्य योगभूमौ प्रयाति हि ॥ ९३ ॥  
 परे पूर्वं हि ब्रह्मायुः पद्मादुत्पन्नदर्शनाः ।  
 सत्यान्नदानतां धूम्रवापुर्भोगभूमुत्सुम् ॥ ९४ ॥  
 कैचिद्भागेषु ससक्ता प्राणिवर्गेषु निर्दयाः ।  
 पर्मात्पराहस्तुता दुष्टाः दुःखं देवभ्रे पतंत्यमी ॥ ९५ ॥  
 हा दुस्स्याद्यं सुदुष्कर्म दुस्संख्यं प्राणिनां महत्  
 येन धर्मस्य सामग्री सर्वापि विफलीकृता ॥ ९६ ॥  
 इतीत्ये दुर्गकस्त्रीऽसौ पंथा स्याद्द्वेषमोक्षयोः ।  
 तस्माद्भिगद्यते सद्भिः कर्मभूरितिनामवः ॥ ९७ ॥  
 अपि चास्मिन् महाभागाश्चक्रिणा द्वादश स्मृताः ।  
 केशवास्ताद्वैपरीशैश्च ब्रह्माश्चापि नव स्मृताः ॥ ९८ ॥  
 विषष्टिश्चसप्तशतैश्च महापुरुषगोचराः ।  
 जायंते यत्र निर्विघ्ना साऽप्य क्लृप्तपदुर्गक ॥ ९९ ॥  
 सर्वत्र धुनयं सुखवत्संति सहस्रतपारिणः ।  
 वृद्धव्रतपराः कैचित्संति ते गृहमथिनः ॥ १०० ॥

एहस्याश्च सदाचाराः पूजादानादितत्परा\* ।  
 एकादिकं यथाशक्ति प्रतिमार्ष्यं धृतं दधु\* ॥ १०१ ॥  
 कित्त्वैकादशसङ्गात्मधृतवानिह कश्चन ।  
 त्यक्तागारः सनिर्विण्णस्तिष्ठत मुनिवचसा ॥ १०२ ॥  
 आगोपालमयाषासं सर्वो जैन प्रमाजनः ।  
 कृत्वाधिदुःश्रवा न स्यादृषक्तं पार्ल्वदिनामिह ॥ १०३ ॥  
 किन्तु हुडावसर्पिण्यां कालद्रोपादिह कश्चित् ।  
 प्रादुर्भवंति पार्ल्वदास्तथापि च भृषसतिः ॥ १०४ ॥  
 गतायामवसर्पिण्यामुत्सर्पिण्यां तथैव च ।  
 भर्सास्यफोटिवारं स्यादेका हुंदावसर्पिणी ॥ १०५ ॥  
 अवश्य भाबिनी सैर्यं भूत्वा चापि गता पुरा ।  
 अनवानवन्न\*चापि वत्सरे पल्पमासवत् ॥ १०६ ॥  
 तदा भवत्यनर्पानां प्रादुर्भावा वसादिह ।  
 सीमान कालचक्रस्य भर्तुं शक्यो न कश्चन ॥ १०७ ॥  
 यथा स्वयं स्वभावाद् वर्यान्ते नरदिप्यत ।  
 तथा कालपरिभ्रात्या द्रम्याणां च ध्यवस्यति\* ॥ १०८ ॥  
 तद्यथा तत्र हुडावसर्पिण्यां वा यथागमम् ।  
 तीर्थेशामुपसर्गो हि महानर्थो महात्मनाम् ॥ १०९ ॥  
 मानभग\*श्च चक्रं जायत जातपूर्वक\* ।  
 इत्यादि वदन्त्या सति राषामगाधरा\* ॥ ११० ॥  
 हिंसा प्राणिवचस्पेय दुष्टमार्जनकारणम् ।  
 यागार्थं भयस हिंसा मन्यंते दुर्षियो द्विजाः ॥ १११ ॥

एकमेवाद्वयं ब्रह्म नह नानास्ति कश्चन ।

संति वेदाविनः केचिद्ब्रह्माद्वैतमवादिनः ॥ ११२ ॥

तन्मतं यथा—

“विश्वतश्चक्षुस्त विश्वतो मुखो विश्वतो बाहुरुत विश्वतः पादु  
संबाहुभ्यां घमति संपतप्रैषोषाम्भूमी अनयन् देव एकं एव” ॥१॥

सर्वयानित्यमेवैतत्सर्वं केचिज्जगुर्यया ।

आकाशं च तवात्मादि सर्वमेकान्तवादिनः ॥ ११३ ॥

यत्सचत्सणिक सर्वं यथा स्रग्दश बारिदः ।

इति बौद्धादयः केचित् क्षणिकैकान्तवादिनः ॥ ११४ ॥

पंचभूतात्मकं तत्त्वं जीवा नास्तीह कश्चन ।

ततो बंधा न मोक्षोऽस्ति असुः कापास्मिन्ना इति ॥ ११५ ॥

ज्ञानानां यदि घर्माणां संतानोच्छेदनात्मकः ।

मोक्षो वाच्यः स जीवस्य मन्यते दुर्दृष्टः पर ॥ ११६ ॥

इत्यादि बहवो प्रोक्तास्तेषामंतर्मिदात्मकाः ।

ते च हुंदावसर्पिभ्यां मार्यते नान्यदा कश्चित् ॥ ११७ ॥

स्याद्वाद्गर्भिणी श्रीयाञ्छैनी सिद्धान्तपद्धतिः ।

यथेव यत्रसारेण संबिताः कुमताद्रयः ॥ ११८ ॥

निग्रहस्थानमेतेषां पुरस्ताद्दृश्यते कविः ।

मुख्यो विबलितो वाच्यस्वप्न दिग्मात्रतोऽपरः ॥ ११९ ॥

१ सर्वं वै कश्चित् ब्रह्म वेदं ब्रह्मविदं विदम ।

आत्मं तत्र वदन्ति न तत्र पश्यते कश्चन ॥

इति अम्बुत्सामिचरिते १-१४ ।

१ अम्बुत्सामिचरिते १४-१९ ।

अपि तेषां कृत्स्निगानि नानारूपाणि सर्वश्रु ।  
 भिक्षुलादिमद्ययस्मैर्विकृतानि भवत्यहो ॥ १२० ॥  
 एकद्वंद्वी द्विद्वंद्वी च त्रिद्वंद्वी चापि कश्चन ।  
 हंसः परमहंसोऽपि महारण्ये पशूपमा ॥ १२१ ॥  
 इतिप्रभृति यावति कृत्स्निगानि कृत्स्निगिनाम् ।  
 नाममात्रतया तानि क्षमा यस्तु न कश्चन ॥ १२२ ॥  
 अलं वर्णनया चास्य यत्र पापा समस्ततः ।  
 हृष्यन्ते यथना भूपाः साधवो व्याधिपीडिताः ॥ १२३ ॥  
 इदमत्र समाकृतं विज्ञेयं परमार्थिभिः ।  
 जैना धर्मं तृणं यावद्विस्मार्यो न महात्मभिः ॥ १२४ ॥  
 यथाष्पाताऽपि सौवर्ण्ये आत्यजायुनद स्वतः  
 न जहाति तथा साधुः क्षुद्रैः क्षुण्णोऽपि धर्मवत् (ताम्) ॥१२५॥

१ ठे व द्विजा एव मय्यत्रामभेदात्पुर्विद्याभिधीयन्ते कुटीचर-बहुरक-ईश-  
 परमहंसभेदात् । तत्र त्रिद्वंद्वी त्रिद्विधो ब्रह्मगुणी गृहस्थायी व्रजमानधीमही  
 सत्यपुत्रश्रेष्ठस्तु कुटीचरं निवसन् कुटीचर उच्यते । कुटीचरानुसंधेनो विज्ञेह  
 मेवत्तभिदातना विष्णुवापसी बहीतीरस्थायी बहुरकः कल्पते । ब्रह्मगुण  
 शिष्याभ्यां तद्विदः कर्ताकम्बरहण्डवासी मामे केवलायं तपरे व विद्वानं निवसन्  
 विष्णुस्तु विष्णुशक्तिं विद्वेदेतु भिक्षुं मुञ्जकम्बर शक्तिविपदा देवेतु धम्म  
 इत उमुच्यते । इम एवात्यश्रेष्ठमत्तुर्वर्त्येयिहमोरी स्वेष्टया एवचर ईशनी  
 शिषं यच्छन् शक्तिहीनतावामनयानमही केरन्तेकष्यापी परमहंसः समान्यकल्पे ।  
 एतु वदुत क. पटीऽपिः । एते व वन्तातेऽपि केरन्तेकष्यापदेकम्बकनिनः  
 शम्भार्येकीरित्तायवेद्य कुटीः श्चोरकम्पेऽभिवाच्यताये वया व्यवतिष्ठन्ते तथा  
 एतन्नवांसिभुनेरहणेम् ।

उच्छ्वस-

“एष लोको बहुमानमापितः स्यान्नितेन विविधेन कर्मणा ।  
 पश्यतस्तद्विकृती महात्मनः सोममति इदं न योगिनः” ॥११॥  
 इति स्याद्वर्णितः सोऽयं तुषः कार्त्तव्यं महानिह ।  
 क्षेपा विपिस्तु सर्षोऽपि रिक्तयः परमागमात् ॥ १२६ ॥  
 यदा चतुर्युक्तस्य क्षेपमाश्राज्यतिष्ठते ।  
 तदा स्यात्तीर्थनाथस्य यथा वीरस्य निर्भृतिः ॥ १२७ ॥  
 तदा वरसुखस्य मादुभृतिस्त्वयं हि ।  
 यथाभे वर्द्धमानस्य पञ्चान्मीक्षं गतास्रपः ॥ १२८ ॥  
 सपर्मा च सुपर्मा च अम्बुनामोत्सुकवसी ।  
 यापद्गपष्टिः सर्षं स्यात्तगवन्निर्भृत् परम् ॥ १२९ ॥  
 ततो यथाकर्म विष्णुर्नदिमिषाऽपगाश्रितः ।  
 गोवर्द्धना मद्राहुरित्याशाया महाधियं ॥ १३० ॥  
 चतुदशमहापिद्यास्यानानां पारगा इमे ।  
 कास्त्रमाणयेतेषां कात्त्येन शरदंशतम् ॥ १३१ ॥  
 विद्यास्त्रमोष्ठिसाधार्योः सधिया जयसाहयाः ।  
 नागसेनश्च सिद्धार्थो वृत्तिपणस्तपश्च च ॥ १३२ ॥  
 विमयी बुद्धिमानेगश्चा पर्मादिष्वम्भतः ।  
 सेनश्च दशपूर्वाभां धारुणः स्युषेधाक्रमम् ॥ १३३ ॥  
 अदीर्घं शतममन्द्रानापतेर्पा कास्त्रसग्रह ।  
 तदाप्यात्मादितृत्वानां पूर्णोपद्रव एव हि ॥ १३४ ॥

१ यथास्त्रमाणयेतेषां कात्त्येन शरदंशतम् । यथाभे वर्द्धमानस्य पञ्चान्मीक्षं गतास्रपः ।  
 विद्यास्त्रमोष्ठिसाधार्योः सधिया जयसाहयाः । २ यथाकर्म ।

ततो नक्षप्रनामा च जयपाले (सो) महातपाः ।  
 पांडुस्य ध्रुवसेनश्च कसाचार्य इति क्रमात् ॥ १३५ ॥  
 एकादशांगभिधानां पारगाः स्युर्मुनीश्वरा ।  
 विश्वद्विभ्रतमन्दानामेतेषां कालसग्रहः ॥ १३६ ॥  
 तदा तत्त्वोपदशस्य भागाश्चैर्दानिरिष्यति ।  
 करस्यनीरमन्यायात्पात्क विश्वविशारदैः ॥ १३७ ॥  
 सुपद्रव्य यश्चामद्रो भद्रभाद्रुपहायशाः ।  
 सोहार्यभेत्यमी ज्ञेयाः प्रयमांगाश्चिपारगाः ॥ १३८ ॥  
 समानां श्रतमर्षां स्वात्कालाऽष्टादशभिर्पुत्रैः ।  
 तदा तत्त्वाफ्दंशश्च भागाश्चिनानशिष्यत ॥ १३९ ॥  
 तसांऽपि हीयमानोऽसौ श्रेयमात्राऽवतिष्ठते ।  
 दोषात्पचमकालस्य हीयते बुद्ध्या नृणाम् ॥ १४० ॥  
 तत्र दुःपचकालाऽरिषन् प्रमाणं जिनदेशितम् ।  
 शुद्धवर्षसहस्राणामेकविंशतिसहस्रया ॥ १४१ ॥  
 ततः श्रेय्यारभावः स्यान्मनपर्ययबोधया ।  
 देशावपि विना परमसर्वावधिबोधयोः ॥ १४२ ॥  
 ऋद्धीणां चापि सर्वासामभावस्तपसः सतैः ।  
 नापि देवागमस्तत्र कन्याणानामभावत ॥ १४३ ॥  
 कदाचित्कुमभित्कषित्कुभ्रदेवाः कथंचन ।  
 आगच्छति पुनस्तत्र सद्भि मोक्तं जिनागमे ॥ १४४ ॥  
 तमास्तृष्ट मनुष्याणामायुर्वर्षशत पतम् ।  
 विंशत्यापिक्रमेवद धनुर्कं वपुः स्मृतम् ॥ १४५ ॥

भस्मादायुःशरीराणां हानिः स्याद्य मतिज्ञानम् ।  
 धर्मस्यापि च कस्मिंश्चिददेशे सत्त्वं च वैद्यतः ॥ १४६ ॥  
 तत्राप्यस्ति निराधारं सम्पत्स्वद्रूपमादितः ।  
 सायिकं च भवेत्तत्र यत्र क्वबलिनो मिनाः ॥ १४७ ॥  
 उक्तं च—

“पहमे पहमे गियर्दं पदमं विदियं च सम्बन्धालेसु  
 स्वाइयसम्मत्ता पुण जस्य जिणा कबली तम्हि” ॥ १ ॥  
 महाव्रतानि संत्यस्मिन् वैद्यताऽणुव्रतानि च ।  
 दुर्लभानीह केषांश्चिदाणुपस्यानसप्तकम् ॥ १४८ ॥  
 किं चापि भद्रकां कश्चिदयादानादितत्पराः ।  
 श्रील्लापभाससंपूर्णां स्वर्गे गच्छन्त्यनारतम् ॥ १४९ ॥  
 इत्यादीनि च कायाणि विधत्ते यत्र चाग्निनाम् ।  
 आप्तोपदेशत साऽयं कासो दुःखमसंश्रकाः ॥ १५० ॥  
 पर्यन्ते चास्य यत्किञ्चिद् वृत्तार्तं तन्निगद्यते ।  
 सैद्यतोऽप्यस्यबुद्धीनां बुद्धिसंमर्षणसमम् ॥ १५१ ॥  
 यापिनि दुःखमकृच्छेऽस्मिन् श्रीप्रमेप्यति चापरे ।  
 पष्ठे दुःखमदुःखास्ये बह्यमाणकमस्त्वयम् ॥ १५२ ॥  
 कृत्रचित्सर्षविद्दृष्टे देशे भूपोऽपि धर्महा ।  
 स्यात्कसंकीर्ति विख्यातो हासाहस्यपिपीपमः ॥ १५३ ॥

१. प्रथमं प्रथमे निवर्तं प्रथमे द्वितीयं च सर्वश्लेषु ।  
 चायिचउज्ज्वलत्वं पुन यत्र किञ्च केषांश्चि तस्मिन् ॥  
 इत्वं यथा कस्मिंश्चिद्विद्वान्मपि उक्तं वेति क्त्वेन उक्तम् ।  
 २. निवर्तः ।

तस्य क्रिया समस्तास्ताः प्रजापीडाकरा स्मृताः ।  
 तासामुद्देशमात्रेऽपि न क्षमो ह्योऽपि कश्चिद् ॥ १५४ ॥  
 तावता पातकः सर्वे विलीयते स्रय यथा ।  
 साकृद्धर्ममयः सर्वः स्यात्क्रया विक्रयाऽथवा ॥ १५५ ॥  
 षषर्षधनमेर्न ष षषां जल्पति दुष्टधी ।  
 मन्ये प्राणिबिनाशाय केचलं कालनोदितः ॥ १५६ ॥  
 अथ तत्रापि वृषः साक्षाद्भ्युच्छिन्नमवाहृतः ।  
 यस्मादेका मुनिर्जनो विद्यते भानलिंगवान् ॥ १५७ ॥  
 एका चाप्यार्यिका तत्र ययाक्तव्रतधारिका ।  
 सज्जानिः श्रावकश्चैको जैनधर्मपरायण ॥ १५८ ॥  
 अथान्यथुः कलकारमा ध्यायत्येवं स पापधीः ।  
 न ह्यऽप्यत्र यदाज्ञाया परो नास्ति कराहत ॥ १५९ ॥  
 एषं भुत्वापमाः केचिज्जगुर्निन्दुरया गिरा ।  
 मुनिमुदिश्य द्वाऽथ स्यादकं करधर्मितः ॥ १६० ॥  
 उक्तं च—

“रंक्षि धर्मिणि धर्मिष्ठाः पाप पापाः समं समाः ।  
 तावास्तदनुवर्तेत यथा राजा तथा प्रजाः ॥ १६१ ॥  
 इत्याकर्ष्य स पापात्मा वाचः शान्वाच नित्याम् ।  
 पयाक्यंविद्यं दृश्य स्यात्तथाय विधीयताम् ॥ १६२ ॥

१ मार्कण्डेयः । २ श्रीशंकरः । नोमदेवदत्तवर्णनस्य चाम्बुधरेऽपि उक्तं चेति श्लेष उक्तोऽस्ति ।



ततो भूपाङ्गया ऋषिषेष्ठ पन्था मुनस्तदा ।  
 यद्वापयसंशुद्ध्या भिक्षायमन्ति स्म सः ॥ १६३ ॥  
 क्रमात्प्राप्ता विगुद्धात्मा तत्राप्राप्तकसच्चनि ॥  
 स्वामिभ्रमाऽस्तु तिष्ठात्र भाषकनापि सस्कृतः ॥ १६४ ॥  
 यथाज्ञार्यं विज्ञानज्ञा प्रसारितकरद्वयं ।  
 भाक्तुफाम स भाग्यस्य ग्रास गग्राह शुद्धयीः ॥ १६५ ॥  
 यावत्संस्तु स वायुं वारिता भूपकिंकरैः ।  
 मा मा मुञ्चेति दुःश्रम्यद्ब्रह्मापातायतैरिव ॥ १६६ ॥  
 अयं च प्रथमा ग्रासो भागधयाचितस्त्वया ।  
 क्षयः प्रतिदिनें तावद्यावद्राज्ञाऽभिभ्रंसनम् ॥ १६७ ॥  
 चक्रमात्रे दुराचारैर्युनिरागमकाभिः ।  
 सर्वं विज्ञापयामास कालावस्थांतरादिकम् ॥ १६८ ॥  
 भूमतस्समापन्नं दृष्ट्वासावर्षेष्टितम् ।  
 अन्यथानधर्ममृतिरिव पापक्रिया क्वचम् ॥ १६९ ॥  
 इति निदिपत्य शान्त्रज्ञा नीचनाशापरिष्पुतः ।  
 त्यक्त्वा पाणिपुटाहारं सावधाना भवन्मुनि ॥ १७० ॥  
 यावच्छीवं चतुर्षोपि मनावाकाययोगत ।  
 त्यक्त्वा (क्त) माहारकं सर्वं मुनिना भवभीरुणा ॥ १७१ ॥  
 ततोऽप्यायिक्त्या माता मुक्त रथादिहं स्वतः ।  
 सङ्गम्बनाविधा विषं सावधानतया घृतम् ॥ १७२ ॥  
 सखीक भाषकनापि चक्र सङ्गम्बनाविधिम् ।  
 मुनिवद्वरभोगस्या विरक्तं स्वशरीरक ॥ १७३ ॥

चत्वारोऽपि महात्माना लक्ष्मसम्पन्नत्वभूमिका ।  
 क्रमाशक्तशरीरास्त शिवि' याम्येत्यसंशयम् ॥ १७४ ॥  
 सदास्वर्जतरं तत्र मूर्ध्नि राक्षाऽपन्नपि ।  
 सताऽप्यनतरं नश्यद्विद्वि(१)श्रग्पाष्टात्किम् ॥ १७५ ॥  
 दधिदुग्धघृताघादश्च सर्वे गारसपर्यया ।  
 क्षणात्त्र विन्धीयंत पापांश्चादिव सपद् ॥ १७६ ॥  
 तता दुःपमदुःपमास्य पष्ट फालः प्रवर्तत ।  
 चिनष्टभागसंपत्का दुष्टश्चान्वयसंज्ञकः ॥ १७७ ॥  
 तत्र पादश्लवर्षाणां परमायुर्जिनादितम् ।  
 इस्तेकं षपुरुस्तेषुमुत्कर्षेण नृणां मतम् ॥ १७८ ॥  
 मध्य तथा जघन्ये च चिक्रेयं परमागमान् ।  
 तद्गदायुःशरीरसु तिरश्चापि सत्प्रयम् ॥ १७९ ॥  
 यथा दुःखाशुरा सर्वे तिर्येचश्च तथा नरा ।  
 फलापाहारमोक्षारो भूरधसु निवासिनः ॥ १८० ॥  
 नरा चरुत्तपस्त्राण्या मियस्त च विरोपिनः ।  
 तिर्येचाऽपि महाशूरा मुद कुचन्त्यहर्निशम् ॥ १८१ ॥  
 इत्वा परस्पर पापाः फलं त्वार्दति निर्दया ।  
 धमशुद्धरमारोक्ष दुष्टमात्मपमावतः ॥ १८२ ॥  
 मपाः क्वचित्कदाचित्च तत्र वर्पति पपतः ।  
 तेषां नैसर्गिकी तृष्णा प्रथमं याति न कश्चिद् ॥ १८३ ॥  
 इत्य षपसहस्राणामफविन्नतिसंम्यक् ।  
 काना गच्छति जन्तूनां दुःखं दुष्कमपास्त ॥ १८४ ॥

तद्वत् प्रसयोऽवश्यं माषी कालस्वभावतः ।  
 वर्पति सप्तसप्ताहं फारीपान्स्याद्यः क्रमात् ॥ १८५ ॥  
 इत्यमेकोनपचाशद्दिनं यावदुपद्रवः ।  
 महादुःखाकरो मीमो रुक्मार्त्तिको भवेत् ॥ १८६ ॥  
 द्वासप्ततिमीवानां वृषतीमियुनं तदा ।  
 तत्राभिफारिभिर्द्वैर्नीयंते गहरादिषु ॥ १८७ ॥  
 शेषमभार्यस्वंहंस्मिन् कृत्रिमं यस्मसाद्भवेत् ।  
 अकृत्रिमं तु केनापि कर्तुं क्षयं न पान्यया ॥ १८८ ॥  
 ततश्चिप्रावनिर्निस्था शेषमाभारतिष्ठते ।  
 भूतपूर्वो स्यः सीऽप्यमित्यमित्यमनतश्च ॥ १८९ ॥  
 एवं पद् समयो यत्र वर्तते पारिणापिका ।  
 मनुसोमैर्बिसोमैश्च तस्तेषु भरतादयम् ॥ १९० ॥  
 तत्रापि(स्ति) मगधा देशो विस्मयात् श्रुति सारवत् ।  
 नित्यप्रसुद्धिता यत्र मजा भागैः कृतात्सवाः ॥ १९१ ॥  
 बसाक्षसीपताकाख्या स्तेनिता यत्र सुद्धिता ।  
 मीर्मिता यत्र वर्पते मांति यत्र इष द्विपाः ॥ १९२ ॥  
 न सृष्टंति करवाषां यत्र रामन्वतीः मजाः ।  
 सदा सुखासुखानिध्याश्चेतयो नाप्यनीतयः ॥ १९३ ॥  
 यस्य सीमाभिभागेषु शान्त्यादिक्षेप्रसंपद् ।  
 सत्रैषफसत्रास्त्रिन्या मांति घर्म्या इष क्रियाः ॥ १९४ ॥  
 यत्र शास्त्रिनोपति स्वात्पर्वती शुक्लावली ।  
 शास्त्रिणाप्योऽनुमर्त्यते वृषती तीरणभियम् ॥ १९५ ॥

मंदगपबहा धृताः शालिबमा\* फलानताः ।  
 कृतसंराविणो यत्र छोट्कुर्वतीष पक्षिणः ॥ १९६ ॥  
 यत्र पुंद्द्रेष्टुवाटेपु यत्र चीत्कारहारिपु ।  
 पिबंति पयिकाः स्वैर रसं सुरसमैस्तवम् ॥ १९७ ॥  
 यत्र कूपतद्यकायाः काम सति अलाघयाः ।  
 तथापि जनतातापं हरंति रसवत्तया ॥ १९८ ॥  
 जनतापच्छिद्यो यत्र चाप्यः स्वच्छांपुसंयुताः ।  
 मांति तीरतरुच्छाया निरुद्धीप्या बहुमपा ॥ १९९ ॥  
 विपंका प्राहंबंत्यम स्वच्छा\* कुटिसप्तय ।  
 अर्संभ्याः मर्बयोग्याश्च विधिप्रा यत्र निम्नगाः ॥ २०० ॥  
 सरसा तीरेपु दंशेपु रुतं इसा विकुर्वते ।  
 यत्र कंठबिलासप्रमृणासशकलाकुला\* ॥ २०१ ॥  
 बनेपु बनमार्तगा मदार्यालितसोचनाः ।  
 भ्रमस्यविरतं यस्मिन्नाहातुमिष दिग्गमान् ॥ २०२ ॥  
 यत्र धृंगाप्रसलप्रकर्दमा दुर्दमा सृष्टम् ।  
 चत्स्वर्नति वृपा इष्ट्या स्यसेपु स्पलपद्मिनीम् ॥ २०३ ॥  
 स्वर्गावाससमा\* पुर्यो निगमाः कुरुसंनिमाः ।  
 विमानस्पदिनो गहाः प्रमा यत्र सुरोपमाः ॥ २०४ ॥  
 यत्र भंगस्वरंगेषु गमेषु मद्रभिफिया ।  
 वंदपाठुष्यमम्नपु सरासु अससंग्रह ॥ २०५ ॥  
 गर्वा गणा यथाकालमाप्तगमाः कृतस्वना ।  
 पोषयंति पयोभि\* स्वैर्मन यत्र घनै\* समाः ॥ २०६ ॥

निसर्गसुमगा नार्यो निसर्गपत्ररा नरा ।  
 निसर्गसन्निताग्रापा धाम्ना यत्र सृष्टे सृष्ट ॥ २०७ ॥  
 यत्र सत्याप्रदानपु मीतिः पूजामु धार्इताम् ।  
 शक्तिरात्यंतिर्ष्वी श्रीम् प्रापय च रतिवृणाम् ॥ २०८ ॥  
 देवस्यास्यकदत्रप्रम्मिभाम्ना राजसृष्टे पुरम् ।  
 यत्र राजन्यकं शत्रुवद्रामत त्रिषिरादिष ॥ २०९ ॥  
 यत्राश्रीन्निहसोपाग्रकम्भः प्रातेकुमर्ज ।  
 सदा संभाम्पत पारैः शतपन्तं नमस्तसम् ॥ २१० ॥  
 जिनप्रासादशिव्वरं शंभोर्त्तपितकर्मनै ।  
 किं किन्नाकाशगंगायाः प्रनाहः शतपा भवत् ॥ २११ ॥  
 सृष्टपावायनस्थानां नारीणां मुम्भमदनैः ।  
 वरुणपुडरीकानां सरसां धियमाषहन् ॥ २१२ ॥  
 यत्सुन्दरीणां सौन्दर्यं दर्भे दर्भे मुरन्निय ।  
 प्रस्यूहवकिता मन्य तस्युद्धन्मपितज्ञणा ॥ २१३ ॥  
 यत्र तापमिकेष्वानैर्धूपधूमधिवर्तनैः ।  
 सत्रव दुग्निर्घोत्या केकां तन्वति केकिनः ॥ २१४ ॥  
 तत्र रात्राधिरात्रोऽप्यं राजत श्रेणिकाः सुधीः ।  
 निर्जिताशेषभूपाम्भराशुधितपत्रद्वयः ॥ २१५ ॥  
 सर्वताज्म्य मुसह्माणि नासं वर्णयितुं कवि ।  
 तस्मादिग्माभमघाभ लक्ष्य सामुद्रिकं यथा ॥ २१६ ॥

१ तन्वति चालदुर्भ इत्यन्तरः । २ पत्रपत्रिभिः । ३ तीर्थेन्द्रिकं इत्यन्तरपार्थ  
 नात्रपत्नीव इत्यन्तरः । ४ यत्रप्रदन्तः । ५ केकां वापी ववूरत्य ।

शिरस्यस्य बभ्रुनीला मूर्द्धजा कृषितापताः ।  
 कामकृष्णसृजगस्य शिष्वो नु विजृम्भिता ॥ २१७ ॥  
 नेत्रमृगे मुखाम्बु सस्मितांशुत्करकसरे ।  
 षष्ठे स्म मधुरां बाष्पी मकरंदरंसोपमाम् ॥ २१८ ॥  
 नभ्रपाद्वितयं रेने ससक्त तस्य कर्णया ।  
 सुभ्रुती ताविभाभित्य शिशितु सुस्मदक्षिताम् ॥ २१९ ॥  
 उपकंठमसौ दधे हार नीहारसच्छबिम् ।  
 तारानिकरमास्यन्दारिष सवायमागतम् ॥ २२० ॥  
 बसःस्वलेन पृषुना सोऽपार्श्वंद्रनचक्षिताम् ।  
 मेरोर्नीलतदालम्भां क्षारदीपिष चद्रिकाम् ॥ २२१ ॥  
 मुकुट्येन्द्रासिनो मेरुमन्यस्य शिरसान्तिक ।  
 आहृतस्यायसौ नीलनिपषाषिष रेजतुः ॥ २२२ ॥  
 सरिदावर्षगभीरा नामियभ्येऽस्य निर्वभौ ।  
 नारीहृत्करिणीराधे पारिस्तातष हृत्तुवा ॥ २२३ ॥  
 रसनाषष्टित तस्य कटिमदलमाधमौ ।  
 हेमवेदीपरिसिप्तमिष मम्बुतुमस्यसम् ॥ २२४ ॥  
 ऊरुद्वयमभास्त स्म स्थिर पृष्ठ सुसहर्तम् ।  
 रामामनोगमालौनस्वंपलीलां समुद्रहन् ॥ २२५ ॥  
 धरणद्वितयं सोऽधादारक्त अदिमान्वितम् ।  
 भित भियानपायिन्या सपारीष स्थलाम्बुजम् ॥ २२६ ॥

१ मकरंद पुष्पस्य इत्यमरः । २ मेरुस्वल्प । ३ कामे । ४ शिशितं ।  
 ५ बन्धनाधारस्वभः ।

रूपसपदमुष्पया भूपिता भूतसंपदा ।  
 शरच्चन्द्रिक्यवेन्द्रोमूर्तिरानंदिनी इत्याम् ॥ २२७ ॥  
 पदवानयप्रमाणेषु परं प्राचीण्यमागता ।  
 तस्य धीः सर्वभास्वेषु दीपकस्य व्यतीप्यत ॥ २२८ ॥  
 सकलः सकलो विद्वान् विनीतात्मा मितन्द्रिय ।  
 रास्यसस्त्रीकृत्यासाणां सस्यसामगमत्कृती ॥ २२९ ॥  
 अनुराग सरस्वत्यां कीर्त्या प्रणयनिव्रताम् ॥  
 सस्य्यां चासम्यमातन्वन्विदुषां मूर्ध्नि सौंभवंत् ॥ २३० ॥  
 यस्य व्यसत्यतापान्नां सदप्परिपद्यः सजात् ।  
 मयपुमस्मसात्सर्वे दयवदी तृणा इव ॥ २३१ ॥  
 यस्य पाद्द्वयं क्षत्रप्रणमति महीचराः ।  
 पद्मीर्गर्भैरिवाकृष्टां भ्रमरा इव कुक्षत्रेणम् ॥ २३२ ॥  
 सौम्यमज्ञानतः पूर्वं मुनिसाप्युपसगतः ।  
 तीव्रसंक्लेशमार्षस्य बटायुनरकस्य च ॥ २३३ ॥  
 पद्माज्ञावैर्षिगृद्धः सम् काससम्पिप्रसादतः ।  
 सस्यसद्वचनः सौम्यमासीत्कर्मातकुल्लुषीः ॥ २३४ ॥  
 तद्यथावृत्तकं तस्य विज्ञेयं तत्कथानकात् ।  
 यत्र संक्षिपमात्रस्याभार्कं निस्तरता मया ॥ २३५ ॥  
 तस्य पत्नी तु मास्नाऽऽस्तीचेसन्नति पक्षिवा ।  
 व्रतधीसमुपमात्र्या सम्बन्धनश्चासिनी ॥ २३६ ॥  
 संस्यत'पुरवासिन्यःप्रियाः श्वतसइस्रजः ।  
 कसप्रवर्तपात्माने तयैव मनुते स्म साः ॥ २३७ ॥

रूपयौवनलावण्यगुणधारितरगिणी ।  
 सामूत्सरिदिषामोषेर्भर्तुश्छन्दानुगामिनी ॥ २३८ ॥  
 अमलं वत्समीपं सा विभर्ति स्म स्मरादुरा ।  
 तदासीत्कल्पमष्टीष ससक्ता रतकर्मणि ॥ २३९ ॥  
 अयान्पेष्टुर्महास्थानमासीन हरिचिह्नैरे ।  
 नमत्कोटिकिरीटाग्रैर्नृपैरासेषितं भृशम् ॥ २४० ॥  
 निर्धरभीरसक्ताश्चलच्चामररागिभिः ।  
 भीज्यमान समामध्ये गिरीन्द्रमिव निश्चलम् ॥ २४१ ॥  
 इन्दुविम्बसमाकारसितछायापलसितम् ।  
 श्रेणिकं तं महाराने ददर्श वनपालकः ॥ २४२ ॥  
 तं हृष्टाय प्रणम्यादाबुबाध विनयान्वितः ।  
 देवाभ्यर्पयद् किञ्चिद् दष्टं प्रत्यसतो मया ॥ २४३ ॥  
 तत्सर्वं संस्रतोऽपीह षष्ठं क्षय्या न कथन ।  
 तथाप्सुष्टिखताऽपश्यं वाच्य बच्चि नराधिप ॥ २४४ ॥  
 भीवद्धमानताथस्य महत्स्त्रिमगदुरा ।  
 समवसृतिसस्थासीद्विपुलाचलमस्वर्क ॥ २४५ ॥  
 वर्णयामि किमप्राहं शोभातिगुणगामिनी ।  
 यत्र संभूय नाकशां किङ्करा इव कपटा ॥ २४६ ॥  
 तत्र मधुभिर्तामोषैलाध्वानानुकारिणी ।  
 घंटा मुत्तरयामास अगतकल्पामरंश्रिनाम् ॥ २४७ ॥  
 ज्यातिलोके महान् सिंहप्रणाशऽभूत्समुत्पित ।  
 यैनाथु विमदीभाजपत्राप सुरधारण ॥ २४८ ॥



ध्वान ध्वनद्माद्घ्वानितानि तिरादधन् ।  
 र्बेयतरपु गेहपु महानानकनिःस्यनः ॥ २४९ ॥  
 संस्रः संस्वरबैः (?) सार्धं यूयमव निष्कृतवः ।  
 इतीव पापय नृबैः फणीन्द्रमर्षनं ध्वनन् ॥ २५० ॥  
 पिष्टरान्यमरुद्धानामासर्न प्रवर्षपिर ।  
 अक्षमापीव तर्त्रै साई मिनमयात्सव ॥ २५१ ॥  
 पुण्यानलिमिषातनुः समंतास्सुरेशूहः ।  
 षष्ठ्यग्रास्त्राकरैर्दीप्तविंगस्तुमुमात्करैः ॥ २५२ ॥  
 दिग्घः मसचिमासदुष्यध्रामे व्यध्नमवरम् ।  
 बिरजीकृतमूसाक शिधिरा मरुदावभौ ॥ २५३ ॥  
 इति प्रमात्रेमातन्त्रभक्तस्माद्भुवनोदरे ।  
 कषस्रज्ञानपूर्णेन्दुर्जगद्विभ्रमवीहृषन् ॥ २५४ ॥  
 तथैरावणमारुहः सहस्रांशोऽप्युतचराम् ।  
 पथाकर इवात्कुल्लुपंकनो गिरिमस्वक ॥ २५५ ॥  
 द्वाविंशद्ददनान्यस्य प्रत्यास्यं च रदाष्टकम् ।  
 सरं प्रति रद् तस्मिन्नभिन्नन्यका सरः प्रति ॥ २५६ ॥  
 द्वाविंशत्प्रसथास्तस्यास्त्वानत्यमितपत्रिकाः ।  
 तज्वायतेषु क्षेपानां नक्षत्रयस्तत्समा पूषक ॥ २५७ ॥  
 नृत्स्यति सस्रपस्मरवक्त्राद्वा सलितभ्रुष ।  
 पश्यच्चित्तद्रुमपूर्वैर्नश्यंतः (?) प्रमर्डाकुरान् ॥ २५८ ॥  
 तासां सहास्रभृगारसभापस्रयान्वितम् ।  
 पश्यंतः क्रीडतीमार्यं मत्स्य पिपूयिरे सुराः ॥ २५९ ॥

प्रयाण सुररामस्य नदुरप्सरस इर ।  
 रक्तकंठाश्च किंनर्यो मधुजिनपतमयम् ॥ २६० ॥  
 ततो द्वाभ्रिद्यदित्राणां पृतेना बहुकतनाः ।  
 प्रसङ्गुविलसच्छप्रचामरा प्रततामराः ॥ २६१ ॥  
 अप्सरकुङ्कुमारत्तकुचधकाहयुग्मक ।  
 तद्वचप्रपकजच्छम लसतनयनात्पल ॥ २६२ ॥  
 नमाप्सरसि हारांगुस्वच्छमारिणि हारिणि ।  
 घसत्प्रचामरास्तत्र इसायन्त स्म नाकिनाम् ॥ २६३ ॥  
 इद्रीलमयाहायरुषिमि कचित्राततम् ।  
 स्वामाभाति विमरामास पीतासिनिभमभरम् (१) ॥ २६४ ॥  
 पद्मरागरुचा म्याप्त कचिद्रूपोमवलं मयी ।  
 सांच्यरागमिषाभभ्रद्रनुरंजितदिङ्मुस्तम् ॥ २६५ ॥  
 कचिन्मरकतच्छायासमाक्रांतममाभमः ।  
 सशैबलमिषांमोषर्मसपर्येतसस्त्वितम् ॥ २६६ ॥  
 तन्म्यः सुरधिराकारा लसद्युग्मरूपणाः ।  
 तप्रामरस्त्रियो रजुः कल्पवल्स्य इषांभर ॥ २६७ ॥  
 तासां सराणि चक्राणि पद्मपुद्गपानुषाषताम् ।  
 रेभं मधुलिहां माला भद्रुग्येष मनींसुवः ॥ २६८ ॥  
 सुरानम्महाध्वानै पूजावेलापरां दपन् ।  
 मषल्लोह्लालकल्लोह्लौ चर्मा देवागमांशुषि ॥ २६९ ॥  
 तत्र दिव्यागनारूपैर्यिहस्त्यादिषाहनैः ।  
 उच्छाववैनमापत्स भ्रंम विप्रपत्थियम् ॥ २७० ॥

तत्राध्राकृतं रज पर्येत मित्रगत्यतः ।  
 ठंभ्यागं त्रिभ्रानां धुन्वन् धान्वाः स पायुभि २९१ ॥  
 उत्र परलं रुषिमत्क्रांस्या चांश्रीमजयद्रुचिरां ल्क्ष्मीम् ।  
 श्रेषा रुक्षे श्चमभ्रन्नुनं सर्वा विद्रुपज्जगतां पत्युः ॥ २९२ ॥  
 पयाः पर्याधेरिष श्रीषिमासा प्रक्षीणकानां मयिति समतात् ।  
 मिनन्त्रपर्येतनिपमिपसः करत्करैरगभिरभूट्टिधृता ॥ २९३ ॥  
 जैनी किमंगश्रुतिरुद्रधंती किमिदृमासां ततिरापतंती ।  
 इति स्म श्रुतां तनुत पतती सा चामरासी शरदिदुशुभ्रा ॥ २९४ ॥  
 सुरदुंदुमया मधुरध्वनयो निनदति तत्रा स्म नभोधिबरे ।  
 जम्प्रागमत्रकिमिस्म्यदिभिः शिस्त्रिभि परधीसितपद्गतय २९५  
 प्रमया परिता मिनत्रेइहृवा जगती सकृच्छा समवाधिस्मृते (१) ।  
 रुक्ष स चरापरमस्यंजनाः किमयाष्टुतमीद्यन्नि भाञ्जि विभाः २९६  
 दिष्यमशाध्निरस्य म्बुस्वाग्जान्येपरवानुकृतिं निरगच्छन् ।  
 मध्यमनागतमाइतमाऽध्नमश्रुतकृप यथैव तमाऽरिः ॥ २९७ ॥  
 इत्यष्टाभिः प्रतीहारैरन्विता भूजिननिनः ।  
 विपुष्पाद्रौ स्थिता देव देवत्रैषैरधिष्ठिता ॥ २९८ ॥  
 अपि तत्र विमुञ्चति पिर्यां परं परस्परम् ।  
 जन्मसंतानसंस्काराबद्धकाषा पिरापिनः ॥ २९९ ॥  
 कश्चित्कामपयापस्वभाबस्याद्विराधिनः ।  
 नापि तं विक्रियां भेजुस्तत्सानिभ्यममायत ॥ ३०० ॥  
 तपया करिणी दुग्धे शौगपीय हरिद्राबद्धः ।  
 मातृशुद्धया तथा सिंहीयामनति मुगाधर्ताः ॥ ३०१ ॥

यत्र दर्वुरका नागफणायां च कृतासनाः ।  
 आभयतीह छायायै पायाः सान्द्रद्रुमेष्विव ॥ ३०२ ॥  
 द्रुमा सर्वेऽपि सर्वर्तुफलदा दत्तशास्त्रिनः ।  
 आनंदादिषु नृत्यति चरुच्छास्त्राकरायताः ॥ ३०३ ॥  
 ग्रीहयः फलसपन्नाः स्वादुपकाञ्च सांप्रतम् ।  
 विद्यंते सर्वभूषुष्टे सुकृतानामिवाङ्कुरा ॥ ३०४ ॥  
 सर्वोपध्या महाधीर्या सम्भ्रामयधिनाशका ।  
 दीप्यंतेऽतितरामघ प्रमानां सुखदेतवे ॥ ३०५ ॥  
 दुर्मिसादीतयो नाशं याति मूलादपि क्षणात् ।  
 पुण्यसूर्योदयादेव तमो नैशं यया विभा ॥ ३०६ ॥  
 इत्यापतिश्रयाः सर्वे संति युगपज्जिनेश्विनः ।  
 तांस्तानुल्लेखतो वक्तुं नाहं शक्नोमि सांप्रति ॥ ३०७ ॥  
 इति भुत्वा यत्रो भूपो वनपालमुत्सादिह ।  
 आनंदामृतससिच्छेदोऽमूद्भक्तिनिर्भरः ॥ ३०८ ॥  
 अयोत्थाय वृषस्त्वूर्णमासनात्संमुखं विभोः ।  
 गत्वा सप्तपदं यावन्निषा चक्रं नमस्क्रियाम् ॥ ३०९ ॥  
 सानुजन्मासपतोन्तःपुरपौरपुरागमैः ।  
 प्राञ्चामिभ्यां पुरोधाय ससञ्जाऽभूत्तम प्रति ॥ ३१० ॥  
 गुरोर्भक्तिं परां तन्वन्कुर्षन्भर्मप्रमादनाम् ।  
 स भूत्या परयोत्तस्थे मगबद्धं दनाविधौ ॥ ३११ ॥  
 अथ सिनाशुषेः साभमातन्वन्नधिष्निस्वनः ।  
 आनंदपटहो मंत्रं दध्मान ध्वनयन् विश्वः ॥ ३१२ ॥

सुरैर्दूरादयासोक्त्य विभीरास्यानमंडलम् ।  
 सुरधित्थिमिरारम्भपराद्धिरबनाञ्चतम् (१) ॥ २७१ ॥  
 एकयोमनविस्तारममूतास्यानपीश्वितुः ।  
 हरिर्नासमहारत्नपटितं बिलसत्तलम् ॥ २७२ ॥  
 सुरेन्द्रनीलनिर्माणं समवृत्तं तदा बभौ ।  
 भिजगत्स्त्रीमुस्वालोक्रमेगलादर्धबिभ्रमम् ॥ २७३ ॥  
 संस्थानमण्डलम्यास्य संस्थानं को नु वर्णयेत् ।  
 सुप्रौमा सुप्रपारोऽभूमिर्माणे यस्य कर्मठः ॥ २७४ ॥  
 तवाप्यमृषते किञ्चिदस्य श्रीमासमुच्चयः ।  
 श्रुतेन यन सप्रीतिं भेमे प्रभ्यात्मना मनः ॥ २७५ ॥  
 पंचवर्णमयोऽज्ञासिरत्नपांशुमिराधितः ।  
 तस्य पर्यंत्यमाने पूष्णीश्वासः परिष्कृतः ॥ २७६ ॥  
 चतसृष्वपि दिक्ष्वस्य हेमस्तंभाग्रसविताः ।  
 तोरणानां करस्पष्टिरत्नमासा मिरेभिरे ॥ २७७ ॥  
 ततोऽतरांतरं किञ्चिद्गत्वा हाठकनिर्मिताः ।  
 रेक्षे मध्येषु शीथीनां मानस्वभाः समुच्छ्रिताः ॥ २७८ ॥  
 अपिष्ठिता विरेष्टुस्ते मानस्वभा मनोसिद्धः ।  
 यं दूरादीक्षिता मानं स्वंपर्यंस्याशु दुर्दृशाम् ॥ २७९ ॥  
 उक्तं च—

“ मानस्वभाः सरांसि प्रविमलजलमत्स्वातिका पुष्पवाटी ।  
 प्राक्षरौ नाटपशासा द्वितयमुपवन वेदिकार्तर्षमायाः ।

शासः कल्पद्रुमाणां सुपरिष्कृतवर्नं स्तूपहृम्यावली च ।  
 प्राक्काग स्फाटिकोऽनृत्सुरमुनिसभा पीठिकाग्रे स्वयंभूः ॥ २८० ॥  
 तत्र भिमोत्सलस्यास्य मूर्ध्नि पीठस्य विस्तृता ।  
 स्फुरन्मभिविभाजालरचितामरकार्मुके ॥ २८१ ॥  
 बलच्छामरसंघातमतिविभ्रनिभागतैः ।  
 हंसैरिवासरो बुद्ध्या सेव्यमाने तले पृथौ ॥ २८२ ॥  
 मार्तण्डमंडलच्छाया मस्यद्दिनि महादिक ।  
 स्वर्धुनीकेननीकाशैः स्फटिकैर्घटितै क्वचित् ॥ २८३ ॥  
 शुभौ स्निग्धे मृदुस्पर्शे जिनांघ्रिस्पर्शपावने ।  
 पर्यंतरचितानकर्मगलत्रयसंपत्ति ॥ २८४ ॥  
 भिमोत्सलांकित पीठ सैपा गणकुटी बभौ ।  
 यत्र भ्रंशोऽपनायस्य सस्या सर्वातिशायिनी ॥ २८५ ॥  
 यथा सर्वायसिद्धिर्षा स्थिता त्रिदिवभूर्धनि ।  
 तथा गणकुटी वीप्सा पीठस्यापितलं बभौ ॥ २८६ ॥  
 सुगंधपुपनिःश्वासा सुमनोमालम्भारिणी ।  
 नानाभरणदीप्तांगी या चपूरिष दिशुते ॥ २८७ ॥  
 तस्या मध्यं हैम पीठं नानारत्नवृषाक्षीणम् ।  
 मरोः शृंग न्यपकुर्वाणं चक्रे स्रक्तोदेशाद्विचद ॥ २८८ ॥  
 बिष्टरं तदुल्लंघक्रे भगवानंततीर्यकृत् ।  
 चतुर्भिरंगुलैः स्वन महिम्ना पृष्टतल्लम् ॥ २८९ ॥  
 तत्रासीन तमिद्राघाः परिपरुर्महज्यया ।  
 पुष्पहृष्टि मधुपर्तौ नमामार्गे यना इव ॥ २९० ॥

तत्रान्नाकृतरू रज पर्येत मिजगन्पते ।  
 रुषन्मार्गे दिवर्नाना धुन्वन् नाग्या स वापुमि २९१ ॥  
 उवं पयसं रुचिमत्त्रास्या चांतीमजयद्रुचिरा मङ्गाम् ।  
 प्रथा रुरुषं शन्नपृन्दुर्नं सेवां निदपङ्गतां पम्पु ॥ २०२ ॥  
 पयं पयापरिष भीषिमाम्ना मङ्गीणकानां समिते समताम् ।  
 जिनेन्द्रपर्येतनिपचियसः पुरास्त्वंग्राभिरभूदिभूता ॥ २९३ ॥  
 जैनी किमगश्रुतिरुद्धर्षती किमिदृमासां ततिरापतती ।  
 इति स्म शंकां तनुत पतती सा चामरार्सा शरदिदुग्धुभ्रा ॥ २९४ ॥  
 मुरदुदुमयो मधुग्धनया निनदति तत्रा स्म नयाविषर ।  
 जलडागमत्रांकिभिरुन्मदिभिः त्रिभिभिः परवीक्षितपद्धतय २९५  
 प्रमया परिता मिनदेहृष्टया जगती सक्रम्या समयचिस्तृतेः (१) ।  
 रुषं स चराचरमर्त्यजनाः किमयाष्टतमीष्टानि पास्त्रि विभोः २९६  
 दिष्यमडाष्पनिरस्य मुस्ताष्पान्मेघरधानुहृतिं निरगच्छत् ।  
 मध्यमनागतमोहतमाष्पनप्रगुतदप यथै तमोऽरिः ॥ २९७ ॥  
 इत्यष्टाभिः प्रतीहारैरन्विता भूमिनघिनः ।  
 विपुसाद्रौ स्थिता द्वे देवदेवरपिष्टिना ॥ २९८ ॥  
 अपि तत्र विमुंषति मिया वैरं परस्परम् ।  
 जन्मसंतानसंस्काराबद्धकाषा विरोधिनः ॥ २०९ ॥  
 कविचत्त्रसपर्यायस्वमावत्वाद्द्विरापिनः ।  
 नापि ते विक्रियां भेजुस्तत्तानिष्यप्रभावतः ॥ ३०० ॥  
 तद्यथा करिणी दुग्धं दाग्पीव हरिश्चाबद्धः ।  
 मातृबुद्धया तथा सिद्धीमायनंति मृगार्भकाः ॥ ३०१ ॥

यत्र दर्वुरका नागफणार्यां च कृतासना ।  
 आभयतीह छायायै पांथा सान्द्रद्रुमप्विच ॥ ३०२ ॥  
 द्रुमाः सर्वेऽपि सर्वेषु फलानां दलशालिनः ।  
 आनन्दादिषु नृत्यति चन्द्रच्छायाकृत्प्रयताः ॥ ३०३ ॥  
 ग्रीहयः फलसपत्न्याः स्वाद्रुपकाश्च सांप्रतम् ।  
 विषंते सर्वभूषुष्ठ सुकृतानामिवाङ्कुरा ॥ ३०४ ॥  
 सर्वापिध्या महावीर्याः सर्वाभयनिनाशकाः ।  
 दीप्यन्तेऽतिविरामथ प्रमानां सुखदेववे ॥ ३०५ ॥  
 दुर्मिसात्नीतयो नाश याति मूल्यापि सणात् ।  
 पुण्यभूषांश्यादथ तमो नैव यथा विभोः ॥ ३०६ ॥  
 इत्याद्यतिशया सर्वे संति युगपञ्जिनशिनः ।  
 वास्वानुल्लंखतो वक्तुं नाह भ्रमायि सांप्रति ॥ ३०७ ॥  
 इति भुत्वा वर्षा भूषी वनपालमुस्वादिह ।  
 आनन्दामृतससिक्तदहीऽभूत्प्रसक्तिनिर्भरः ॥ ३०८ ॥  
 अयोत्याय नृपस्तृणमासनात्समुत्सं विभाः ।  
 गत्वा सप्तपद यावन्निषा धकं नमस्क्रियाम् ॥ ३०९ ॥  
 सानुमन्मासमतोन्तःपुरपौरपुरागमैः ।  
 प्राग्यामिष्यां पुरोपाय ससञ्जोऽभूद्गमं प्रति ॥ ३१० ॥  
 गुरोर्भक्तिं परां तन्वन्दुबन्धमप्रभाषनाम् ।  
 स भूत्या परयोचस्थे भगवद्ददनाविषा ॥ ३११ ॥  
 अय सनांशुषेः सौममातन्वन्नम्बिनिःस्वन ।  
 आनन्दपन्थो मद्रं दृष्टवान् ध्वनयन् दिशः ॥ ३१२ ॥



मत्स्येऽथ महायागो बंधारुः श्रेणिका नृपाः ।  
 महाहस्त्यश्वपादातिरयंकथा वृताऽभितः ॥ ३१३ ॥  
 रैन मघस्त्रिता सेना ततानरूपुषुष्वनि ।  
 बेल्लव वारिधेः मद्भुवसंरुप्यश्चुनधीचिकाः ॥ ३१४ ॥  
 तथा पारिवृतः प्रापत्स मिनास्थानंमहपम् ।  
 मसर्प्यत्रमया दिक्षु मितमार्तेडमण्डलम् ॥ ३१५ ॥  
 परीत्य पूजयन्मानस्त्वभान्साय्यैः तत परम् ।  
 स्वातां लतां वनं शालं वनानां च षट्पृथगम् ॥ ३१६ ॥  
 द्वितीयशालवृक्षम्य ष्वनान् कल्पद्रुमावलीम् ।  
 स्तूपान् प्रासादमासात्र पश्यन्निस्मयमाप सः ॥ ३१७ ॥  
 ततो द्वारिकैर्देवैः संध्राम्यग्निः प्रवेशितः ।  
 भीमहपस्य वैदग्धी सांज्यश्यत्स्वर्गमित्स्वरीम् ॥ ३१८ ॥  
 ततः मदक्षिणीकुर्वन् धर्मचक्रचतुष्टयम् ।  
 सूर्यमीं वा पूजयामास प्राप्य प्रथमपीठिकाम् ॥ ३१९ ॥  
 ततो द्वितीयपीठस्वान् विमारष्टौ महाष्वनान् ।  
 सौर्ज्ययामास संभ्रितः पूतैर्गंधादिवस्तुभिः ॥ ३२० ॥  
 मध्ये गंधकुटी द्विद्विपाराद्धै हरिविष्टरे ।  
 उदयाचसमूर्द्धस्वमिर्बाह्वैः गिनमैस्तत ॥ ३२१ ॥  
 बलश्चामरसंघातशीज्यमान महावज्रम् ।  
 मपतभिर्धरं मेकमिव वामीकरच्छविम् ॥ ३२२ ॥  
 इत्याद्यष्टप्रतीहारिर्विभ्रान्तं मिनेश्वरम् ।  
 स त्रिः प्रक्षिणीकृत्य भगवर्तं जगद्गुरुम् ॥ ३२३ ॥

इषाय पापयुक्तानां व्याया प्राग्भ्येष्टया प्रभुम् ।  
 पूजान्ते प्राणिपत्यस्रं महानिहितजान्वसौ ॥ ३२४ ॥  
 नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं महात्मन ।  
 बसम्भ्रमूनमालाभिरिस्थानर्चं गिरापतिम् ॥ ३२५ ॥  
 त्वं मिनः कामजिज्ञता त्वमईश्वरिहारुह ।  
 धर्मध्वजो धर्मपति कर्मरतिनिशुंभन ॥ ३२६ ॥  
 तव इयासिन भावि विश्वभर्तुर्मबद्धम् ।  
 कृतपत्नैरिषाद्दोहं न्यगूढाऽयं मृगाधिपैः ॥ ३२७ ॥  
 तवायं प्रचलच्छास्त्रस्तुगाऽश्वाकमहाधिपः ।  
 स्वच्छायासभितान्पाति स्वत स्त्रिप्यानिवाहितान् ॥ ३२८ ॥  
 तवामी चामरवाता यसैरुत्सिष्य बीजिताः ।  
 निर्धुनतीष निर्ध्याममार्गो वै सागसां नृणाम् ॥ ३२९ ॥  
 स्वामामनेति परितः सुमनाञ्जसया दिवः ।  
 शृष्ट्या स्वर्गलक्ष्म्यैव मुक्ता इर्पाभुविदवः ॥ ३३० ॥  
 देवदुन्दुभयधामी निनर्वति नमःस्विताः ।  
 पोपयति भयोत्साहं निर्मिताखिलकर्मणः ॥ ३३१ ॥  
 ज्ञानदर्शनधीर्याणि विरतिः शुद्धवचनम् ।  
 दानाद्रिस्त्पयधति सायिकयस्त्रय शुद्धयः ॥ ३३२ ॥  
 छप्रभितयमाभाति सुहृत्तं मिन तापकम् ।  
 मुक्तासवनविभ्राजि लक्ष्म्या क्रीडास्पलायितम् ॥ ३३३ ॥  
 तव देहप्रभोत्सर्पैरिदमाफम्पते सद् ।  
 पुष्याभिपेक्षमभार संबयन्निरिवाभितः ॥ ३३४ ॥  
 तव वाक्प्रसरो दिव्यः पुनाति जगतां मन ।  
 मार्हापतमसां धुन्वंस्त्वग्ज्ञानाकौशिकापमः ॥ ३३५ ॥

ज्ञानमपतिर्षं विश्वं पयवस्तीचनक्रमात् ।  
 यया ज्ञानं तयैनाभूत्सायिकं धरं दर्शनम् ॥ ३३६ ॥  
 विश्वं प्रमानताऽर्षीश्च यत्तनास्तां भ्रमबनधौ ।  
 अनतर्षीर्यतास्तुक्तेस्तन्माहात्म्यं परिस्फुटम् ॥ ३३७ ॥  
 रागादिषिचक्राष्टव्यभ्यपायादुदिता तव ।  
 विरतिः सुखमात्मास्यं व्यनक्त्यात्यंतिकं विमो ॥ ३३८ ॥  
 प्रज्ञातकष्टुपं तोय ययेह स्वच्छतां व्रजत् ।  
 मिथ्यात्वकर्दमापायाद् इहभुदिस्ते यपार्यताम् ॥ ३३९ ॥  
 संत्याऽपि सम्भयः शेषास्त्रयि नार्थक्रियाकृतः ।  
 कृतकृत्ये बरिर्द्विभ्यसंभपो हि निरर्थकम् ॥ ३४० ॥  
 एषं प्राया सुजा नाय भवतोऽनतथा मताः ।  
 तानहं श्रेष्ठताऽर्षीश्च न स्तांतुमस्यमत्यपी ॥ ३४१ ॥  
 मगर्भवमभिष्टुस्य विष्टपातिगवैभवम् ।  
 मर्तुः श्रीमंहपारंभे स्वक्षौष्ट्यवीविश्वनृपः ॥ ३४२ ॥  
 जम्बूद्वीपेऽत्र बर्षे समयमभिगतै भारते तत्र देशे ।  
 नाभ्या विख्यातकीर्ताविह शुचि ममधेऽग्रापसंपक्षिपानै ।  
 तत्रापि श्रीगिरा रामगृह इति महाराजधानी पुरेऽस्मिन् ।  
 मूपः श्रीभेणिकाऽग्नादिपुसगिरिगिरी बद्धमानस्य भूमौ ॥३४३॥  
 इति श्रीजम्बूस्थामिचरिते मगधक्षेत्राधिपतीर्यक्तोपदेशान्त-  
 रितस्याद्वाग्जन्मवधगवपक्षिवाविसारत्पण्डितयनमह-  
 साधुपासात्मजसालुटोडरसम्मर्षित भेणिक-  
 महाराजसम्भसरणगननवर्षनो  
 नाम त्रितीयोऽधिकारः ।

## अथ तृतीयोऽध्याय

भीयात्स टोडरः साधुः साधुपासांगनं कृती ।  
 दानशुद्धिस्तु यस्योच्चैः श्रेयांसिनापमीयत ॥ श्याशीर्षदि ॥  
 समयं भवदुःस्वानां इतीरं तीर्यनायकम् ।  
 अभिनदनं च बंदामो वदितं भिदक्षश्चरै ॥ १ ॥  
 ततो निभूतमासीनं प्रपद्यकरकुड्मले ।  
 सदपघाकरं भर्तुं प्रबोधमामिलायुके ॥ २ ॥  
 भवस्या भेणिकमूपेन विनयानतमौलिना ।  
 विद्यापनमकारीत्यं तत्त्वं जिज्ञासुना गुराः ॥ ३ ॥  
 भगवन् भद्रमिच्छामि कीदृशस्तस्वविस्तरः ।  
 मार्गो मार्गफलं चापि कीदृक् तस्य विदांबर ॥ ४ ॥  
 तत्प्रभावसिताभित्पं भगवानततीर्यकृत् ।  
 तत्त्वं प्रपंचयामास गंभीरतरया गिरा ॥ ५ ॥  
 प्रवक्षतुरस्य बह्व्राम्णे विकृतिर्नैव काप्यभूत् ।  
 वर्षणे किमु भावानां विद्विद्याऽस्ति प्रकाशत ॥ ६ ॥  
 तान्वाप्यमपरिस्वयंदि सर्वांगेषु समुद्रवा ।  
 अस्पृष्टकरणा वर्णा मुरादस्य विनिर्ययु ॥ ७ ॥  
 स्फुरद्विरिशुद्धान्भूतप्रतिबन्धनितसनिभ ।  
 मत्पट्टार्यका निरगार् ध्वनिं स्वार्पंभुषात् मुखात् ॥ ८ ॥

१ कस्यचिद्विदितं न वर्णवदितं न स्वान्दितोऽप्युचं  
 नो वाच्यमिदं न बोधमिति न श्याशीर्षदि ॥  
 वाच्यमर्षवित् समं पद्मगवैराध्वितं कसिमि  
 त्तमः तर्षवित् प्रपद्यवित् पद्मगवैराध्वितं ॥ इति संवत्श्लोकः ॥

विबलामन्तरणापि विवित्ताऽसीत् सरस्वती ।  
 यहीयेसामभिनया हि यागनाः शक्तिसंपदः ॥ ९ ॥  
 शृणु भेषिक तत्त्वार्थान् बहूपमापाननुक्रमात् ।  
 जीवादीन् क्लृप्तपर्येतान् गौतमभायवीचदा ॥ १० ॥  
 जीवाजीवाभाभवन्पौ क्लृप्त संभरन् निर्नरणम् ।  
 मोक्षस्तत्त्वं सम्यग्ज्ञानसद्योपधिपयमस्त्रिं स्यात् ॥ ११ ॥  
 आभवन्पुत्रपुरिर्दं पुण्यं पापं स्वभावता न पृथक् ।  
 तस्माभो दिष्टं स्वच्छ तत्त्वहृत्ता शूरिणा सम्यक् ॥ १२ ॥  
 पोडा द्रव्यापदेशः स्याद् द्रव्यसङ्गणपीगतः ।  
 द्रव्यत्वं नाम किंचित्स्याद्गुणपर्ययवत्ततः ॥ १३ ॥  
 तल्लक्षणस्वभावत्वाजीवाः स्याद् द्रव्यसंज्ञकाः ।  
 पुत्रसमापि तद्यागाद् द्रव्यमित्यमिच्छप्यते ॥ १४ ॥  
 पर्माधमाधिहाकाशं कालश्चापि तथाविधः ।  
 अत्वारोऽपि च सस्याचे द्रव्यसङ्गात्मकाः पृथक् ॥ १५ ॥  
 अस्तिक्वायस्वभावत्वात्संति पंचास्तिक्वायिकाः ।  
 प्रद्वन्द्वप्रचयाभावात्क्लृप्तस्य नास्ति क्वायता ॥ १६ ॥  
 जीवादीनां पदार्थानां पाषाणस्य तत्त्वमित्येत ।  
 सम्यग्ज्ञानं हि तज्ज्ञानं भट्टानं दर्शनं मतम् ॥ १७ ॥  
 कर्मादाननिदानानां माषानां च निरासतः ।  
 चारित्र्यं तत्रयं विद्धि मुक्त्यर्गं कर्मघातनात् ॥ १८ ॥

१ महापुराणम् ।

२ जीवादिभ्यस्ते क्लृप्तत्वं इत्ये अत्मानं तत्त्वं ।

बुद्धिमित्तिवचिबुद्धे इत्ये क्लृप्तत्वं अत्र मयति कति वक्तिम् । इत्येकप्रदे ४१ ।

सम्यद्दर्शनमादौ स्याद्वाच्यं इतिरतः परम् ।

यस्मात्प्रदानमून्यस्य ज्ञानस्याज्ञानता मता ॥ १९ ॥

उक्तं च—

“भीमादीसहस्रं सम्मत्तं स्वमप्यजो तं तु ।

दुरभिनिवेशविमुक्तं पारणं सम्मं सु होदि सदिजम्हि” ॥२०॥

शाभ्यां पूर्वे हि ( पश्चाद्दि ) चारिभं भाक्तं चार्थक्रियाकरम् ।

क्रियमाणं तु तत्सून्यं स्यादचारिभनघतः ॥ २१ ॥

तत्त्वज्ञानार्थमेतेषां चाप्यं लक्ष्म ययागमम् ।

अस्वित्वादिष सामान्याज्ज्ञानादिस्त्वं विशेषतः ॥ २२ ॥

तयया तत्र भीषोऽस्ति स चानाद्यावसानकः ।

नित्यः स्वतत्र सिद्धत्वाच्च च कायाद्यभावतः ॥ २३ ॥

स चासंख्यातदेशी स्यादनतद्युगवानपि ।

स्यातां तस्य व्ययोत्पादौ कर्यंचिद्विपर्ययैः ॥ २४ ॥

षेकनालक्षणो जीवो विशेपाल्लक्षणादिह ।

ज्ञाता द्रष्टा च कर्ता च भोक्ता देहप्रमाणकः ॥ २५ ॥

युगवान् कर्म निर्मुक्तापूर्द्धमन्यास्वभाषकः ।

परिणतोपसंहारविसर्पाभ्यां मदीपपत् ॥ २६ ॥

र्माद्यं प्राणी च जंतुश्च क्षमद्गः पुरुषस्तथा ।

पुमानात्प्रांश्चरात्प्रा च ज्ञा ज्ञानी तस्य पयसा ॥ २७ ॥

१ सम्प्रत्ये सति ज्ञानं सम्भारमवर्तिषि वदुष्ये तस्य विवरणं कियते । तद्यदि ।  
 श्लोकप्रतिभूतिवस्तुभूतिगमामो विप्रः पंचपंचसतत्राद्रूपोपाप्याया वैरक्युर्ध्वं  
 क्लेशेतिन्मन्त्ररचनवद्वापि मनुस्त्व्यापद्यरुत्सृष्टिसाक्ष्येण यद्यपि जन्मनिष्ठ  
 तद्यपि तेषां हि ज्ञानं सम्प्रत्ये विना विप्रदानमेव । प्रसन्नवद्व्यप्यक्त-  
 महात्मी ४२ ।

यता जीवस्य जीवस्य जीवस्य च जन्मसु ।  
 तता जीवाऽप्यमात्रात् सिद्धं स्याच्चतुर्विधः ॥ २८ ॥  
 भव्यामर्था तथा मुक्त इति जीवस्य विदितः ।  
 भवित्यसिद्धकर्म भव्यं मुषणोपलक्षणम् ॥ २९ ॥  
 अमम्यस्तु विपक्षः स्याद्द्रव्यपापाणसन्निभः ।  
 मुक्तिकारणसामग्री न तस्यास्ति फलार्थेन ॥ ३० ॥  
 कर्मबंधननिर्मुक्तश्चिन्तितस्त्रिरासपः ।  
 सिद्धो निरजनः प्राक्त भात्तानतमुन्वाद्यः ॥ ३१ ॥  
 इति जीवपदार्थस्ते संक्षेपेण निरूपितः ।  
 अजीवतत्त्वमप्येवमपमानतया शृणु ॥ ३२ ॥  
 अजीवसंज्ञां तस्यै पदार्थैश्च प्रपंचयत ।  
 पर्यायार्थैश्च साक्षाच्च कासः पुद्गल इत्यपि ॥ ३३ ॥  
 जीवपुद्गलयोर्द्वयः स्यात्तत्पुण्यप्रकारणम् ।  
 धर्मद्रव्यं तदुचित्तमधर्मः स्थित्युपग्रहः ॥ ३४ ॥  
 यथा मत्स्यस्य गमनं विना नैवाभिसा भवत् ।  
 न चाभिः परयत्येनं तथा धर्मोऽस्त्यनुग्रहः ॥ ३५ ॥  
 तदुच्छ्रयाया यथा मर्त्ये स्यापयत्वर्धिनं स्वतः ।  
 न त्वेषा मरयत्येनमय च स्थितिकारणम् ॥ ३६ ॥

१ स्यादेतदर्थं तत्रोक्तं किं न तत्र स्यात्तत्रावभक्त्युत्पत्त्यात्मानं एव । अत्र  
 इत्येवमिति धर्मो मन्वत्तत्र उत्तरकर्म भवत्तत्रैव अन्तः स्यादिति । तत्र किं कर्मणं ।  
 मन्वत्तत्रैवमात्रम् । यथा योऽन्तेत्यर्थं वाक्येन कर्मण्युत्पत्त्यो न कर्मणो अर्थव्यति  
 न तदर्थमप्यत्रात्तत्रैव कर्मण्युत्पत्त्यात्तत्रोक्तम् । यथा वाक्यमिदं कर्मणो योऽन्तेत्यर्थं वाक्ये  
 न अर्थमिदं न तदर्थमिदं इत्येव । तथा मन्वत्तत्रैव तत्रोक्तं योऽन्तेत्यर्थं  
 व्यती न मन्वत्तत्रैव । त एवमिदं १-७-९ । वृ. ७७ ।

तथैवाधर्मकायोऽपि जीवपुद्गलयाद्वयोः ।  
 निर्धर्मयत्सुद्रासीना न त्वय मेरुके स्थितेः ॥ ३७ ॥  
 जीवा नीनां पदार्यानामवगाहनलक्षणम् ।  
 यद्यदाकाशमस्पर्शममूर्तं क्वापि निष्क्रियम् ॥ ३८ ॥  
 वर्तनालक्षण काली वर्धना च पराधया ।  
 यया स्यगुणपर्याये परिणवृत्त्वयोजना ॥ ३९ ॥  
 यया कुलालचक्रस्य भ्रमणऽयः क्षिला स्वयम् ।  
 पक्षे निमित्ततामर्दं कासाऽपि कस्तितो ध्रुवै ॥ ४० ॥  
 व्यवहारात्मकात्कालावृत्त्यवकाशविनिर्णयः ।  
 सुगन्धे सत्येव गौणस्य बाहीकादः प्रतीतितः ॥ ४१ ॥  
 स कालो लोकमात्रैः स्वैरणुभिर्निधित स्थितेः ।  
 क्वाप्यन्योन्यमसक्रीर्णे रत्नानामिव रत्निभिः ॥ ४२ ॥  
 मन्वेनमचयायागादूर्कायाऽय मक्रीर्तित ।  
 क्षिपाः पक्षास्तिकायाः स्यु मन्वेनापचितारमफ्यः ॥ ४३ ॥  
 पर्माधर्मवियत्कालपदार्था मूर्तिवर्जिता ।  
 मूर्तिमत्पुद्गलद्रव्यं तस्य भेदानितः शृणु ॥ ४४ ॥

१ पर्माधर्मो बुद्धवर्तिभिर्भिरिवर्तयितव्यं इत्यत्रानुपपन्नत्वेन न पुनर्धर्म-  
 इतिवर्तिवर्तयितव्यं । यथा च उरित्तयत्पुद्गलमुद्रु वेगवादिभ्ये सति मत्स्यस्य स्व-  
 क्त्वेन संज्ञकश्रीमन्मोपमादृष्टं जल निमित्ततत्त्वोपपत्ति, एतद्वद्वत्पुद्गल-  
 वर्तयि मूर्त- धरित्वात्मन्वा, नभोवत् नभस्वत् नभस्वत्पुद्गलमोपमादृष्टं न पुनर्ध-  
 मत्वे सन्- धरित्वाने विद्यमानपुद्गल-वर्तयि मत्स्यस्यपुद्गल-वर्तयि विनिर्णय-  
 क्तव्येन निरूपे इत्यत्र स्थानभूयान्तीवये न पुनर्धमत्वेन वाप्यवर्तयितव्य-  
 यति । एतद्वत्पुद्गलमुद्रुत्वेन च १८ ।

२ मन्वेनापचितारमफ्यः इत्यत्रानुपपत्तिवर्तयि ।



बर्णगंधरसस्यन्नयौगिनः पुद्रसा मताः ।  
 पूरणद्रस्नात्तैव समाप्तान्तर्यनामकाः ॥ ४५ ॥  
 स्कंधाणुभेदतो द्वेषा पुद्रसस्य च्यवस्थितिः ।  
 स्निग्धरूक्षास्यक्काणूर्णा संघातः स्कंध इष्यते ॥ ४६ ॥  
 द्रव्यणुकादिमहास्कंधपर्यंत तस्य विस्तरः ।  
 छायातपतमौख्योस्नापयोदौ द्विमभदभाक् ॥ ४७ ॥  
 सूक्ष्मसूक्ष्मास्तया सूक्ष्मा सूक्ष्मसूक्ष्मात्यक्षाः पर ।  
 स्पृशसूक्ष्मकाः स्पृशाः स्पृशस्पृशाश्च पुद्रसाः ॥ ४८ ॥  
 सूक्ष्मसूक्ष्मोऽणुरकः स्यादहम्पो इत्य एव च ।  
 सूक्ष्मास्ते कार्मणस्कंधाः मद्द्विघ्नतयागतः ॥ ४९ ॥  
 शब्द स्थौ रसो गन्धः सूक्ष्मस्पृशा निगद्यत ।  
 मषाद्युपसं सत्येषामिन्द्रियग्राह्यतेज्ञात ॥ ५० ॥  
 स्पृशसूक्ष्माः पुनर्ज्ञेयाश्छायाख्योस्नातपादव ।  
 पाद्युपत्वेऽपि संहार्यरूपत्वादिषिपातकाः ॥ ५१ ॥  
 द्रवद्रव्यं अस्मादि स्यात्स्पृशभेदनिदर्शनम् ।  
 स्पृशस्पृश पृथिष्यादिर्भेदं स्कंधः मकीर्तितः ॥ ५२ ॥  
 आभवाऽपि द्वेषा मौक्तो भावद्रव्यविभक्तः ।  
 माया जीवात्मकी भाव स पाद्युद्रः परत्यतः ॥ ५३ ॥

१ सूक्ष्मसूक्ष्मपुद्रसाश्च वास्तवतः । केतु केतु अन्वय केतु अन्वय तद्वत्  
 वास्तवित्त्वम् । अर्था वास्तव । अन्वयकेतु केतुमन्वय अन्वय केतु अन्वय तद्वत्  
 मित्त्वम् । अथ वास्तवित्त्वम् । अन्वयकेतु केतुमन्वय केतुमन्वय तद्वत्स्वमित्त्वम् ।  
 वः अन्वयकेतुमन्वयकेतुमन्वयकेतुमन्वय तद्वत्स्वमित्त्वम् । अर्था अन्वय । अन्वय  
 केतुमन्वयकेतुमन्वयकेतुमन्वय तद्वत्स्वमित्त्वम् । अन्वयकेतुमन्वयकेतुमन्वयकेतुमन्वय  
 तद्वत्स्वमित्त्वम् ।

मिथ्यात्वं च कृपायाश्च योगोऽबिरतिरेव च ।  
 मावाभ्रवस्य विज्ञेया भेदाश्चामी यथागमात् ॥ ५४ ॥  
 सत्तु भाषाभवेष्वाश्रु योग्याः कार्माणवर्गणा ।  
 गच्छति कर्मपर्यायैः स च द्रव्याभ्रवः स्मृतः ॥ ५५ ॥  
 आभ्रवपूर्वको बन्धो द्विविधः सोऽपि पूर्ववत् ।  
 आभितानां यतो षड् मकृत्यादिप्रभेदतः ॥ ५६ ॥  
 आभ्रवस्य निरोधो य स संवर उदाहृत\* ।  
 तत्रापी मावशुद्धि\* स्यात्परः कार्माणरोषतः ॥ ५७ ॥  
 निर्मरा च द्वेषा मोक्ता सविपाकाविपाकत\* ।  
 अत्र संवरपूर्वा या निर्मरा सोऽप्यते बुधै\* ॥ ५८ ॥  
 मावद्रव्यात्मिका द्वेषा निर्मरा तत्त्वबदिनाम् ।  
 तत्रापा शुद्धमावः स्यात्कर्मनिर्मरणं परा ॥ ५९ ॥  
 पुंसोऽप्येस्यात्वरं मोक्ष\* कृत्स्नकर्मक्षये सति ।  
 ज्ञानानंदादिषर्माणामाभिर्मावात्मकः स्वतः ॥ ६० ॥  
 शुभो भावा हि पुण्यस्य पापस्याशुभ एव च ।  
 पूर्वो व्रतादिरूपात्मा तद्विपक्षः परः स्मृतः ॥ ६१ ॥  
 बदत्येषं जिनेशाने तत्त्वानि भ्रेणिकं प्रति ।  
 वशीर्णमंबरात्किंचित्साहासिजीमर्षं तदा ॥ ६२ ॥  
 बिम्बं रवेर्दिभा भूत्वा किमागरच्छच्छ भूतले ।  
 शृष्टे सस्मीं विरागस्य जिनस्यानतर्बैभबम् ॥ ६३ ॥

दृष्ट्वाकस्माभराधीशो धीमान् विस्मयतां गत ।  
 पमञ्च स्वामिनं शूयः किमिदं दृश्यतेऽपुना ॥ ६४ ॥  
 पृष्ट्वा प्रत्याह घर्मेशां रामानं भणिकं प्रति ।  
 विद्युन्मासीति विख्यातो देवाऽप्य स्वान्महर्षिणः ॥ ६५ ॥  
 चतस्रभिर्नारीभिः स समं घमानुरागतः ।  
 भगवद्देवता साऽल्ले शीघ्रं तत्रागतस्तदा ॥ ६६ ॥  
 किञ्चित्ततः सप्तमं चाबि दिवदप्युत्वा भर्तातकः ।  
 भुवमप्यति भव्यारमा परमौगी भविष्यति ॥ ६७ ॥  
 भस्वति तद्रुचो मूपा मूया भक्तिपरायणः ।  
 प्रीता विद्यापयामास भगवन्तं अगदुरुम् ॥ ६८ ॥  
 कृपासागर मा म्यापिन् यस्त्रयोक्तं सुपुक्तितः ।  
 पण्यासमापुपः क्षयो यदा स्वात्मिदिर्बोक्तसाम् ॥ ६९ ॥  
 तदा यद्गौरमासा स्वाम्मूना कठाबलंविनी ।  
 देहकृतिर्भवत्पुष्ठा मदायति घुरदुमाः ॥ ७० ॥  
 तत्रोभ्यां दिक्षां वनप्रमस्य कृतिमयं वपुः ।  
 ह्यतऽप्यसताऽर्थाश्च तत्कथं विप्रकारणम् ॥ ७१ ॥  
 इत्यदः संनयध्वात निराकुर्वन् निनोऽशुमान् ।  
 उवाच विष्टरांविष्टां गंभीरतरया गिरा ॥ ७२ ॥  
 रामभस्य कथापुत्रं सर्वं विप्रस्येदं शृणु ॥  
 संवगवर्दन इतुर्निर्वेदजननसमम् ॥ ७३ ॥  
 तद्यथा भगवद्देव रम्येऽर्षेण प्रतिदृक् ।  
 पनपाम्यारिण्यादिपूर्णे भागवत्तर्जितं ॥ ७४ ॥

१ वरमधरीभिः तद्वचनोक्तमस्मिन् । २ देवता । ३ मन्त्रपुरीः पुष्पिणा नाम्ना ।  
 ४ विद्वान्ने उच्यते । ५ अत्रवचनार्थः ।

तत्रैकदेशांश्चन्यासु वर्द्धमानामिषं पुरम् ।  
 बनोपवनरानीभिः राजित परिस्वादिभिः ॥ ७५ ॥  
 चतुर्गोपुरसयुक्तं विशालं शालवोष्टितम् ।  
 सुन्दरीभिः समाकर्णितं दिव्यभूषाभरादिभिः ॥ ७६ ॥  
 तत्र विभा वसत्येव वेदमार्गानुरागिणः ।  
 साक्षिकाः श्रियसे हिंसा कुर्वतीह षमाधमाः ॥ ७७ ॥  
 हन्यन्ते पञ्चनस्त्रप्र गोगजामानरादयः ।  
 मिथ्याभकारसंछन्नहग्निमर्दुष्ययगामिभिः ॥ ७८ ॥  
 अथ तत्र वसेत्कश्चिद्विद्विषो बदविदावरः ।  
 स्वधर्मकर्मनिष्णातो नाम्नार्यावसुरीरित ॥ ७९ ॥  
 तस्य मार्या सती नाम्ना सामञ्जसा पतिव्रता ।  
 सीतेषैकपति\* साञ्ची भर्तुश्छन्दानुगामिनी ॥ ८० ॥  
 तयोः पुत्रानभूतां द्वौ पुण्यदत्तांनिषोद्यतां ।  
 नाम्नाद्यो भाष्यदेवश्च द्वितीया भष्यदेवकः ॥ ८१ ॥  
 क्रमादधीतिनौ श्चास्त्रवेदव्याकरणादिषु ।  
 निदानादिषिक्रिस्तति बेद्य तर्कं च छन्दसि ॥ ८२ ॥  
 ज्ञ्यातिःसंगीतगानेषु काव्यालंकरणेषु च ।  
 किमत्र बहुनोक्तेन विद्याभ्ये\* पारगाधिन ॥ ८३ ॥  
 भाष्यद्वैतौ सुवादिषु ज्ञाननिज्ञानकोविदौ ।  
 अपि चास्यतस्त्रोहादौ मिथो पुण्यसुखाविष ॥ ८४ ॥  
 इत्थं सुखं सुवर्द्धन्तौ यावद्द्वौ निरुपद्रवम् ।  
 ज्येष्ठी द्वात्रिंशत्सर्षीया सप्तुद्वात्रिंशत्सर्षकाः ॥ ८५ ॥

अर्थातरे पुरा दुष्टकर्मोपार्णितपाकतः ।  
 आतस्तावस्तथाः कुष्ठो महाव्याधिप्रपीडितः ॥ ८६ ॥  
 कुष्ठव्याप्तश्चरीरः स गस्तर्कणासनासिकः ।  
 क्षीर्णोपागन्ध सर्वांग यातनाव्याकुलीकृतः ॥ ८७ ॥  
 अज्ञानेनार्यते कर्म तद्विपाको हि दुस्तरः ।  
 स्याद् संमोक्ष्यते पथ्यं तत्पाक दुःस्वयानिब ॥ ८८ ॥  
 मत्स्येति भीमता त्याग्या विपया विपसंनिभाः ।  
 धर्माभूतं च पानीयं निर्बिकारपदमदम् ॥ ८९ ॥  
 अस्पृशद्दुःस्वितो विमो जीवनाद्यापरिच्युतः ।  
 प्रविष्टो ब्यसिते बहौ चित्तानाम्नि पैतृगवत् ॥ ९० ॥  
 तद्वियोगात्तु श्रीकार्ता सोमधर्मापि तत्प्रिया ।  
 वेगात्तत्र चित्तार्था वै तेन सार्धमपीभिद्धत् ॥ ९१ ॥  
 मृतयोर्मानृपिभौश्च जातौ तौ दुःस्वभावनौ ।  
 शोकसंतापसंतप्यौ संस्रपत्करुणारसौ ॥ ९२ ॥  
 तथा च धुभिरास्मीयैः सास्त्रैव प्रतिबोधितौ ।  
 तदा शोकं विमुष्याशु कृत्वन्तौ पितुः क्रियाम् ॥ ९३ ॥  
 संतर्पणं यथाज्ञायं सर्वं कृत्वा विमत्सरौ ।  
 पूर्ववत्सर्वकार्येषु सोद्यती मयतस्तदा ॥ ९४ ॥  
 इत्वं दिनगणैः कौटिल्यहतेऽप्य मुनिपुंगवः ।  
 आगतस्तत्र सौमर्षो नाज्ञा धर्मेषुः क्षमी ॥ ९५ ॥  
 सर्वसंगविमुक्तात्मा बाह्याभ्यन्तरभेदतः ।  
 यथाज्ञातस्वक्ष्मीऽपि सञ्जा युतश्च युक्तिभिः ॥ ९६ ॥

१ पूर्ववत्सर्वकार्येषु । २ तीक्ष्णवृत्त्या । ३ पत्न्यं कृत्यं यत्करोति इति पदं च । ४ क्षमाः ।  
 ५ क्षमोऽपि ।

निःशङ्को जिनसुप्रार्ये सशङ्को व्रतपरिष्पुतौ ।  
 दयालुः सर्वमीदेषु निर्दयः कर्मश्रावने ॥ ९७ ॥  
 स्याद्वादी कुमसच्चान्ते तेजस्वी मानुमानिव ।  
 सौम्यः क्षुब्धोऽपि सवर्गि धीरो मेरुरिवोन्नतः ॥ ९८ ॥  
 मन्दावाधितहानां स्यात्तज्जैनो जलदापमः ।  
 धर्मोपदेशनीरेण पापिता भन्वचातका ॥ ९९ ॥  
 सर्वसघाटकीपेतोऽश्रद्धितो विजितेन्द्रियः ।  
 ज्ञानविज्ञानसपक्षो गणी गुणनिधिः क्षमी ॥ १०० ॥  
 समः क्षुब्धो च मित्रे च नीहिते मरणे समः ।  
 समो लामे सुलामे च समो मानापमानया ॥ १०१ ॥  
 रत्नप्रयपरो धीरो तपसालकृतविग्रहः ।  
 अशक्तं सामधानञ्च समयमप्रतिपालने ॥ १०२ ॥  
 अपेक्षावानपि प्रायः करुणारसपूरितः ।  
 मुनिरुद्वेगयामास जैनं धर्मं श्रयामयम् ॥ १०३ ॥  
 यो यो भव्यजना यूयं शृणुष्व धर्मसूत्रमम् ।  
 स्वगापबगयादींश्चैतैः स्वयश्चरणं शुभम् ॥ १०४ ॥  
 संसारेऽपि सुखं न स्यादासर्वादिदिवीकृतम् ।  
 कर्माधीनतया दूर्ध्वं तदुदयवक्ष्यतेऽहम् ॥ १०५ ॥  
 तथापि माहमाहात्म्यात्प्रत्यस्तमितलोचन ।  
 ससारी मनुत सौख्यं संसक्तो विषयज्वरपी ॥ १०६ ॥

अनित्येषु शरीरषु पुत्रपौत्रादिकषु च ।  
 सपत्सद्यकसप्रषु नित्यत्वं मनुते कुरुम् ॥ १०७ ॥  
 दुःस्वर्गीजषु भोगेषु रमते स्वसुखाश्रया ।  
 तद्वियोगे च दुःस्वार्त्तं सीदत्येव पशुयथा ॥ १०८ ॥  
 क्षणं कामी क्षणं सोमी क्षणं तृष्णापरायणः ।  
 क्षणं भोगी क्षणं रोगी भूतादिष्ट इषाचरत् ॥ १०९ ॥  
 रागद्वेषमपीभूय भूयस्तत्र जटात्मकः ।  
 बुभोष्य कर्म बध्नाति यत्र तद्गुणं व्रजत् ॥ ११० ॥  
 कदाचिन्मारुतो भूत्वा तत्र दुष्कर्मपाकतः ।  
 असद्यैर्यातनादुःस्वैस्ताड्यते सागरानधिः ॥ १११ ॥  
 कापि विपगातिं प्राप्य जन्मनीचैः क्लेशेभ्यश्च ।  
 दुःस्वानां च सहस्रैश्च पीडितोऽयं भ्रमत्यहो ॥ ११२ ॥  
 ततो नाभूत्स्विरः क्वापि मध्यगतियत्तुष्टयम् ।  
 विना सम्यग्ज्ज्योषश्चैर्मैतुरनंतज्ञः ॥ ११३ ॥  
 अतः सुस्वार्थिनानेन प्राणिना परमसंज्ञहः ।  
 कर्तव्योऽवश्यमेवायममर्षं जिनभाषितः ॥ ११४ ॥  
 इमां निरुपमां शार्चं प्रज्ञमांशुगर्भी मुनेः ।  
 श्रुत्वास्य भाषदेवस्य कंषितं हृदयं तदा ॥ ११५ ॥  
 ततो निर्दिग्धपिचैन तेन संसारमीरुणा ।  
 विश्रुतो एकराशौ मुनिः सौषमसंज्ञकः ॥ ११६ ॥  
 स्वामिन् प्रायस्य मामथ निमज्जंतं भवाम्शुषी ।  
 यथाकर्षधिदासीर्यं सभैर्यं सुखमभ्ययम् ॥ ११७ ॥

ततो नाय कृपां कृत्वा दीक्षां मे दहि निर्मलाम् ।  
 सर्वसंगपरित्यागलक्षणां भवनाश्विनीम् ॥ ११८ ॥  
 भुत्वैतद्भाषदेवस्य चाप्यांभागभित्तं वच ।  
 उवाच षाषं सौषर्मां मुनिस्तत्प्रीणनक्षमाम् ॥ ११९ ॥  
 निर्दिष्टोऽसि यदा वत्स मत्वा भोगांश्च रोगवत् ।  
 तदा दीक्षां गृहाणाञ्च रागिभिर्दुर्दरामिमाम् ॥ १२० ॥  
 गुरुपदेशतो मूनं धैर्यमालम्ब्य शुद्धधीः ।  
 निःशल्पो माषदवोऽसौ षषद्राज द्विजोत्तमः ॥ १२१ ॥  
 तवम्भृति योगीशः साक्षाद्वाचयमी यथा ।  
 स्वसंयमाबिरोधेन विमर्ह्य महीतल ॥ १२२ ॥  
 गुणैर्गुणैः गुरुणा सार्द्धं गच्छन्नकल्मषः ।  
 धोरमुग्रं तप कुर्वन् स समं सुखदुःखयोः ॥ १२३ ॥  
 स्वाध्यायध्यानमैकाग्र्यं ध्यायन्निह निरंतरम् ।  
 शब्दब्रह्ममयं तत्त्वमम्यसन् विनयानतः ॥ १२४ ॥  
 धन्योऽस्म्यहं कृतार्थोऽस्मि यन्मया मासमुत्तमम् ।  
 धैर्यं धर्ममिति प्राहो मन्यमानः कृतार्थताम् ॥ १२५ ॥  
 अयान्यपुः स सौषर्माः धुरिः संप्रसयन्वितः ।  
 बिहरन्नागतो भूयो वर्द्धमानामिष पुर ॥ १२६ ॥  
 माषदेवा मुनिस्तत्र स सस्मार विशुद्धधीः ।  
 वर्तते मेऽनुजा भ्राता पुरेऽस्मिन्निति वितयन् ॥ १२७ ॥  
 माषदेव इति म्पाती विप्र स्याद्विषयांषधीः ।  
 स्वात्महितमजानाना दुःभृतिप्रस्तवतसः ॥ १२८ ॥



मनित्येषु शरीरेषु पुष्पपौष्पादिकेषु च ।  
 सपत्सद्यक्तसम्पेषु नित्यत्वं मनुते कुट्टकं ॥ १०७ ॥  
 दुःस्वप्नीजेषु भोगेषु रमत स्वमुत्साहया ।  
 तद्विभोगं च दुःस्वार्तः सीदत्यत्र पशुर्यया ॥ १०८ ॥  
 क्षणं कामी क्षणं लाम्बी क्षणं कृष्णापरायण ।  
 क्षणं मोगी क्षणं रागी मृताधिष्ठ इवाचरत् ॥ १०९ ॥  
 रागद्वेषमयीभूय भूयस्त्वम जडात्मकं ।  
 दुर्मोक्ष्यं कर्म बध्नाति येन तद्गतिं प्रभत् ॥ ११० ॥  
 कदाचिन्महारक्षा भूत्वा तत्र दुष्कर्मपाकतः ।  
 असह्यैर्पातनादुःस्वैस्वाद्यत सागरावधिः ॥ १११ ॥  
 कापे तिर्यग्गतिं प्राप्य जन्यनीचैः कुलेभ्यः ।  
 दुःस्वार्तां च सहस्रैश्च पीडिताऽयं भ्रमत्यहो ॥ ११२ ॥  
 ततो नाभूत्स्मरः क्वापि मर्त्यगतिषु ह्यष्टयम् ।  
 विना सम्यग्दम्बोपहृतैर्भेतुरनंतश्च ॥ ११३ ॥  
 अतः सुस्वार्दिनानेन प्राणिना यमसंघाहः ।  
 कर्तव्योऽवश्यमेवापयमञ्जं भिनभापितः ॥ ११४ ॥  
 इमां निरुपमां वार्धं प्रश्नमाबुगर्मां मुनेः ।  
 भुत्वास्त्य मावदेवस्य कंषितं हृदयं तदा ॥ ११५ ॥  
 ततो निर्विण्णचित्तं तेन संसारभीरुणा ।  
 विह्वलौ गृहरेवासौ मुनिः सौम्यसंज्ञकः ॥ ११६ ॥  
 स्वामिन् वापस्व मामद्य निमज्जंत भवाम्बुधी ।  
 यथाकर्षं विदात्पीर्यं सभेयं सुखमभ्यसम् ॥ ११७ ॥

चर्चैः स्याने निवेश्याशु नमस्कृत्य पुनः पुनः ।  
 शरण्ये शरणे तत्रोपनिष्टो गुरुसंनिधौ ॥ १४० ॥  
 योगिना भ्रातृमन्येन धर्मशुद्धिधाविदानतः ।  
 समाहितः पुनः प्राह भवद्ब्र इतीरित ॥ १४१ ॥  
 विद्यत कुशलं भ्रातः संयमे तपसां चये ।  
 एकाग्रचित्तने ध्यानं ज्ञाने स्वात्मसमुद्भवे ॥ १४२ ॥  
 मुनिः प्राह महामाह साक्षैव भ्रातर प्रति ।  
 समाधानपरा वत्स प्रष्टुकामा वय त्विदम् ॥ १४३ ॥  
 क्रियेतास्मिन् गृहे भावि भूतं वा वसतेऽधुना ।  
 दृश्यते मंडपारभो भ्रातस्त्वद्दसतौ यतः ॥ १४४ ॥  
 यत्तत्रालंकृतं सौम्यं वपुः परमसुन्दरम् ।  
 करे ककणमेतत्ते दृश्यत चात्समानम् ॥ १४५ ॥  
 आकल्प्येत् गुरोर्बाक्य भवदेना नताननः ।  
 इपत्स्मित स्वस्वदाचमुपाय व्रीहया युतः ॥ १४६ ॥  
 स्वामिभ्रम वसद्विभो नाम्ना दुर्मर्षणः स्मृतः ।  
 नागदेशी च भार्यास्य कुलश्रीलगुणांकिता ॥ १४७ ॥  
 तयोर्नागवधुपुत्री मयेहाद्य विधाहिता ।  
 आह्वामादाय वंधूनां वेदवाक्यसमक्षम् ॥ १४८ ॥  
 मुनिः प्राह ततः भुत्वा मुक्तिसगर्भितां गिरम् ।  
 भ्रातर्यर्माजगत्पस्मिन् दुर्लभं न किमप्यहो ॥ १४९ ॥  
 पर्याद्वैन्द्रं पदं नृणां सर्वसंपत्समन्वितम् ।  
 चक्रित्यं मार्दवक्रित्यं नृपस्य च विज्ञेयतः ॥ १५० ॥

१ शरण्ये साधुः शरण्येऽस्मिन् । २ गृहे ।

एकस्रो बोधयाम्येनं परमोपेक्षमानपि ।  
 श्रुत्वा गत्वापि तद्गृहे विषय मे मनोरथः ॥ १२९ ॥  
 अर्हदमोपदेशैश्चत् प्रतिबुद्धं कथंचन ।  
 विरक्तो भवमागम्यो निश्चितं स भवेन्मुनिः ॥ १३० ॥  
 धितपिस्थितिं चित्तं स्व भावदेवो मुनिस्तदा ।  
 आश्रित्यद्वाराः पार्श्वमाहामादातुकाभ्यया ॥ १३१ ॥  
 दीयतां भगवन्माहा मर्षं भ्रातृविवाचन ।  
 बद्धकलाय कारुण्यात्स्वल्पसाक्षिकमूमे ॥ १३२ ॥  
 एवं प्रसादपित्वा स्थातुं नत्वागमन्मुनिः ।  
 भवदेशगृहे रम्यं कृतेर्यापमद्भुदिमात् ॥ १३३ ॥  
 अनंतरं ददर्शासौ भ्रातृगेहं सविस्मितः ।  
 महपादं वराधं हि तारणभीषिराजितम् ॥ १३४ ॥  
 मंगलात्वाद्येनान्दिश्य बधिरीकृतदिकूपयम् ।  
 चिप्रोच्छ्रितैःसमाकार्ण्यं मर्दां ( तां ) दौलित्यध्वनम् ॥ १३५ ॥  
 तारुण्यपूर्णनारीभिः कृतगानमहात्सयम् ।  
 र्धक्षिणिं स्तूपमानं च भद्रवाक्यैरसकृतम् ॥ १३६ ॥  
 जातीकुंदादिपुण्यैश्च पासितं गणशास्त्रिभिः ।  
 सत्कर्पूरविभिर्भिः श्रीसंदेशचिंतं मृदुम् ॥ १३७ ॥  
 मुनिनापि युतः सार्ये भावदेवः सुसयत ।  
 अविस्मयतया प्राप्तस्वभ भ्रातृसृष्टांगणे ॥ १३८ ॥  
 ततो ह्युत्सृष्ट्वा समुत्थाय तूर्णमभ्युद्यम विधिम् ।  
 प्रभयात्कारयामास भवदेशी नवानतः ॥ १३९ ॥

उद्यैस्यान निवश्याथु नमस्कृत्य पुन पुन ।  
 शरण्ये शरणे तत्रोपरिष्ठो गुन्मनिर्षा ॥ १४० ॥  
 यागिना भ्रातृमन्येन यमशुद्ध्यान्दिदानतः ।  
 समावित पुनः प्राह भवन्व इतीरत ॥ १४१ ॥  
 विपत कुशलं भ्रातृ सयमे तपसा चये ।  
 एकाग्रचित्तन ध्यान ज्ञान म्यात्मसमुद्भवे ॥ १४२ ॥  
 मुनि प्राह महामात्र साध्वैव भ्रातर प्रति ।  
 समाधानपरा वत्स प्रष्टुषामा यय त्विदम् ॥ १४३ ॥  
 किमतास्मिन् गृह भावि भूतं वा षततऽपुना ।  
 दृश्यते पदपारभा भ्रातस्त्वद्दसतो यत ॥ १४४ ॥  
 यतपानकृत् सांम्यं वपुः परममुन्दरम् ।  
 करे कंकणमतस्त दृश्यत चात्सनाषट्म् ॥ १४५ ॥  
 आकष्यन् गुरोर्वाक्यं भवद्वा नताननः ।  
 इपत्स्मित स्वसुद्रावमुवाच ग्रीहया युतः ॥ १४६ ॥  
 स्वामिन्नप्र वसदिशो नास्त्रा द्रुमपणं स्वृत ।  
 नागदधी च भार्यास्य कुलश्रीलुगुणाङ्किता ॥ १४७ ॥  
 तयानागनमूपुत्री मयहाप विनाहिता ।  
 आशामादाय वचूनां वेदवाक्यसमसफम् ॥ १४८ ॥  
 मुनि प्राह तव भुत्वा युक्तिसर्गार्थिता गिरम् ।  
 भ्रातृधर्माज्जगत्स्मिन् दुर्लभं न किमप्यहो ॥ १४९ ॥  
 धर्मदिन्द्रं पदं नुनां सर्वसंपरसमन्वितम् ।  
 अस्मिन् वादेषकिन्च नृपत्वं च विज्ञपत ॥ १५० ॥

सवंप्राणिपाल्या गृहस्यशमिनाद्विधा ।  
 रत्नप्रयमयो धेमः स त्रिधा जिनदक्षित ॥ १५१ ॥  
 नरत्वं प्राप्य दुष्प्यार्प्य या न धर्म समाचरत् ।  
 मूर्ध्न मन्ये वृषा तस्य जन्म प्राप्तमपि स्फुटम् ॥ १५२ ॥  
 पीत्वा वाक्यामृतं पूर्तं प्राप्तं मुनिमहोदधः ।  
 ममदंशो व्रतान्पुर्णैः भावकस्यागृहीच्छत्रा ॥ १५३ ॥  
 संग्रहीतव्रतनाथु विज्ञप्ता मुनिनायकः ।  
 स्वामिक्षत्र गृहे मञ्च त्वया भाग्यं कृपापर ॥ १५४ ॥  
 विज्ञप्तरज्जुजस्यैव भ्रातृधर्मानुरागतः ।  
 मुनि स श्रुत्वाहार निःसारथ नपास स ॥ १५५ ॥  
 ततश्चेर्षार्पय पश्यंश्चपाल मुनिपुंगव ।  
 विष्टम यत्र सौषर्षो यतिवृद्धसमन्वित ॥ १५६ ॥  
 ततः पौरजनाः क्वचिद्दिनाप्यनुमतिं मुने ।  
 शैलुस्तपनुगच्छंत प्रभयस्य कृतज्वतः ॥ १५७ ॥  
 तत्सार्यैस्त्वपिभावाय क्रियतूर यथायमम् ।  
 गत्वा पुननमस्कृत्य व्याहृत्य गृहमाययुः ॥ १५८ ॥  
 ममदंशाञ्जुवा भ्राता तन सार्धमनीगमत् ।  
 गृहे गच्छ गुरोराज्ञां प्रतीच्छन्निति गौरवात् ॥ १५९ ॥  
 मुनिनामाणि न तद्वाक्यमहिंसाव्रतपातकम् ।  
 चमम्भंममिषा शब्दप्रसता संयमान्निदान् ॥ १६० ॥  
 एवमेव गता दूरे दूराहूतरेऽपि च ।  
 सुसुशु कंचणार्णवी व्याकुलीभूतपैतसः ॥ १६१ ॥

स्मार स्मारं पुनश्चित्ते नागधसुमुखांबुजम् ।  
 मूर्च्छाश्लेष पद् पत्त प्रस्त्रसद्गतिनिश्चमम् ॥ १६२ ॥  
 किंचित्सोपायमालोप्य ध्यामादृचे मुहुर्मुहुः ।  
 शूई भिगमिपया भावदेवं प्रति सहादरं ॥ १६३ ॥  
 स्वामिन् स्मरस्पर्यं धृता गन्धुतिप्रमितः पुरः ।  
 श्रीदार्यं त्वमह चास्तां प्रत्यह यत्र सार्यतं ॥ १६४ ॥  
 इतः पश्य तद्भाग मा एकमासीषिरानितम् ।  
 श्रातुं रूत मरालस्य यत्रासां तस्यतु पुरा ॥ १६५ ॥  
 कृषिमं कानने पश्य नानानोकरैसहतम् ।  
 पुण्यावचयायासां च यत्राजम्भतुरादरात् ॥ १६६ ॥  
 सय स्यसी कृपानाय चन्द्ररश्मिरिबोज्ज्वला ।  
 यत्र कदुकवेलायै तस्यु सर्वेऽस्मदादयः ॥ १६७ ॥  
 इत्यादिविषिषासापैरास्माकृतं वदन्नपि ।  
 भवदशो न शशाकार्ष्वमोहितुं तन्मनो मनाहू ॥ १६८ ॥  
 नापि पश्यति नेमाभ्यां ना किंचिद्विचतयेन्मुनिः ।  
 यषसापि न हुकार वदद्वा बाहुसहया ॥ १६९ ॥  
 प्रमादृषं मुगच्छन्तां प्रापतुगुरुसनिषी ।  
 पुरं धमरयस्यैतां बोधारीं पृथभावेच ॥ १७० ॥  
 तमस्त मुनिमुद्दिश्य शंसु सर्वेऽपि सयता ।  
 पन्याऽसि त्वं महामाग यनानीर्गाऽनुमः सणाम् ॥ १७१ ॥  
 तथा भक्त्या प्रणम्याथु गुरुं सांपमसद्गम् ।  
 उपनिष्टां ययास्थाने भावदेवा मुनिस्तदा ॥ १७२ ॥

इतिकर्तव्यतामूढः पर्याकुलितचेतसः ।  
 पितयापास चित्ते स्वे भवदेवा नषाद्देहः ॥ १७३ ॥  
 निवृत्त्याव सृष्टं यामि किं वा गृह्णामि संपमम् ।  
 इति संशयदोषायां क्षणं नास्यापि तन्मनः ॥ १७४ ॥  
 उद्वाहस्यावशिष्टं यत्कार्यं कृत्वा नया समम् ।  
 कांतया दुर्लभान् भोगान् मुञ्चामीति यथेप्सितान् ॥ १७५ ॥  
 इदमाकृतं तु म चित्ते पतते स्वमनीषितम् ।  
 कस्यात्र कथयाम्यत्र ग्रीह्यावृतमानसः ॥ १७६ ॥  
 केदं पदं मुनीशानां दुर्द्धरं महतामपि ।  
 अस्मादृष्टा मराकाः क दृष्टा कामगुर्जगके ॥ १७७ ॥  
 अथ वैभवं करोम्यत्र गुरुवाक्यममूहणात् ।  
 अयं व्येष्टो मम भ्राता मामूलुञ्जापरायणः ॥ १७८ ॥  
 विमृश्यो मयपसेऽपि कृत्याकृत्यविश्रपत ।  
 सप्तस्यः कृतवैर्योऽसौ दीप्तामादासुमुद्यतः ॥ १७९ ॥  
 चित्तित्तं तेन चित्ते स्वे सप्तस्येन विमृश्यता ।  
 मयिष्यामि पुनर्गोई यथाकालमृतः परम् ॥ १८० ॥  
 विमृश्यैतत्सच्छेषः स भवद्भो नताननः ।  
 अवादीन्मुनिमुदिश्य यथा घूर्तविशेषितम् ॥ १८१ ॥  
 मुनं परापकाराय बद्धकस्त महातप ।  
 मयि दीने कृपां कृत्वा देहि दीक्षां स्वमार्गतीम् ॥ १८२ ॥  
 विज्ञातो मुनिना तूर्णं सावधिज्ञानचञ्चुपा ।  
 गापयन्नपि दुर्लभं स्वाभिप्रायं द्विजोद्यमः ॥ १८३ ॥

मषिष्टः स ददर्शोर्चर्त्तन्निषत्पृष्टश्च शुभम् ।  
 उच्युमतारणापतं ध्वनमालाभिराततम् ॥ १९५ ॥  
 मणिमुक्तामयैषाह भूपित भूपर्षः शुभः ।  
 यातायातांगनाभिदध कृतगानमहात्सवम् ॥ १९६ ॥  
 श्रिः परीत्याय मक्ष्या तां वंदित्वा प्रतिमां शिर्षाः ।  
 उषधिष्टा यथास्थान मन्त्रना नाम्ना मुनिः ॥ १९७ ॥  
 तत्र चैत्यालय स्याता सारिष्ठा या प्रतान्विता ।  
 चर्मास्थिभ्रुपसर्षांगी मुनि हृष्टा नन्द तम् ॥ १९८ ॥  
 समाधानं मुन तज्य सयम तपसि ब्रव ।  
 ध्यानं ज्ञानं च स्वाध्याय तथा कश्चिद्वितीरितम् ॥ १९९ ॥  
 मुनिनापि यथायोग्यं पृष्ट्वा तत्कुशलं तदा ।  
 साम्नेव तां समुद्दिश्य प्राक्तमतःस्पृहास्तना ॥ २० ॥  
 आर्यं पूजमभूतां द्वौ शिद्दांसौ सखिताकृती ।  
 द्विमस्यायनसांः पुत्रा विख्यातौ सर्षसम्मथौ ॥ २०१ ॥  
 तत्र ज्ञापाननधोऽन्यैर्माषेदेव इति स्मृतः ।  
 मन्त्रेषो सधीयाश्च बाम्नी बन्दिदापर ॥ २०२ ॥  
 पावने वेदिमानासि शूहि मे सद्यश्छिन्द ।  
 क कर्म तिष्ठतस्तौ द्वौ का कथा चापुना तथाः ॥ २०३ ॥  
 सोष तद्वाभयमाकम्प्य निर्विकारा मुषेष्टिता ।  
 पन्थौ तां मुनिनाथौ द्वौ जातौ असादिसम्पितः ॥ २०४ ॥  
 भुत्सेतद्रमदवीऽसाकुक्कषानसममसम् ।  
 उन्निरभिव गूढार्थपात्माकृतं तत्रातुर ॥ २५ ॥



आर्ये षट् किमप्यन्यत्सृञ्छामीह महादरात् ।  
 न संदंश्वचो दृष्य महतामपि संमतम् ॥ २०६ ॥  
 नाम्ना नागवत्सु यासीन्नवदशषिबाहिता ।  
 सा विना पतिना घाला यावदधामवत्कथम् ॥ २०७ ॥  
 इति भाषां विफारैः स शतो भर्तृघरस्तया ।  
 पश्चात्पाप मुकुर्बस्या मिया कं पितयेष वा ॥ २०८ ॥  
 नून मुनिपद त्यक्तमयमिच्छति मूढधी ।  
 त्यक्तधैर्यातिकामांघा दुःसहस्मरपीडित ॥ २०९ ॥  
 अथा धर्मानुरागाद्धि बाद्धभ्योज्य मयाधुना ।  
 यथाकथं धित्सद्वाक्यैर्जिनाक्तैरमृतोपमैः ॥ २१० ॥  
 अथ चेत्सस्मरश्चार्यं भोगानिच्छति सर्षतः ।  
 हृद्व्रतं च मे भूयात्माप्नोतिऽपि गरीयसि ॥ २११ ॥  
 विधित्येति क्रियाक्रांता सीधे साक्षात्हृद्व्रता ।  
 विनयेनानता मुग्धि भारतीष मियंबदा ॥ २१२ ॥  
 स्वाभिच्छीञ्च्य महाप्राज्ञ धन्योऽसि त्वं जगत्प्रभ ।  
 धारिर्न यश्चया प्राप्त दुष्प्राप्यं महतामपि ॥ २१३ ॥  
 त्वं पूज्यास्त्रिदिवेशानां मुनि परमपावनः ।  
 सपसपभिमानस्त्व मोक्षलक्ष्मीस्वयवरः ॥ २१४ ॥  
 वारुण्यऽपि महामोगान्कश्यैतास्त्यक्तुमर्हति ।  
 मयताऽन्यत्र भो सौम्य सुरलोकेऽपि दुर्लभान् ॥ २१५ ॥  
 प्रार्थये मधुरामासा विपाके फटुकाः स्फुटम् ।  
 हाहाहसनिभा भोगा सद्यःप्राणापहारिणः ॥ २१६ ॥

कञ्जभामृतं परित्यज्य निपमिच्छति मूढधीः ।  
 कञ्जनाश्मानं समादत्त त्यक्त्वा माम्मूनद् श्रुतः ॥ २१७ ॥  
 स्वगापवर्गयाः श्रम मुक्त्वा कां नरकं वप्रेत् ।  
 त्यक्त्वा जैनश्री दीप्ता भागान् कामयतऽपमः ॥ २१८ ॥  
 इत्यादिबिनिर्वाण्यः प्रतिवापदिषायकैः ।  
 मापित स तथा बगास्त्रज्जयामूदपासुस्तः ॥ २१९ ॥  
 पृष्टा नागबन्धु यात्र स्वया किञ्चित्सूहासुना ।  
 मामेषाध्यक्षत पश्य तामयोगाधितां मुनः ॥ २२० ॥  
 यपुस्तस्याः कृमिस्थानं भवद्धारमपावनम् ।  
 मुस्तं छासाविस्तं पृति फाल्गुसदृशं शिरः ॥ २२१ ॥  
 स्त्रस्त्रान्क्यमसंभन्नं वीभस्ता घपरः स्वन ।  
 गर्वाक्षरौ कपोला द्वौ मुकूपाविष चभ्रुपी ॥ २२२ ॥  
 किंवा बहुतराणां सवैपाह समस्रतः ।  
 शुष्कमासां सुजां तस्याः पतिती च पयोधरौ ॥ २२३ ॥  
 स्वाधिकारात्ममघा द्वौ नराविष कुसेषया ।  
 चमास्त्रिभूतसर्वांगी निष्कामा व्रततत्परा ॥ २२४ ॥  
 पिग्दुर्बमिद्रं यन्मां स्माग् स्मारं पुनः पुनः ।  
 सन्नन्वन स्वया धीर क्वासाऽप्य ममिता वृषा ॥ २२५ ॥  
 सुदर न किमप्यस्ति नूनं यापित्कुटीरक ।  
 भतश्चता पिरज्याभु निःसन्नं तक्षपः कुक् ॥ २२६ ॥  
 तपसा यन प्राप्यते स्वगर्मासमुत्तानि च ।  
 किं वृषा विपर्ययभिः सास्याभासानिबन्धने ॥ २२७ ॥

कामिन्यादिमहाभागा मुक्ताच्छिष्टा धनतश्च ।  
 यतस्वप्नानुरागन किं मुन दुःखदायिना ॥ २२८ ॥  
 भुक्त्वा मुनिरिमां वाच निगतां कामिनीमुखात् ।  
 पिबुर्बभ्रुवात्मानमापल्लज्जापराऽभवत् ॥ २२९ ॥  
 तस्याः प्रद्वसन चक्र प्रविवुद्धमना मुनि ।  
 मयदेवोऽभिसयागादिव कातस्वराऽमलः ॥ २३० ॥  
 धन्य त्वमथ नौकासीद्भवान्ध्युत्तरण मम ।  
 निमज्जत शतावर्ते मोहागापतल मृशम् ॥ २३१ ॥  
 इत्युक्त्वाय गता नगाभि शल्या मुनिसभिधौ ।  
 मुक्तपात्रो भ्रमावर्ते सप्रहीतभिरादिव ॥ २३२ ॥  
 नत्वाय मुनिनाथ तमुपाविश्य ययासन ।  
 ययाह्वत् स्वनृधान्त तस्मै सर्वमधीकयत् ॥ २३३ ॥  
 श्रेयोपस्यापर्नं कृत्वा ततश्चत स संयमी ।  
 नातः साक्षान्मुनिर्मेता कपर्णा भावशुद्धित ॥ २३४ ॥  
 आत्मध्यानरतोऽप्यासीत्तद्रागद्रूपनिबन्धितः ।  
 तप कुर्वन्मजस्र स भ्रात्रा सार्धमविष्टपत् ॥ २३५ ॥  
 निस्पृहः स्वशरीरेऽपि सस्पृहा मुक्तिसगम ।  
 साहिष्युः धृतिपासादिदुःस्वार्ता समभावतः ॥ २३६ ॥  
 अरिमिप्रहृष्यस्पर्णलाभालाभसमः शमी ।  
 निर्दास्तुतिसमा धीमान् जीवित मरण सम ॥ २३७ ॥

अंत समाधिना मृत्यु सप्राप्य विमलाचलं ।  
 पण्डितं मरणं प्राप्तं द्वाभ्यां च भुमयागत ॥ २३८ ॥  
 ततस्तृतीय स्वर्गे द्वा सनत्कुमारसद्वृत्त ।  
 अभूता दिशिर्जा राजन् सप्तसागरजीवितौ ॥ २३९ ॥  
 तत्र दिव्याप्सराभागान् वृजानी मुक्तामासतुः ।  
 द्वापपि व्रतमाहात्म्यात्पुत्राचार्यवसानुप ॥ २४० ॥  
 यस्य धमस्य माहात्म्यार्त्ता जातावमरश्चरौ ।  
 स धमा धमसंसिद्धयै सख्य सद्भिर्निरन्तरम् ॥ २४१ ॥

इति श्रीजन्मूस्वामिचरिते भगवच्छ्रीपदिधमनीर्षकरोपदेशानुसरित्-  
 स्वाहादानवचनावपमिषाविशारदपण्डितपद्मनल्लुचिरचिते  
 साधुपासारनवसाधुदोहरसमन्वयिते भावदेशनवदेश-  
 सप्तकुमारस्मृतिगमनवर्णना नाम  
 तृतीय परिच्छ ।

१ मरणं त्रिविधं वाक्यमरणं वाक्यपण्डितमरणं पण्डितमरणं च । वरुणवृत्तमरणं वाक्यमरणं । वरुणवृत्तमरणं मरणं वाक्यपण्डितमरणं । वैश्वदेव मरणं पण्डितमरणं ।

## अथ चतुर्थपरिच्छेद

उप्राग्रातकृत्वात्प्राः भीपासातनय कृती ।

वर्द्धतां यद्वरं साधू रसिकोऽथ कयामृत ॥

इत्याशीर्षद्वि ।

सुमतिं सुमतिं वंदे कुमतध्वातश्चात्तये ।

पञ्चमं त्रिषा नौमि पञ्चाभ पञ्चबांधवम् ॥ १ ॥

अथ ताभ्यां सुस्नाम्भोधिप्राभ्यां मगधापिप ।

निर्वोदितां निमं क्वासं सप्तान्भ्यामुप्यसमित ॥ २ ॥

एकदाय तयोरासन् भूपासबन्धिनोऽमला ।

मण्यस्तेनसा मदा निष्ठापाय प्रदीपयत् ॥ ३ ॥

मासा चाप्यभनन्स्नाना महारुस्यन्गामिनी ।

मुच्यन् तत्स्वसंबन्धिसस्नीषिश्चेपभीरुका ॥ ४ ॥

मघकंप तदा बाससंबंधी कृत्यपादपः ।

तद्वियागयहानातवृत्तः साध्यसमादयत् ॥ ५ ॥

मपुःकांतिस्त्वयारासीत्सथा मंदायिता तदा ।

पुण्यातपत्रविश्लेष तच्छाया कानतिष्ठते ॥ ६ ॥

तामासानय तदाभ्यस्वकांती विच्छायतां गतौ ।

द्रष्टुमक्षमकाः सर्वे सन् कुमारकल्पजा ॥ ७ ॥

तयार्देन्यात्परिमाप्ता दैन्यं तत्परिचारकाः ।

तसौ चसति ज्ञास्वाद्या विप्रपात्र चसति किम् ॥ ८ ॥

आजन्मता यदाभ्यां हि समाप्तं सुखमामरम् ।  
 तच्चदा विदित सर्वं दुःखीभूयमिषागमत् ॥ ९ ॥  
 अथ सबधिनो दवास्तापुपस्य यपोचितम् ।  
 तयोर्विपादनाश्रय पुष्कलं वचन जगुः ॥ १० ॥  
 मां धीरौ धीरतामेव कुर्वीतायां शुचात्र किम् ।  
 जन्ममृत्युमरातंकमयानां का न गाचर ॥ ११ ॥  
 साधारणी भवस्येषा सर्वेषां प्रच्युतिर्दिश ॥  
 धौरायुषि परिक्षीण न बाहुं समते क्षणम् ॥ १२ ॥  
 नित्यास्त्रास्त्रेऽप्यनालोका द्विष्ठाः प्रतिभासत ।  
 धिरामात्पुष्पदीपस्य समतादप्रकारित ॥ १३ ॥  
 यथा रविरभूत्स्वर्गे पुष्पापापादनारतम् ।  
 तथैवाप्रारतिभूय क्षीणपुष्पस्य जायते ॥ १४ ॥  
 न क्वचलं परिम्बानिर्मात्यायां सहजन्मनः ।  
 पापातप तपस्यत जन्ताम्बानिस्वर्नारणि ॥ १५ ॥  
 फलपत हृदय पूर्णं चरमं कल्पपादपः ।  
 गच्छति धीः पुरा पदपाचनुष्णया सम क्षियाः ॥ १६ ॥  
 प्रस्थासन्नस्पुतेरेष यथास्थ्य भिदिमौकसाम् ।  
 न तस्स्याभारकस्यापि प्रत्यग्र युवयाः स्थितम् ॥ १७ ॥  
 ययोदितस्य मूयस्य निदिषताऽस्तमय परः ।  
 तथा पातामूलः स्वर्गे अतारम्युदयाऽप्ययम् ॥ १८ ॥  
 तस्माच्च गरुडः शोकं कुयान्यावतपात्किन्म् ।  
 कुयातां च मतिं धर्मं पुषामार्यां वृपाजनं ॥ १९ ॥

इत्य तत्प्रतिष्ठायाद्धि धियमात्रमन्य धीधनौ ।  
 धारयामासतुर्थमे मति जैन मुम्बद ॥ २० ॥  
 निरुद्धन्द्रियरूपाणि यतान्यादानुमक्षमा ।  
 क्तव्यायस्त्रभाषत्वाभ्रच्छाराधो दिवाकसाम् ॥ २१ ॥  
 ततः क्वलमिउयाह रक्तजिनवश्मनाम् ।  
 पूर्ता तप्रत्यविम्बानामपि भारविशुद्धय ॥ २२ ॥  
 तस्वत्यद्रुममूलस्था स्त्रायुर्गत समाहितौ ।  
 नतिमाध्यानयागेन ध्यानैक्यप्रारत्नधिना ॥ २३ ॥  
 नमस्कारपदान्युक्ते स्मरते निभयाचिह ।  
 मुकुर्वाकृत्य करा साक्षाभजादह्यता गर्ता ॥ २४ ॥  
 नम्पूर्दाप महामरी विद्वह प्ररिग्गत ।  
 उत्तमिष्यनमर्षिण्या फास्रभन्विनजित ॥ २५ ॥  
 दिरुक्तमुपमार्तना दू रानानामनास्त्र ।  
 सदा तीर्थकाल्यर्षो नत्यदस्वप्रपावन ॥ २६ ॥  
 विष्णुना प्रतिविष्णुना पञ्चप्राना तपर ष ।  
 रत्ननिस्त्रातह रम्य मांगुलापुधनामिनाम् ॥ २७ ॥  
 धमभूमिरिति म्यात धनपान्यसमन्विन ।  
 नीहन् गपपत तत्र नाघ्रा ष पुच्छमारती ॥ २८ ॥  
 पर प्राप्ता महागप्ता कुण्डुत्राङ्गानपावद्या ।  
 पइ पइ समारमाना ह्यपन गस्यगंपद । ॥ २९ ॥  
 साराणि पर रात्रन वषार्थार्षार गगननम् ।  
 ह्यु नयत्यनारीणा पार्षि गाधुता यपु ॥ ३० ॥

अपि यत्र महामानमानसा रमिरे मृशम् ।  
 ऋसहस्ररसैस्तूर्णं गायंतीष हि तद्यज्ञः ॥ ३१ ॥  
 सप्रपा कृपका यत्र बाप्या वारिजलाघनाः ।  
 धन वनानि मार्गेषु निधानानि पद् पद् ॥ ३२ ॥  
 ग्रामा यत्र विराजंत पुरदरपुरापमा ।  
 नराः सुदरभूषाया नाप्यश्वाप्यविमुद्राः ॥ ३३ ॥  
 क्षिप्रं वर्षायेद्विद्वान् यत्र सौख्यं निरतरम् ।  
 दिदृक्षया तीर्थेधानां दिवस्त्वम्बमिवागतम् ॥ ३४ ॥  
 तत्रास्ति महती नाम्ना रम्या पू पुण्डरीकिणी ।  
 श्राद्धयोननायामा नवयोत्रनविस्तृता ॥ ३५ ॥  
 यत्रापवनराजीभी राजत भूयिष्यमा ।  
 स्वातिष्ठा यत्र पातालं शालश्चाप्यंबरं सृष्टत् ॥ ३६ ॥  
 भ्रिनधमरता यत्र भाषका मुनयस्तथा ।  
 रयंत व्रततीर्थेषु मरामा मानसेष्विष ॥ ३७ ॥  
 तप कुर्वति घोराग्रमुद्रा यत्र तपाधनाः ।  
 बाधाघान्पु निर्माका सर्वसंगविषमिताः ॥ ३८ ॥  
 यत्र कर्मक्षर्यं कृत्वा क्वसत्कृतिरक्षया ।  
 जायत माणिनां श्रम्यत्कृपाधिद्वेष्यसंक्रिनाम् ॥ ३९ ॥  
 कृपाधित्सम्यक्स्थात्यर्था रत्नगर्भाविनियथा ।  
 साभूस्वर्गादिसौख्यानां प्राप्ती निःश्रमिष्य च ॥ ४० ॥  
 तत्र भूपाऽस्ति नाम्नापि चन्द्रवता वसान्वितः ।  
 क्वचमं न रदास्तद्वत्सर्वं यत्रमयं वपुः ॥ ४१ ॥



ज्वलत्यस्य मतापार्त्वा साद्रुमक्षमक्षा पर ।  
 क्षणादव पत्नायत दूरादर्थनमाप्रत ॥ ४२ ॥  
 तस्य पत्नी तु नाम्ना स्यात्पद्विभक्ता यन्नाथना ।  
 ममयस्य धनुषाष्टिरिच सादयराजिता ॥ ४३ ॥  
 भावद्वचर साज्य द्वाऽभृत्तृतीय दिवि ।  
 तत्र च्युत्वा तथा पुत्र सजात स्वायुष क्षय ॥ ४४ ॥  
 तथा वायुभिराम्नात परमानदवदनात् ।  
 नाम्ना सागरचण्डसाविन्दुवददत क्रमात् ॥ ४५ ॥  
 भाषे तत्रैव दत्तजस्ति रीतशाफा पुरी वरा ।  
 पंद्राण्यटिता यत्र भिषया भाति क्रांतिभिः ॥ ४६ ॥  
 यत्र नाय समानात्रय भिषा स्वप्रतिरिम्बद्धम् ।  
 सपत्नीभ्रानिता याति विमुग्धा रतद्धमणि ॥ ४७ ॥  
 यत्र प्रीटापभयैर्ग म्मनि नवर्षावना ।  
 श्रीराधे पतिभि गार्द्धे क्वचियापि मनापृष्ट ॥ ४८ ॥

१ अर्थात्सु धारणात् २ अर्थात्सु  
 अर्थात्सु अर्थात्सु अर्थात्सु  
 अर्थात्सु अर्थात्सु अर्थात्सु  
 अर्थात्सु अर्थात्सु अर्थात्सु १-१ ।

४ अर्थात्सु अर्थात्सु अर्थात्सु १-१ ।

अर्थात्सु अर्थात्सु अर्थात्सु  
 अर्थात्सु अर्थात्सु अर्थात्सु  
 अर्थात्सु अर्थात्सु अर्थात्सु  
 अर्थात्सु अर्थात्सु अर्थात्सु १-१ ।

कदाचिच्चसकेसौ वा रमन्त रमणैः सह ।  
 यत्रोपवनवीर्याणु काष्ठस्यः पर्यटति च ॥ ५० ॥  
 तत्रास्ति बसनाश्रयणी महापद्माऽभिधानतः ।  
 यस्य तेजोमयी क्रीर्तिर्विस्तृता वृषनप्रप ॥ ५० ॥  
 निषेर्नां च नवानां स्यादपीश्वः सर्वसंपदाम् ।  
 चतुर्दशमिहानां रत्नानामपिपः स्मृतः ॥ ५१ ॥  
 पद्मस्यैवमुपायाम पतिश्चैकाऽद्वितीयकः ।  
 द्वाविंशत्कसहस्राणां भूपानां संवितक्रम ॥ ५२ ॥  
 पद्मवतिसहस्राणां यापित्वा बल्लभः स्मृतः ।  
 अग्निनीनां समुत्साहे सहस्रांशुरिबोदितः ॥ ५३ ॥  
 तत्र काचिन्महादवी धनमाळा नाम्ना मता ।  
 रत्नकर्मविधौ सासीहिम्यौपपबचक्रिणः ॥ ५४ ॥  
 तद्गर्भेऽप्यवतारासी भवद्बचरी मर ।  
 क्रमाश्चक्रुम दिन स्य पुमानमनि भूतल ॥ ५५ ॥  
 तदा भन्मास्तबस्वस्य कृतां मुदितचक्रिणा ।  
 याचकेभ्यो यथाकामं दत्त स्वर्गादिकं बहु ॥ ५६ ॥  
 तृयाणां निनदैस्तत्र अधिरीकृतदिकृन्मयम् ।  
 गार्ग्यैर्मगलाह्रीतिं नृत्यंति स्म वरस्त्रियैः ॥ ५७ ॥

१ महापद्मस्य पश्य सङ्घो मध्यकण्ठके ।

मुद्रमन्त्रव्यवहारात् पर्याय विषयो क्व ॥

२ केचनतिग्रहणतिपुरोहितेभ्यश्चकृन्मध्यमस्यैवमन्त्रवर्षमभिनविन्वीच्यदं मेति  
 चतुरण्यनयि ।

१ वेत्त

पट्टध्वजाणां वृद्धाश्च गद्यपद्यादिसम्पत्तिम् ।  
 नराः कुमुदसमिभचत्नद्रवचर्चिता ॥ ५८ ॥  
 नय पूजानन घञ्ची निरीक्ष्य मृदमायया ।  
 धानवार्दी यथानद न्बभत्माप्य रसायनम् ॥ ५९ ॥  
 तत्तत्तद्व्यथ सफुन्ना धधुवर्गममाहित ।  
 नाम्ना शिवकुमार न लब्धान्त्रथाभिधानकम् ॥ ६० ॥  
 म्मनभय पय पानैशुद्धिमाप दिन त्तिन ।  
 यथा यान्तद्वर्त्री नून कल्याभिचयतऽनिद्रम् ॥ ६१ ॥  
 श्वनर मातुरकस्य कचलं न तदा भवन् ।  
 क्रितु याचरक्षण इम्नैनालित स्वर्जनरपि ॥ ६२ ॥  
 म्माञ्जातकृपागऽम्बावष्टवपममान्वित ।  
 पगाड वन्त्रशास्त्राणि तदथानुगतानि वै ॥ ६३ ॥  
 नर्षती श्रम्यविद्यायां सगीतऽथापि नाटक ।  
 पूद शारगृणापता भूभागद्वरणक्षयः ॥ ६४ ॥  
 उद्गाहिताऽथ कन्याभि मम तच्छतपत्रभि ।  
 चक्रिणानदयुक्तन परमास्त्रहारिणा ॥ ६५ ॥  
 गजन म्य हूमागऽमौ मम सामतमभिभि ।  
 निर्दिताऽपनक्षत्रहान्तिरि दूरिर्वरुड ॥ ६६ ॥  
 अदाचिर्दीतगार्थाभि रमन् म्य पुजानन ।  
 कवितापनात्न प्रीतिराऽपकिनत्न ॥ ६७ ॥  
 कवितादृषु रयानां भट्टानां च उपानिष्पत्ताम् ।  
 अंतही तद्वराऽपु परस्परविराधिपु ॥ ६८ ॥

कषित्कषित्स्वगाष्ठीषु कषिष्वात्परस्यु च ।  
 कषित्कीडाद्रित्स्वसायां षिक्रीड सह यौषनेः ॥ ६९ ॥  
 वनोपवनशीधीषु सरितां पुलिनषु च ।  
 सरःसु जलक्रीडायै क्वाताभिरगमन्मुदम् ॥ ७० ॥  
 आङ्गिगर्भं क्वा स्त्रीणां क्वाचिद्रवकभषि ।  
 नासां स्मितकृत्यसैश्च रत्नमाना मुहुमुहुः ॥ ७१ ॥  
 क्वाचिन्मानिनीं मुग्धां क्वापनां प्रणयास्मिष्ठाम् ।  
 नयति स्म यथापायमनुनय नयात्मक ॥ ७२ ॥  
 कषिष्वात्प्राप्तय गत्वा जिनषिम्बानपूजयत् ।  
 चारिर्गपादिसामउषा मानशुद्धया च पावन ॥ ७३ ॥  
 कषिर्दमे शृणाति स्म गुरुभ्यः नृन्वकारकम् ।  
 न्त्यं प्रियकुमाराज्जसौ यौषनऽप्यगमन्मुदम् ॥ ७४ ॥  
 मंतरं पुंडरीकिप्यामस्ति सागरषट्द्रमाः ।  
 भाषडेषवरः साज्य भागसागरमध्यम ॥ ७५ ॥  
 अथान्येषुः समायातस्त्रिगुप्तिर्बुनिसधमः ।  
 प्रतिभाति जगत्सप्त यस्य ज्ञानचतुष्टये ॥ ७६ ॥  
 सप्तपौरजनास्तप्त पंडनार्यं वन ययु ।  
 बीक्ष्य मागरषट्द्रापि जगाम मुनिसनिधा ॥ ७७ ॥  
 ततो नामरिष्ठं चर्मं पप्रच्छुर्बिनयान्विताः ।  
 स्वीर्यं सागरषट्द्रस्तु पृच्छति स्म यवांतरम् ॥ ७८ ॥  
 ततोऽथादीं मुनिस्तप्त विमृश्यावधिषष्टुषा ।  
 शृणु वत्स महाभाग वृत्तं पूर्षभषात्त्रयम् ॥ ७९ ॥

जम्बूद्वीपस्य क्षत्रऽस्मिन् भारत भरतान्विते ।  
 दन्तऽत्र मगध रम्ये वधमानाभिध पुर ॥ ८० ॥  
 यूना द्विजपुरां स्याता वदविद्या विदावरौ ।  
 मथमा भावस्वान्या द्वितीया भवद्वक् ॥ ८१ ॥  
 अथकृता स सोधममुनिना मतिघापितः ।  
 भावस्वस्तप त्रीधमग्रहीद्वृष्मीक ॥ ८२ ॥  
 भवद्ववा कधुभ्राता ततस्तिष्ठति सधनि ।  
 म्थ गत क्रियान्कालः स्वाधिकाराप्रमत्त ॥ ८३ ॥  
 धमानुरागत साऽय भावद्ववा मुनिस्तदा ।  
 भ्रातर घाधिषु तत्र ध्याजगाम पुन धर्मी ॥ ८४ ॥  
 तता धर्मोपद्वर्त च नीयमानाऽप्यवकृताम् ।  
 मन्व्याप्रपे च लज्जानान नीं तां जग्राह शुद्धया । ८५ ॥  
 ततः कृतान्द्विता च नि न्न्या यततत्पर ।  
 धभूर मुनिमानिध्याधारिर्धरुनिधि पुन ॥ ८६ ॥  
 क्रमाधिरतरं दान्न पारिर्धं चग्ना यूसाम् ।  
 धन समाधिरण धायत पूणपुष्पत ॥ ८७ ॥  
 तत मनन्कुमाराम्य तृती र विरि त्गयत ।  
 तदापशदन्व्यायां जार्ता पूणधरिर्क ॥ ८८ ॥  
 तप्रम्या दिव्यभागां च मुक्ता निजत्सनीकत ।  
 मनाभिनापतान रम्भान याव मागरमत्तदम् ॥ ८९ ॥

स्वायुर्लत ततश्च्युत्वा चन्द्रदत्तनृपालय ।  
 जातस्त्व भानदेवो य स त्व सागरर्षद्रमा ॥ ९० ॥  
 मषदक्षपरस्वभ्र षष्ठवर्तिमुद्भजनि ।  
 नाम्ना शिवकुमाराऽसावाजस्वी यानुमानिष ॥ ९१ ॥  
 भवर्द्धनपाश्र्णेण प्राप्य स्वीयां मषस्मृतिम् ।  
 रघुसंसारभागपु निरक्त स भविष्यति ॥ ९२ ॥  
 आकर्म्येद्रं कुमारार्ज्वा मुनिवाक्याद्भ्रवात्तम् ।  
 संसारासारतां मत्वा ज्ञाता चर्मपरायण ॥ ९३ ॥  
 भद्रा जगदिदं कृत्स्नं मन्ममृत्युजरास्यदम् ।  
 भ्रम सारः किमस्तीति चिंतयामास सधम ॥ ९४ ॥  
 साराऽस्त्यत्र दयाधर्मो मेना मुक्तिमुत्सपद\* ।  
 स चन्द्रियरूपायार्जां दुर्मत्र दमनहाम ॥ ९५ ॥  
 क्लयः स एव भीषन स्वात्मन\* मुक्तामिच्छता ।  
 इति सागरचन्द्रोऽसौ निष्पिक्कय विदोषर\* ॥ ९६ ॥  
 ततस्त्वस्य मुन पार्श्वे दीर्घां ब्रह्माह क्लविद् ।  
 सार्धे क्लिष्यन् भूपासनि\*स्य सचगन्तुषु ॥ ९७ ॥  
 तत\* समस्तुस्वद्\*स्वाऽर्जो रिपुमित्रसमः जमी ।  
 समः पितृपतेन सौष जीवित मग्ण सम ॥ ९८ ॥  
 बाह्याभ्यंतरतां दूषा तपदर्शान्न चकार सः ।  
 परिपहापसर्गैश्च न षष्ठास समाधित ॥ ९९ ॥

१ दमयन्ते । २ मन्ममृत्युजरास्यदम् इतिपरिच्छेदकनरसः प्रीत्यामिनिच्छतन्नास्यदम्  
 पत्नीया बाह्यं तपः । प्रत्यभिहितनिन्देबाह्यस्यस्यभ्यन्तुसर्गैश्चाप्यनुत्तरम् ।

क्रमात् कुर्बन् विहारं स चारणद्विविराजितः ।  
 समाप्त भुतसपूर्णो वीतशाकां पुरीं वराम् ॥ १०० ॥  
 तत्र मध्याह्नासंज्ञौ कृतर्थापथशुद्धिभाक् ।  
 पारण्यार्थमनौद्धत्या ( त्यं ) विनर्ह्य यथाविधि ॥ १०१ ॥  
 रानसौषसमीपस्य कस्यचिच्छृष्टिना वृह ।  
 नवकाटिविशुद्धः स ग्रास जग्राह शुद्धधी ॥ १०२ ॥  
 मुनिदानस्य माहात्म्याद्रत्नवृष्टिरभूत्तदा ।  
 नभोमार्गास्सुधाराभिर्दाह्य पुष्यवृहांगण ॥ १०३ ॥  
 अथसाक्य जना सर्वे चावतृकाः परस्परम् ।  
 ममन्त्युः किमिदं तूर्णे जातं चिन्मास्पन् महत् ॥ १०४ ॥  
 परस्परविषादादौ तत्र कोलाहलाऽजनि ।  
 ततश्चिबहुमारोऽपि भुतवानिति वृत्तकम् ॥ १०५ ॥  
 आनदात्कौतुकाच्चापि सापस्याऽपि निरीक्ष्य तम् ।  
 मुनीश्च विस्मयं प्राप किञ्चिच्चित्तेऽप्यर्षितयत् ॥ १०६ ॥  
 महा क्वापि मया दृष्टो मुनीशोऽयं भवांतर ।  
 क्वहार्द्रं म मनाऽब्दादि सस्कारास्सूबजन्मनः ॥ १०७ ॥  
 पृच्छाम्यन मुनिं गत्वा संश्रयच्छावैश्रावय ।  
 इति चित्ते चित्तयामास तावज्जाता भवस्मृति ॥ १०८ ॥  
 तथा सर्वे तदाज्ञायि वृत्तं पूनमवास्थितम् ।  
 नूनं मम ज्येष्ठो भ्राता तपस्याऽयं महामुनिः ॥ १०९ ॥  
 अनेनैव तदा धर्मं स्वापिताऽहमनुब्रूवात् ।  
 यन पुष्यादयेनैव माता सौख्यपरंपरा ॥ ११० ॥

श्रुत्वा सनत्कुमारास्थान् महाभागाननतरम् ।  
 प्राप्त चक्रिष्टुह जन्म चास्पृष्टे सर्वसंपदाम् ॥ १११ ॥  
 इहामुत्र मम भ्राता गतिश्चाये कृपापर ।  
 स्मरन् महातर प्राज्ञस्तत्समीपज्यामत्तदा ॥ ११२ ॥  
 महाश्रासपुटं साञ्च हृष्टुं तं मुनिकुञ्जरम् ।  
 मुमुञ्च मुनिपाश्वस्थः प्रमाद्वारगदन्निव ॥ ११३ ॥  
 चक्रपथी तु तप्युत्वा बगत्तत्रागतः क्षणात् ।  
 माहादुष्टि(स्थि)तवाप्यामा विद्वत्साप महीपति ॥ ११४ ॥  
 यदा पुत्र किमवदि त्वयाकारि विरुपक्रम् ।  
 किमत्र कारणं वत्स वद माम्यमभीतिव्रम् ॥ ११५ ॥  
 काचित्कातातिल्वहात्रा कृपमाना ससाञ्चसान् ।  
 भासाञ्ज्वासमहापातं प्रब्रह्मे सता यथा ॥ ११६ ॥  
 काचिन्मुग्धापि प्रमाद्व्या विभीता नयसगम ।  
 साधुपातप्रसाहं च स्पृक्तं शक्ति कबलम् ॥ ११७ ॥  
 काचिन्मध्यातितारुभ्याद्भद्रा कामरसं स्फुम् ।  
 तद्वियागमयाताम च्चलनि स्म स्मरन्तुरा ॥ ११८ ॥  
 काचिसौदा रसना च तत्रासां च मुर्धोपम ।  
 स्मारं स्मारं गुणांस्त्वस्य स्थिता विशापितेव सा ॥ ११९ ॥  
 सर्वे पौरजनाभापि म्याकुर्लाभूतपेतस ।  
 क्षणं यावदसौस्थित्यादभं पानं च नाददुः ॥ १२० ॥  
 एवं तत्र महान् शोका दुःसहाऽननि भूतस ।  
 हन्तो दुष्यपद्रार्थस्य भीतिः केषां न जायत ॥ १२१ ॥



ततो यथाकर्यचिद्वै यन्नैर्नाताऽवधानंताम् ।  
 कुमारः प्रतिशुद्धाऽभूत्सहस्रांशुरिवाहनि ॥ १२२ ॥  
 पृष्टं सर्वैः कुमारोऽसौ कथं मूर्च्छामवक्ष्ये ।  
 कथयाशु यथार्थत्वं श्रमद्वं वाक्यमुत्तमम् ॥ १२३ ॥  
 तताऽवादीद्विमृश्यासौ गुणमाकृतमात्मनः ।  
 सुहृदं मंत्रिपुत्राय नाम्ना हृदवर्म्यभेऽनिशम् ॥ १२४ ॥  
 चितागूढगणार्तानां मिश्रं स्यान्परमौषधम् ।  
 यथा युक्तमयुक्तं वा सर्वे तत्र निवेद्यत ॥ १२५ ॥  
 मिश्राहं भवभागभ्यः सप्रस्ताऽस्मि भवाम्बित ।  
 नानायानिश्रितावर्षेदुःस्वभीमैर्दुरुत्तरात् ॥ १२६ ॥  
 तदाकृत समादाय क्लृप्तमिच्छन्त्ययं तप ।  
 सर्वे अश्रुधरस्याग्रं कथितं हृदयम्मणा ॥ १२७ ॥  
 स्वामिभसौ समासन्नमभ्यजीवा पिशुद्धहृत् ।  
 पिद्यत मन्यमान सन्साम्राज्यं तृणमशित ॥ १२८ ॥  
 सवयाद्य निरक्तात्पा सर्वभागपु निस्पृह ।  
 न चास्य लज्जताऽर्षीश्व मूर्च्छा स्याज्जीवन धन ॥ १२९ ॥  
 अथ स्वात्मस्पर्क्यस्तस्त्वदी विदांबर\* ।  
 सर्वे हेयमुपादय वृत्तिं जनो यवियथा ॥ १३० ॥  
 न कनाप्यन्यथाकर्तुं शक्यत हृदयुद्धिमान ।  
 रागवाक्यमहावार्तरषसांऽप्यल्लनञ्जम् ॥ १३१ ॥  
 साभितं प्राप्तवैराम्यः संस्कारासूर्वजन्यन ।  
 निःशून्य सबजीवपु प्राप्ताजिपूरसद्यम् ॥ १३२ ॥

आकर्म्येद वचध्वनी निष्टुरं वस्रपातवत् ।  
 व्यग्र चतुर्धमस्कार न घकाराचरप्रदम् ॥ १३३ ॥  
 धर्मं वपयुरस्यासीदृदि व्यामाहप्रासिनि ।  
 म्रपद्भुसमाञ्जस्रघण्टुपक्ष्मावली वलात् ॥ १३४ ॥  
 गद्वर्तं च वषा मल्यभनल्यकरुणास्वन ।  
 विन्दस्मप महीपासां हा विग्निपद्मैवचष्टितम् ॥ १३५ ॥  
 अन्यथा चितित कार्ये देवारसपयतेऽन्यथा ।  
 यथा वारिजमव्यस्य पद्पदः करिणा इव ॥ १३६ ॥  
 र्दं( दि )स्यस ससताप चक्रवर्तिन्यनल्यस्रः ।  
 भंत'पुरजैन' सार्धे वनमाना गता तदा ॥ १३७ ॥  
 पुत्र क्नापि दृष्टन पाठितस्त्व स्तर्नपय ।  
 अमगन्मा मतिधेर्यं विद्यते तस्य संप्रति ॥ १३८ ॥  
 धान्यावस्था वच ते वस्तु वच प्रवज्यापद् मद्दत् ।  
 र्दं कार्यमसंभाषि घटते न फदावन ॥ १३९ ॥  
 ततो र्दंस्व महामागान दिव्यानपरदुस्रभान ।  
 भानमस्तवभूपाळसान्नाज्यपदसंस्मितः ॥ १४० ॥  
 इत्यादिकं पितृषाक्यं शृम्भभांगीचकार सः ।  
 कुमार प्रतिषाक्यं च दर्दा कामरूपा गिरा ॥ १४१ ॥  
 तात कमवधान्मूनं वंभ्रम्यत य जंतुभिः ।  
 चतुगतिभवावर्ते स्थितं वनापि न निवस्यम् ॥ १४२ ॥  
 फदाविभारका मूत्या भवति विषया नरा ।  
 तत स्वापु'जये मूत्या स्यादेषीऽव नदन्यद् ॥ १४३ ॥

पुत्रः कोऽपि न कस्यापि पिता वा न मृतस्य वै ।  
 उन्मञ्जति निमञ्जति जीवा जलतरगवत् ॥ १४४ ॥  
 नयं लक्ष्मा पित साध्वी सद्भिर्भुक्त्वाज्जिता यत ।  
 एष्टं त्यक्त्वा भितान्यत्र पण्यदारव चचला ॥ १४५ ॥  
 कर्त्तव्या नात्र बिम्बास क्षण वाऽनवधानत ।  
 उक्ताभिसारिका तुल्या कारण दुःस्वसकट ॥ १४६ ॥  
 भागा भुनगभागाभाः सद्यःप्राणापहारिण ।  
 स्वमन्द्रनाम्बुचात तारुण्य विपयास्पदम् ॥ १४७ ॥  
 इदं प्रत्यक्षता ज्ञान प्रत्यभिज्ञानकारणम् ।  
 स्वात्साध्वी यत्रि राठ्यभी कथ त्यक्ता महर्षिभि ॥ १४८ ॥  
 भूयतेऽथ पुरावृत्त भीमता ज्ञानसाधना ।  
 त्यक्त्वा सर्वांगसाम्राज्यं तपश्चक्रुर्विमुक्तये ॥ १४९ ॥  
 कुरु तात समाधानमलं भाग्यैरभाग्यकैः ।  
 भापातं मधुरै रम्यैर्विपाक कटुकैरिह ॥ १५० ॥  
 सै धर्मो यत्र नाधर्मस्तत्पदं यत्र नापद ।  
 तद्विज्ञानं यत्र नाज्ञानं तत्सुखं यत्र नासुखम् ॥ १५१ ॥  
 भुत्वा पुत्रपञ्चशतीं शब्दसंदर्भगर्भितम् ।  
 निश्चिक्वय तत प्राज्ञः मृतस्यापि मनीषितम् ॥ १५२ ॥

१ पञ्चिका । २ इति' इति । ३ यद्यस्मिन्कचम्पूकाम्ने घातम्परासे श्राद्धेऽथै  
 निम्नस्वैश्वोपकम्पते ।

सधर्मो यत्र कायमत्सुखं यत्र नानुख ।

तद्विज्ञानं यत्र नाज्ञानं वा गणियत्र नयति ॥

नूनं स्वायद्वितायासौ निविष्णा मन्त्रीरुक्कः ।  
 उग्र तपः समादाय गंवात परमा गतिम् ॥ १५३ ॥  
 जानन्नपि महामाहादुवाच धरणीपति ।  
 मूना विधिहि करुष्यं मयि यथान्यध्वरीरिषु ॥ १५४ ॥  
 घातयकनिध साम्य पयासाचय साम्रतम् ।  
 तथा त तपस सिद्धिमम भावत्कदर्शनम् ॥ १५५ ॥  
 तव संप्रस्थिता भूत्वा कुरु पुत्र ययप्सितम् ।  
 उग्रं तपायतादीनि यथाशक्ति समाचर ॥ १५६ ॥  
 रागद्वेषा न विधेत यथात्मज मनन किम् ॥  
 स्यातां श्रेयसं सङ्गम्याचत्राननं नन किम् ॥ १५७ ॥  
 इत्यादिर्कं पिबुर्वाक्यं भत्वासौ करुणास्यदः ।  
 क्षणं वाचयमी तस्यां निस्तरगसमुद्रवत् ॥ १५८ ॥  
 तता मृदुगिरांवाच कुमारः करुणाश्रित ।  
 एवमस्तु करिष्यंश्च यथा तात मनीषितम् ॥ १५९ ॥  
 कुमारस्त्वहिनान्नुनं सबसंगपराङ्मुख ।  
 ब्रह्मचार्यकनस्त्राऽपि मूनिवचिष्टव गृह ॥ १६० ॥  
 अस्मामी कामिनां मध्य स्थितौ वारिजपवनम् ।  
 अहा ज्ञानस्य माहात्म्यं दुर्लभ्यं महतामपि ॥ १६१ ॥  
 कचिदकांतरं शुकैः दूषन्तंग्रज्य कदाचन ।  
 पथान्तरज्य मासान्तं स्पृष्टं सजसमावनम् ॥ १६२ ॥  
 प्रागृष्टं श्रुदमाहारं कृतकरितवर्जितम् ।  
 आग्रहं विधयानीतं मिश्रेण हृदयमणा ॥ १६३ ॥

तत्र तीव्रतपावर्द्धो दक्षमानं विश्वाक्य वै ।  
 मारुकाधादया नष्टा प्रादुरासन्न त पुन ॥ १६४ ॥  
 एषं वपंचतुःपष्टिसहस्राणि तपस्यता ।  
 नीतानि पापभीतन कुमारण महात्मना ॥ १६५ ॥  
 स्वायुंरंते तथा जाता ययामाता महाभुनि ।  
 त्यक्त्वा चतुर्विधाहार प्रांस्पृष्टिर्घां जितन्द्रिय ॥ १६६ ॥  
 ततस्तपःफलान्मूनमणिमान्निगुणान्वित ।  
 ब्रह्माक्षर सुरन्द्राऽभूद्विद्युन्माली तटाभ्यया ॥ १६७ ॥  
 आयुःप्रमाणमस्यासीद्विश्वसागरसंख्यकम् ।  
 महादंभ्याऽपि विषन्त घतस्र प्राणवल्लभा ॥ १६८ ॥  
 सोऽयं प्रत्यक्षतो राजन राजत दिवि दधराद् ।  
 नास्य क्वांतिरभूत्सुखेऽसम्यन्त्वस्यातिश्रयित ॥ १६९ ॥  
 अथ सागरचन्द्राद्वा यो मुनिव्रततत्पर ।  
 सन्यासन वपुस्त्यक्त्वा प्रतीन्द्रस्तत्र साऽभवत् ॥ १७० ॥  
 सोऽपि नानाविध सौगम्यं हृक्तं पञ्चाक्षसमभम् ।  
 मनोमिच्छपित रम्यं निर्धिघ्नं च यथाप्सितम् ॥ १७१ ॥  
 धमालुस्व कुसुं श्रीसं धर्मास्तना हि सपद् ।  
 इति मत्वा सदा सम्या धमभूध्र प्रयत्नत ॥ १७२ ॥

इतिर्धा जन्तुस्वामीधरिश्च मगनभूदापधिर्मर्त्यकृत्पद्दानुसरित

स्याद्दानवधमगधविशारपणित्तपमस्त्रनिरचित

साधुपासासनयधीसाधुनीरसमम्यविते

भास्करदेवभयदेवब्रह्माक्षरस्वर्गगमनवर्णना

नाम चतुर्थ सर्ग ।

## अथ पञ्चम सर्ग

कुरुन्तु मगलं नित्यं चतुर्विंशतिनापिपाः ।

श्रीसाधुद्वयहरस्यास्य साधुपासात्मजस्य वै ॥ १ ॥

इत्याशीषात् ।

मपार्श्वं पार्श्वराशिष्णुं चन्द्रं विघ्नाघञ्चान्तप ।

चन्द्रप्रथमं नौमि चन्द्रराशिर्धृश्वचयम् ॥ १ ॥

भवातः भणिकीं नम्र पृच्छति स्म गणाधिपम् ।

मा ऋष्यशतस्यऽपि कुत पुण्यादिहागताः ॥ २ ॥

आसां भवांतराणीश्व चद संभयविच्छिन्द्रे ।

तवापाय गणधाना विनयग्राह्या हि यागिन ॥ ३ ॥

शृणु भणिके देवऽस्मिन्नगरी स्यार्षपापुरी ।

तथाय मूरसनाऽस्ति श्रीमतामग्रता हरः ॥ ४ ॥

तस्य भार्याश्वतसः स्युस्तासां नामान्यथ शृणु ।

जयभद्रा सुभद्रा च चारिणी च यश्चामती ॥ ५ ॥

भाभिर्भोगान् भुनक्ति स्म चिर यावच्छुभोदयः ।

पुनश्चात्कीरितः पापस्तीव्रसंकुञ्चसमय ॥ ६ ॥

ततः पापादयादव स्यादाययमर्षं चपु ।

युगपत्सपरागाणां सन्निपातमिवापवत् ॥ ७ ॥

कासः श्वासः क्षयदर्षव मलाहरभर्गदरो ।

संभिमन्त्री महावायुरसद्यस्तस्य चापवत् ॥ ८ ॥

## अथ पञ्चमः सर्गः

कृषन्तु मगम निरयं चतुर्षिञ्जिना  
श्रीसाधुद्वयस्यास्य साधुपासात्म

मुपार्थे पाञ्चराशिर्षु बंद विघ्नाय  
चन्द्रमयमर्ह नमि चन्द्रराचिर्षुशेष  
अयात् भणिष्ठा नम्रः पृष्ठति स्म  
मा देव्यधतस्त्रापि कुत पुष्यादि  
भासां भवोतराणीञ्च यद् संप्रपिबि  
ततोपाय गणध्राना विनयग्राह्या हि  
शृणु भणिकु देवैर्जस्मिन्नगरी स्यात्स्व  
तत्रायः मूरसनाऽस्ति भीमतामग्रतो  
नम्य मायाश्चतस्रः स्युस्तासां नामा  
जयमद्रा सुमद्रा च पारिणी च यन्नाम  
भाभिर्मोगान् नूनक्ति स्म चिरं यावच्छुः  
पुनश्चातीरितं पापस्तीव्रसंज्ञसंसमब ॥  
ततः पापाद्याद्व स्यात्तामयमर्षं ययु ।  
युगपन्सबरागाणां सन्निपातमिबामयत् ॥  
फयसः आसः सयदर्षप जलाद्वरमर्गरी ।  
मैषियत्री महापापूरसद्यस्तस्य चामयत् ॥ ८ ॥

ययहृष्टभृतं नाथ ज्ञान विज्ञानमफक्ष ।  
 तच्छिक्षितं क्षणादथ ज्ञातपूर्वमिनामुना ॥ ३१ ॥  
 भयभ्राह्मादिविधासु दुष्कर नास्य किंचन ।  
 हृष्टभृतानुभूतत्वाभ्यास कुर्वताऽनिघ्नम् ॥ ३२ ॥  
 भन्यपुश्चिन्तयामास दुर्देवापुष्टपुष्टिमान ।  
 शिक्षितं न मया शौचमक सर्वगुणाम्पन्म् ॥ ३३ ॥  
 निपायति स्वचित्तज्ज्ञौ राशौ गत्वा पितृगृहे ।  
 वने शूनं प्रविश्याथु तत्र तस्करवत्क्रिय ॥ ३४ ॥  
 तत्रन्वादाय रत्नानि महाधानि मनीषया ।  
 गच्छन् हृष्टं स कनापि रत्नादद्यात्तरनल्पक ॥ ३५ ॥  
 ज्ञातस्तनं ह तत्सर्वं भूपस्याग्र निवडितम् ।  
 धृत्वा भूपस्ततोऽन्वात्रीदृग्गान्गनीयतां स हि ॥ ३६ ॥  
 इत्याफण्य स्वपापन्निरानीताऽपि निजाख्यान ।  
 पयवान् बीरकमासा समुत्सवं स्थितवानित ॥ ३७ ॥  
 नीता बाधयितुं राज्ञा साहजं सौम्यया गिरा ।  
 पूष शौर्यमिदं निर्घं कृत कस्य कृत स्वया ॥ ३८ ॥  
 भागान् भावनु मकामाऽसि यन्ति स्व मम का क्षतिः ।  
 यथाप्यितान् भागान् श्वेस्व यापिद्गुणफत्रनाडिबान(कत्रंभर्तः) ३९ ।  
 यत्किञ्चिदुत्सवं त्याज्यं तन्मुत्सवं मयालय ।  
 यत्किञ्चिन्नाचनं सुभ्य तत्रहाण समक्षत ॥ ४० ॥  
 इदं शौर्यं महानिघमिहासुत्रं च दृ स्वम् ।  
 मा कुर्वन् महापात्र सपसंतापहारणम् ॥ ४१ ॥



चतन्नाऽपि ततस्तूर्णं निषिञ्जा भवमीतितः ।  
 भार्यिकाप्रतमादाय निययुः सद्यश्चननात् ॥ २० ॥  
 यथागमं तपस्तीव्रं संतपुस्ताः शुभाश्रया ।  
 मन्यास मरणं कृत्वा देव्या ब्रह्मात्तरऽमपन ॥ २१ ॥  
 विष्णुन्मासिमुरम्यास्य समावास्ता इमा नृप ।  
 भार्या प्राणसमा रम्या नानासौख्याभिषमप्यगाः ॥ २२ ॥  
 भृत्वा प्रमक्यामर्ना भणिका मुदमाडषौ ।  
 मना व्यापारयामास पुनः प्रदु समीहितम् ॥ २३ ॥  
 म्यामिष्य स्वया प्राक्तं विष्णुन्मासिमुरस्य यत् ।  
 विसम विष्णुचरणसौ तपस्तीव्रं ग्रहीष्यति ॥ २४ ॥  
 काऽस्मि विष्णुचरो नाम्ना कुप्रम्या किंकुर्ला महान् ।  
 कर्म चौरत्वमापन्ना मविष्यति कथं मुनि ॥ २५ ॥  
 एतद्दृष्टं कृपां कृत्वा इति मद्भरिर्ना वर ।  
 मस्यास भ्रातुमिच्छामि त्वत्ता धर्मफलाप्तये ॥ २६ ॥  
 तनाऽप्राणीञ्चिनेश्राना कृपाचारिपयानिधिः ।  
 शृणु भणिक प्रमम्य माहात्म्य परमाद्भुतम् ॥ २७ ॥  
 अयात्र मगध द्ध विषत नगरं महन् ।  
 इमिनागपुर नाम्ना म्भर्ककपुरापमम् ॥ २८ ॥  
 तत्राम्नि मभरं नाम्ना मूया शर्देदर्महितं ।  
 तम्य मायाम्नि धीपणा कामयष्टिः प्रियंषदा ॥ २९ ॥  
 नयाः म्भुरश्रुत्वा नाम्ना विद्वान् विष्णुचरो नृप ।  
 प्रिसिताः मकल्या रिषा बर्तमानकुमारतः ॥ ३० ॥

यथदृष्टमुतं नाय वान विज्ञानमेकत्र ।  
 वच्छित्तित सणादन ज्ञातपूर्वमिषामुना ॥ ३१ ॥  
 वल्लभास्त्रादिविद्यासु दुष्कर नास्य किंचन ।  
 दृष्टभुक्तानुभूतत्वात्भ्यासं कुर्वताऽनिशम् ॥ ३२ ॥  
 मन्यंशुश्चित्तयामास दुर्देवाद्दुष्टमुद्दिमान् ।  
 श्लिषित न मया चौयमक सर्वगुणास्पदम् ॥ ३३ ॥  
 निधायति स्वचित्तऽसौ गत्रौ गत्वा पितुर्युद्ध ।  
 मनैः शनं प्रविष्ट्याथु तत्र तस्करवत्क्रिय ॥ ३४ ॥  
 तन्घादाय रत्नानि महाघानि मनीषया ।  
 गच्छन् दष्टं स कृनापि रत्नाघातंरनल्पक ॥ ३५ ॥  
 मातस्तनह सस्सर्षे भूपस्याग्र निवद्रितम् ।  
 भुस्या भूपस्ततोऽपार्तीद्गतादानीयतां स हि ॥ ३६ ॥  
 त्पाकृष्य स्वपाषण्डिरानीताऽपि निजावयान् ।  
 पर्यवान् धीरकमासां स मुसं स्थितवानित ॥ ३७ ॥  
 नीता धायवितु गङ्गा सार्ज्वर साम्यया गिरा ।  
 पूत्र चौर्यमिदं निघं कृत फस्य कृत् स्वया ॥ ३८ ॥  
 भोगान् भाक्नुं सकामाऽसि यत् स्व मम का भति ।  
 यथाप्यितान भोगान् भुञ्ज यापिद्दृष्टन्तान्निवान(कदम्ब) ३९ ।  
 यत्किंचिद्दुलभं त्याक तत्मुलम ममालय ।  
 यत्किंचिद्राघत मुभ्यं तत्रहाण समक्षत ॥ ४० ॥  
 इत् चौर्यं महानिघमिहामुप्र च दुःस्वम् ।  
 पा कुरुष्व महापात्र सर्वसंतापहारणम् ॥ ४१ ॥

श्रुत्यापीठं बचस्तर्ध्वं नासावुपशम ययौ ।  
 अर्करात्रि यया पथ्य सम्भराय न राचते ॥ ४२ ॥  
 ततः प्रत्युधरं वाक्यं दठौ चौर्यरतं श्रुतः ।  
 अहा चौर्यस्य राजस्य भेदः (ऽस्त्यत्र महानिति ॥ ४३ ॥  
 राजस्यस्य प्रमिता लक्ष्मीः चौर्यस्याप्रमिता च सा ।  
 मुस्यता न तयौरासीघता प्राणा गुणस्त्वयं ॥ ४४ ॥  
 अंनधीय पितुः मूर्तिं कृत्याकृत्यासमीक्षकः ।  
 अगात्यराक्षसुसौ दुष्टा नाम्ना रामसृष्टं पुरम् ॥ ४५ ॥  
 सत्रास्ति सस्मरस्मरा वदया क्रमसताम्भया ।  
 आसक्ताऽसौ तथा सार्धं भोगान् भुक्तं मनीषितान् ॥ ४६ ॥  
 चौर्येणार्जितं द्रव्यमनायासात्तदनिश्चम् ।  
 यथाकार्म स वदयायै ददाति स्म म्मरातुर ॥ ४७ ॥  
 इति मद्भनात्तरं प्राप्य निगतं भगवन्मुन्वात् ।  
 तृतोप श्रेणिको यूया यूयः मद्भनाघताऽभवत् ॥ ४८ ॥  
 यगबन् यस्वया मात्तं विष्टुन्वास्तिक्रयानकम् ।  
 सप्तमं वामरं स्वगादयमप्यति पतस ॥ ४९ ॥  
 कस्य पुष्यवतः सद्य जन्मना भूपयिष्यति ।  
 पृष्टः कुर्वन् समाधानं जगात् जगतापतिः ॥ ५० ॥  
 अत्र रामसृष्टं राजनं राजतै श्रीसमान्वितः ।  
 अहंदासाभिषे भृष्टी र्जनर्षमकृतत्परः ॥ ५१ ॥  
 तस्य मार्या मृक्याया नाम्ना मिनमतो स्मृता ।  
 धर्ममूर्तिमहासाञ्ची सद्विषयं मुस्तावहा ॥ ५२ ॥

तस्या गर्भे महापूते पुष्पादभवतरिष्यति ।  
 सम्यग्दर्शनपूतात्मा मुक्तिमर्ता भविष्यति ॥ ५३ ॥  
 अथ कश्चिन्महायज्ञो ननर्तानदानिर्मरः ।  
 भिनबाक्यमुभापूरैः परिप्लावितसत्तनु ॥ ५४ ॥  
 अथ नाथ अथ स्वामिन् अथ केवललोचन ।  
 त्वत्पसादात्कृतार्योऽस्मि प्राप्तं पुण्यफल मया ॥ ५५ ॥  
 पन्यपेतकुलं इलाष्य यत्रोत्पत्स्यति कवली ।  
 मानुमानिब भात्यस्मिन् केवलज्ञानमानुभि ॥ ५६ ॥  
 स एव पावना दंशस्तद्व नगरं शुभम् ।  
 सत्कुलं सद्गृहं पूतं यत्र धर्मपरंपरा ॥ ५७ ॥  
 नर्तयिस्थाय यज्ञाऽसौ स्वासने स्थितवान् मुदा ।  
 भेगिक्तः पृच्छति स्मैतत्किमिदं दृष्टि भा विमा ॥ ५८ ॥  
 ध्यानहार गणाधीशा रामानं भेगिक्तं प्रति ।  
 नगरऽत्रैव भो राजभासीदृणिकमुता वर ॥ ५९ ॥  
 पनदत्ता नाम्ना सौम्या सद्म्या धीयनत्रापम ।  
 तस्य भाया समारण्याता नाम्ना गौत्रमती शुभा ॥ ६० ॥  
 सहायास्या(दत्त)सौम्यस्य केवलं भयसाऽपि च ।  
 उपष्ट पुमस्तयोरासीदर्शसाऽतिषुष्टिमान् ॥ ६१ ॥  
 सत् स्यात्सपीमांश्च जिनदास इतीरित ।  
 ... .. ॥ ६२ ॥  
 तयामध्यं कनिष्ठं या जिनदासः समाम्यया ।  
 दुर्द्वेषयागता नून स्यात्सर्वप्यसनातुरः ॥ ६३ ॥

पसंमति पिबन्मद्यं सर्वतं गायिकां कुर्षीः ।  
 घृतं श्रीदति पापात्मा निषकर्म कराति च ॥ ६४ ॥  
 कृपाशौर्यादिकं सबमिहामुष च दुःस्वदम् ।  
 किमत्र बहुनाक्तेन स स्यात्सपक्रियामयः ॥ ६५ ॥  
 महो प्रसिद्धिसोकेऽस्मिन् घृतादर्पमुतात्रय ।  
 एकस्माद्द्वेषसनाभष्टाः प्राप्ता दुःस्वपरंपराम् ॥ ६६ ॥  
 अयं सर्वैः समग्रैस्तु व्यसनैर्लोभमानस ।  
 अथ नो वा परन्वश्च ध्रुवं दुःस्वे पतिष्यति ॥ ६७ ॥  
 एवं पौरुषनाः सर्वे भानन्तीह परस्परम् ।  
 दुर्बचनं बर्दति हास्तस्य क्षिप्तादिहते ॥ ६८ ॥  
 अयान्यद्युर्दिने तन श्रीदता घृतममसा ।  
 हारितं कर्षण तावथापभास्ति स्वसद्यनि ॥ ६९ ॥  
 ततस्तेन गृहीतोऽसौ घृतकारेण क्षुण्णा ।  
 त्वरितं दंदि मे द्रव्यं यस्वयाद्य पराजितम् ॥ ७० ॥  
 तताऽसौ निन्दुरासापैराकुम्भाऽघृत्यरामितः ।  
 पावयमुत्तरमात्र स चक्रवानसमंजसम् ॥ ७१ ॥  
 इहाद्य कर्षणं न स्यात्माणान्तेऽपि च सबमा ।  
 बपवन्पादिकं समयनिष्टं कुरु सबन्धः ॥ ७२ ॥  
 शृण्वन्मृजिनदासनाक्तं सभियं कुपिताऽमघत् ।  
 गृह्णामीह महस्वर्णं प्राणानय ते तत्कृत ॥ ७३ ॥

१ नर्म । २ घृतं श्रीदति इति घृतपारः । ३ हारितं । ४ अन्तर्मीक्षितं ।  
 ५ तदथ । स्वर्णवन्निर्घर्षं ।

नान्या गतिर्भविषीह जानीहि त्व सुनिश्चितम् ।  
 परस्पर विवादादौ जात कालाहला महान् ॥ ७४ ॥  
 दुष्टेन तन रुष्टेन क्षत्रियेण प्रकोपतः ।  
 तस्य पापोदयाश्चैव जिनदासोऽसिना इतः ॥ ७५ ॥  
 मूर्च्छितं च समालोक्य सापरापात्वहायितम् ।  
 ततः पौरजना सर्वे द्रष्टुं वप्रागता क्षणात् ॥ ७६ ॥  
 अर्हदासोऽपि तत्रैत्य द्रष्टुं तं भ्रातर निजम् ।  
 क्षणाद्वाकुलविष्टाऽपि निन्द्य यत्नात्स्वसद्यनि ॥ ७७ ॥  
 जानीवः क्षत्रवैद्योऽपि तच्छिकित्सादिइतव ।  
 तथापि न समाधान भवेदस्य दुःखत्मन ॥ ७८ ॥  
 उदिते दुष्टकर्मारो मतीरारा वृथान्विलः ।  
 निसगतः स्वप्ने पुंसि कृताप्युपकृतियथा ॥ ७९ ॥  
 त प्रतिपाद्यमाने तु धर्मभाक्पदति यदन् ।  
 अर्हदासश्च तत्प्रीत्या जैनमूषमधीषदत् ॥ ८० ॥  
 भ्रातृभास्मिन् भवान्ते जीवो मिथ्यामति श्रुतः ।  
 बंधमीति महादुःखं परानर्तरेनतश्च ॥ ८१ ॥  
 मिथ्यात्वं विपया यागाः कपाया वन्द्येवच ।  
 तत्र एतादृक् कम खोक्त्वैऽपि गर्हितम् ॥ ८२ ॥  
 शृवादिष्यसनार्थानां धून स्याद्व्यवधानम् ।  
 इदामुत्र महातीय कर्मासात् समाभयेत् ॥ ८३ ॥  
 तन्वयाप्यसतो भ्रातृ मातृ एतदसं महत् ।  
 नूनं विद्धि परेषापि तीयदुःखं करिष्यति ॥ ८४ ॥

अर्हसासापदेर्षं हि भुत्वाभूत्तवभीरुः ।  
 रूढं चर्मपीयूषं जिनदासा गदाधुर ॥ ८५ ॥  
 अर्हसासं समुद्दिश्य जिनदासनार्कं वच ।  
 मृतं यदनिष्टं कम तत्सर्वं मामकात् कृतम् ॥ ८६ ॥  
 गतोऽयं यं पृथा कात्या यत्रस्य व्यसनार्णवे ।  
 अप मां कृपया भ्रात सापराधं समुदर ॥ ८७ ॥  
 इह जन्मनि वधुस्त्वं यथा सद्वितकारकः ।  
 परत्वाकऽपि धर्मात्मन् सहायो भव तद्यथा ॥ ८८ ॥  
 अर्हसासाऽप्यद् भुत्वा तद्वचं करुणास्फुटम् ।  
 सापनं चर्मकार्यस्य धर्तिं पत्ते स्म शुद्धपीः ॥ ८९ ॥  
 भणुमत्वानि तस्यातौ प्राहितानि मनीषिणा ।  
 संन्यासनं तता मृत्वा यतोऽभूत्सुष्यपाकृतः ॥ ९० ॥  
 नर्क्षति स्म तदश्वासो निद्रेम्यास्मद्दृष्टो मृप ।  
 मर्त्यकवसिनो जन्म मद्दंष्ट्रं तन्नविष्यति ॥ ९१ ॥  
 अर्हसासस्यै पुत्रा निःसंदेहं भविष्यति ।  
 विष्णुनामिचरः सोऽयं जम्बूनामाऽस्यकेवली ॥ ९२ ॥  
 तदश्वापि परं भूपं जम्बूस्वामिक्रयानकम् ।  
 कथयिष्यति बुद्धीन्द्राः सत्युष्याजनहृत्तव ॥ ९३ ॥  
 भुत्वा भीमगणदावर्यं मुदितं भणिक्रं नृप ।  
 पमञ्छामीप्सितं सर्वं यद्व्योक्तस्मिन् चराचरम् ॥ ९४ ॥  
 स्वाकुर्यं गंतुकामोऽसौ प्रारब्धं स्तवनं ततः ।  
 गणपदादिसद्वाच्यैर्जगावहतुणानपि ॥ ९५ ॥

जय देव महादेश केषलज्ञानलोचन ।  
 कृपानारिनिषे नद सर्वभूतहितंकर ॥ ९६ ॥  
 जय देवाभिदय स्वं घातिकर्मविनाशकृत् ।  
 माहमष्टोपमल्लस्त्व धर्मतीर्थमवर्तकः ॥ ९७ ॥  
 यथा स्वं शरण स्वामिभस्ति भिन्नगतामपि ।  
 तथा मे शरणं भूयाथावत्स्यां त्वत्समां विभा ॥ ९८ ॥  
 इति म्बुत्वा भगामासौ भ्रेणिका नगरं प्रति ।  
 कुर्वन् मिनोदितं भर्मे कर्ममर्मनिर्घर्षणम् ॥ ९९ ॥  
 राश्य कुर्वति भूपासे स्थिते कासाऽगमत्क्रियान् ।  
 अर्हसासामिषः भ्रेणी राश्यकार्यपुरंधर\* ॥ १०० ॥  
 भार्या मिनमती तस्य सातेष शीलशास्त्रिणी ।  
 पर नालंकृता रूपैर्गुणैरपि विश्रुतिता ॥ १०१ ॥  
 तौ दंपती मियः स्यातां ज्ञेहार्द्रां सुखसस्थितौ ।  
 मागाग्निमध्यगौ चापि जैनधर्मपरायणौ ॥ १०२ ॥  
 अयान्येषु\* सुखं सुप्ता सार्हसासस्य मामिनी ।  
 निश्वायाः पश्चिमे भागे संददर्श स्वमानसीम् ॥ १०३ ॥  
 पश्यति स्म शुभं पूर्वं नम्पुफलफदम्बकम् ।  
 अमरासीसमासीदं संज्ञोभि नपनमियम् ॥ १०४ ॥  
 निर्धूमां अस्त्रनग्नासां शास्त्रिप्रं च श्राद्धम् ।  
 सारविंदं सरा पश्यन् सपस च पयानिषिम् ॥ १०५ ॥  
 यथाद्रासीभिषि स्वमाभाता भर्मे न्यवेदयत् ।  
 आकर्ष्य श्रीमतीमाक्तमर्हसाऽभिनंदत् ॥ १०६ ॥





आपाद्दुस्तनगंडेषु क्षयिष्यान्मृदुमापिणी ॥  
 तथापि शुशुभस्त्ययं रत्नगर्भावनियथा ॥ ११८ ॥  
 भिन्नमी भंगमायाता तस्या गर्भे स्थित शिष्टौ ।  
 घरमांगिनि सधापावर्जितायास्तदादर ॥ ११९ ॥  
 अयास्या दाहदा जातः शुभ सर्वोऽपि श्रमदः ।  
 दबशास्त्रगुरुणां हि पूजायां प्रीतिरुत्तमा ॥ १२० ॥  
 निनबिम्बप्रतिष्ठायां निष्ठायां पुण्यकर्मण ।  
 जीर्णघैस्पालयोद्धार दानं चैव चतुर्विधे ॥ १२१ ॥  
 तं सर्वं पूरयामास श्रेष्ठी मृदितमानसः ।  
 कृतात्साह स सक्ष्मीचान् स्पृहास्तुः पुमन्वन ॥ १२२ ॥  
 नभमामानतिप्रम्य सुखं सा सुपुत्रे सुतम् ।  
 तंभस्त्रिनं महापूतं यथा प्राचीं सपारिपुम् ॥ १२३ ॥  
 उत्तम फाल्गुन मास सितपक्ष शुभ दिन ।  
 गहिणीसंस्थिते चन्द्रे तथापसि विनिमये ॥ १२४ ॥  
 मन्मांस्सष कुतस्तन धेष्ठिनानंदनाम्बिना ।  
 वःपुर्वगरनपथ तथा पौरननः सह ॥ १२५ ॥  
 नदुर्दुमयः स्वर्गे पुष्पघाष्टिरभूत्तया ।  
 यपुषाता सुर्माताप सुर्गपा पुष्परणुभि ॥ १२६ ॥  
 सबभापि चतुर्दिक्षु मयभागमहाध्वनिः ।  
 भूयत परमानन्दकारणं करणीमय ॥ १२७ ॥  
 जगुर्गीतं सुर्गातया फामिन्या मन्निनधुष ।  
 ह्याभूत्तय मनुष्यि वृद्धमारुणसायका ॥ १२८ ॥

दुहृत्सैर्मणिमाणिर्ष्यैर्यच्छुभं गुहागणम् ।  
 तस्केन वार्जितुं शक्यं कभिनापि महीजसा ॥ १२९ ॥  
 दानं प्रयच्छतस्तस्य भेष्टिना न घनस्य ।  
 दरिद्रो न च सस्म्यां तत्परं पात्रे ददित्वा ॥ १३० ॥  
 इति कस्याणयासाभिर्सासित सत्कृतः शुभः ।  
 जम्बूस्वामीति नात्रापि स्यात्तं पित्रा सप्तधुना ॥ १३१ ॥  
 पाश्व्यो नियोजितास्तस्य भेष्टिना वृद्धिद्वेष ।  
 यत्नैः मष्टने चास्य संस्कारे कीदृशजपि च ॥ १३२ ॥  
 ततोऽसौ स्मितपातन्वन्तस्सपञ्चन् मणिभूमिषु ।  
 पिप्रोमुर्दं ततानापै यस्याद्भुताभिर्बधितः ॥ १३३ ॥  
 जगद्दानंदि नेत्राणाद्युत्सवं पद्ममूर्धितम् ।  
 कसौग्ग्वसं तदस्यासौष्ठवैश्वं शशिनो यथा ॥ १३४ ॥  
 मृगधस्मितमभूदस्य मुखेन्वी चंद्रिकासम् ।  
 तेन पिप्रोर्मनस्वीपमसाभिर्बधितेतराम् ॥ १३५ ॥  
 पीठबन्धः सरस्वत्या सस्म्या इसितविभ्रम ।  
 कीर्तिवस्त्र्या विक्रसोऽस्य मुखं मृगधास्मयोऽभयत् ॥ १३६ ॥  
 स्वसत्पद्ं शनैरिन्द्रनीलभूमिषु सघरन् ।  
 स रजे वसुधां रक्तैरग्नेरुपहरन्निभ ॥ १३७ ॥  
 रत्नपाशुषु पिच्छीद स प्रयानिकरं समम् ।  
 पिप्रोर्मनसि सतोपमातन्वन् सल्लिताकृतिः ॥ १३८ ॥  
 प्रजानां दपदानन्दं गुणैराद्यानिभिर्निजैः ।  
 कीर्तिव्यारस्तापरीतांग स बर्मा वासचंद्रमाः ॥ १३९ ॥

वासावस्यामतीतस्य तस्यामृदुचिर वयः ।

कौमार देवनाथानामभितस्य महोजस ॥ १४० ॥

वपु कांत मिया बाणी मधुरं तस्य शीलितम् ।

जगतः प्रीतिमातनुः सस्मिर्त च मजल्पितम् ॥ १४१ ॥

कलाश्च सफलास्तस्य वृद्धौ वृद्धिसुपाययुः ।

इंदारिष जगन्धतो नंदनस्य जगत्पतः ॥ १४२ ॥

विश्वविश्वरस्यास्य विद्या परिणता स्वयम् ।

ननु जन्मान्तराम्यासः स्मृतिं पुष्पाति पुष्कलाम् ॥ १४३ ॥

कलामु कौञ्जलं श्लाघ्य विश्वविद्यामु पाटवम् ।

क्रियामु कमठस्रं च स मर्जे शिलया पिना ॥ १४४ ॥

वाक्स्मयं सफलं तस्य प्रत्यस वा प्रमारभूत् ।

येन विश्वस्य लीकस्य भावस्पत्याद्भृद्गुरुः ॥ १४५ ॥

यया ययास्य बर्षित गुणांशा वपुषा समम् ।

तथा तथास्य ज(य)तती वधुता आगमन्मुडम् ॥ १४६ ॥

परमायुरभास्याभूश्चरमं विन्नता वपुः ।

आरोम्यं तत्र सांभान्य सांदर्यं च विन्नपतः ॥ १४७ ॥

कदाचिद्धिपितस्मानं गधनादिक्रमागमम् ।

अभ्यस्तपूर्वमभ्यस्य स्वयमभ्यासयन् परान् ॥ १४८ ॥

उद्गाधिचित्यलंकारप्रस्तारादिविषयनै ।

कदाचिन्नानयन गाष्टीं चिमार्यश्च कलागमं ॥ १४९ ॥

कदाचित्त्वद्गाष्टीमिः काभ्यगाष्टीधिरन्यदा ।

वावर्कः सम कश्चिज्जस्यगाष्टीधिरन्यदा ॥ १५० ॥

कर्हिचिर्ज्ञातगोष्ठाभिन्वृत्पगोष्ठीभिरकदा ।  
 कदाचिद्वापगोष्ठीभिर्षीणागोष्ठीभिरन्यथा ॥ १५१ ॥  
 कर्हिचिद्धर्स्वरूपेण नटती नत्षेटकान् ।  
 नाटयन् करतारुन सयमागानुयायिनः ॥ १५२ ॥  
 कदाचिद्वृद्धकुन्तेन्दुमन्दाकिन्त्याश्रयामयम् ।  
 गंधर्वैश्च समुत्थितं स्वं समाकर्णयन् यज्ञः ॥ १५३ ॥  
 कदाचिद्दीपिकांसासु सर्पं वयःकुमारकैः ।  
 जलश्रीवादिनोर्देन रममाणं ससंपन्नम् ॥ १५४ ॥  
 सारथं जलमासाद्य सारथं जलकृजितैः ।  
 तारथैर्यत्रकैः क्रीडन् जलास्फासकृतारथैः ॥ १५५ ॥  
 कदाचिर्भद्रनस्पदितरुश्रामाशितं वन ।  
 वनक्रीडां समातन्वन् वयस्यैरन्वितं मिश्रुः ॥ १५६ ॥  
 इति क्वासाचितान् क्रीडां विनीदांश्च स निर्विघ्नम् ।  
 सुखं स्यादप्यर्षीयो जम्बूस्वामी कुमारकः ॥ १५७ ॥  
 इति सुवनपत्नीनामर्षनीयाऽप्रियगम्यं  
 सकृन्पुण्यमणीनामाकरः पूर्णमूर्तिः  
 सह नृपतिङ्कुमारैर्निर्विघ्नकामयागा-  
 नरमतं चिरमस्मिन्पुण्यगद्दे स ऋषः ॥ १५८ ॥  
 तारासीतरसां दधन् मुग्धिरां बलस्यसासंगिनीम्  
 मरुत्या दासनबह्वरीमिषं वती तां हारयति पृथु ।  
 ज्योत्स्नामन्यमयांशुकं परिद्रवत्कांचीकसापान्वितम्  
 रंजिष्मौ नृपशरकरुसर्पैः क्रीडन् ययन्दुः मिश्रुः ॥ १५९ ॥

यस्मात्पुण्यविपाकतो दिवि सुरा भुंजन्ति सौम्य परं  
यस्माच्चात्र महीतले नरवरास्वीर्यकराइचक्रिणः ।

जायन्त बलमद्रकञ्चबमुखास्तद्वैरिणा विष्णव  
सेन्यो धर्ममहातरु सुकृतिभियन्नास्किमन्यैः परै ॥ १६० ॥

इति श्री जम्बूस्वामिचरित्रे मगवच्छ्लोपधिमतीर्थकरोपदशानुसृष्टि-  
स्पाशादानवषगषभिशारदपण्डितरावमस्त्विरचिते  
साधुपासातनयभीसाधुगोडरम्मम्परिते  
जम्बूस्वामिजातकर्मोत्सवशशबिनोदवर्णनो  
नाम पञ्चम सर्ग ।

## अथ षष्ठः सर्गः

जीयात्स दौडरः साधुर्यस्य कर्निः समुञ्जसा ।  
 पिस्तृता मुषि पूर्णेन्दारिष व्यात्सा मुशारदी ॥ १ ॥

इत्याशीषाह ।

मुषिषि मुषिषातार घर्मतीर्षस्य नायकम् ।  
 शीतलं समई बंदे यस्य पाच मुशीतसाः ॥ १ ॥

अथास्य यौपने पूर्णे बपुरासीन्मनाहरम् ।  
 मङ्कत्येव शशी --- किं पुनः शरदागमे ॥ २ ॥

निष्पुङ्गवन्कृष्णाय कमरूपं निरामयम् ।  
 शीरोत्थसतवर्जं दिम्बं --- --- --- ॥ ३ ॥

--- परां कोटिं वृषान सौरमस्य च ।  
 अष्टीचरसहस्रेण सप्तणानामस ॥ ४ ॥

--- --- ---  
 --- यत्वं येम रुचमात्रिसञ्छविम् ॥ ५ ॥

यम यज्ञ --- --- ---  
 इननपीशितु --- --- ॥ ६ ॥

त्रिदोषजमहातंका नास्य देह्यम् --- ---  
 --- मरुगाचर ॥ ७ ॥

तद्रस्य रुच्य गार्भं परमौदारिकाहयम् ।  
 महाम्युदयनिम्भय --- मूलकारणम् ॥ ८ ॥

मानान्मानप्रमाणानामन्युनाधिकृतां भितम् ।  
 संस्थानमायमस्यासीच्चतुरस्रं समततः ॥ ९ ॥  
 तदीयरूपत्वाचप्ययीबनादिगुणाद्भवैः ।  
 आकृष्टा जनतानेव्यृगा नान्यथ रेमिरे ॥ १० ॥  
 आलावय तस्य सौंदर्यं सर्वाः पौरजनस्त्रियः ।  
 विद्धा मन्मयफाण्डन बभ्रुवु स्मरपीडिताः ॥ ११ ॥  
 काचिघट्टदन द्रुं धीस्यमाणा मुहुर्मुहुः ।  
 प्रीडयाकुलविधा स्यान्मुग्धा कामावुरा सती ॥ १२ ॥  
 मुग्धावस्यापि वारुण्याभवयौवनशालिनी ।  
 काचित्कामाग्निना दग्धा निःश्वसती रिरंसया ॥ १३ ॥  
 काचित्मौढा रसज्ञा च पण्डिता शास्त्रज्ञान ।  
 स्मरती तद्गुणानथ स्थिता चिप्रापितेन च ॥ १४ ॥  
 काचिद्वातायन स्थित्वा गृहकार्यपराद्भुत्वा ।  
 मापुं तदन्नन नूनं साभिस्त्रापानुलसिता ॥ १५ ॥  
 काचित्किञ्चिच्छलं नीत्वा निःसरती स्वसघनः ।  
 भवति स्व महावीर्या यत्र तस्य गमागमः ॥ १६ ॥  
 काचिच्चर्षनापालं साप्तालापि विलम्बिता ।  
 कापच्चसभयोद्भव चिंतति स्माक्षर पयि ॥ १७ ॥  
 काचिज्जन्मांतरऽपीह भवतार तत्समं परम् ।  
 इच्छति स्व निदानन सन्नामपिपयानया ॥ १८ ॥  
 इत्यादिकास्तदालाकादिरहन्यादृष्टीकृताः ।  
 ता सर्वा नामतोऽप्यत्र वर्णिर्तुं न क्षमः कवि ॥ १९ ॥



सुपुंशो द्वि बरं वैको यः स्यात्स्वकुसुदीपकः ।  
 न च मद्रं कुपुषाणां सदस्त्राणि कुन्दद्विषाम् ॥ २० ॥  
 कश्चित्तत्र विद्यानाया ध्रुत्वा तद्गुणसंपदः ।  
 दातृकामाः स्वसात्कीर्यां कन्यां सात्कंठिताः स्वयम् ॥ २१ ॥  
 एतस्तत्र विद्यानाया वसच्छ्रीमिनमाक्तिकः ।  
 श्रेष्ठी सागरदत्ताऽस्य भाया पद्मानती भुया ॥ २२ ॥  
 दुहिता स्यात्तपानाज्ञा पद्मभीश्व पद्मानना ।  
 दिव्यसौन्दर्यवपास्ति नवतारुण्यन्नास्मिनी ॥ २३ ॥  
 धनन्धोऽपरस्तत्र पतत च वणिग्वरः ॥  
 भार्याकनकमालाम्प्या तस्यासीच्छामनानना ॥ २४ ॥  
 नाज्ञा कनकभीः पुत्री तयारासीत्कमस्वना ।  
 तप्तसौवर्णवर्णाया साकर्णायतपद्मपुत्री ॥ २५ ॥  
 आश्रयो वैभवणः श्रेष्ठी तत्रासीद्दृगिर्मा पतिः ।  
 कान्ता विनयमासास्य सम्पान्दर्यामिषानका ॥ २६ ॥  
 आत्ममार्सात्तयोर्नाज्ञा विनयभीरितीरिता ।  
 कामध्वजस्य तन्वीगी सर्वमस्मद्विमूषिता ॥ २७ ॥  
 तुर्यस्तत्र वणिग्दत्ता विद्यते श्रीसमन्वितः ॥  
 स्याद्दिनयमती तस्य भार्या साश्री पतिव्रता ॥ २८ ॥  
 रूपभीरिति विख्याता तयोरसीत्सुता वरा ।  
 पञ्चविम्बापरा तन्वी पृथुपीनपयोधरा ॥ २९ ॥  
 अपि ता स्पृष्टवत्सोऽपि तरुण्यो नवयौवनाः ।  
 मन्यमाना इवाङ्गां प्रागिष्यत स्मरभूपतेः ॥ ३० ॥

ततोऽपि चितितं नैश्च वणिग्भर्परहानिश्चि ।  
 इत्यमेवाचित कार्यं कृतव्यमय सर्वथा ॥ ३१ ॥  
 चत्वारोऽपि परामृश्य ततः शीघ्र समागताः ।  
 तद्गृहे दातुकामास्त कन्यास्ता जम्बुस्वामिने ॥ ३२ ॥  
 अयैकप्रापविश्याशु चिह्नं तैः समसत ।  
 अइहास अहा भ्रष्टिन् पन्याऽसि त्व जगत्त्रय ॥ ३३ ॥  
 यस्वद्गृहे महापूत पुत्रोऽभूद्विश्वपावनः ।  
 जम्बूस्वामीति विख्यातस्त्वंसौख्यैकशित्त्वामणिः ॥ ३४ ॥  
 अयास्मत्पार्यनां सार्यां व्रमायां कुरु सर्वतः ।  
 यस्वन्नन्दनयाग्या मु(स्यु)रस्मद्गृह कुमारिकाः ॥ ३५ ॥  
 दक्षास्ताः भयसेऽस्माभिः कन्या स्युस्तद्दरोषिता ।  
 जम्बूस्वामीति तद्गर्वा बभूतां प्रीतिरुचमा ॥ ३६ ॥  
 युष्माभिः सममस्माकं मैत्रीभावः परस्परम् ।  
 यथा भ्रुत्या ऋयप्रीता वयमाज्ञापरायणा ॥ ३७ ॥  
 समभय वचस्तपां भ्रुम्वा भ्रुष्टी मुद्दं दधन् ।  
 सस्मितोऽन्तःपुरं गत्वा मत्त निनमतीं प्रति ॥ ३८ ॥  
 आननद ततो हर्षान्मप्रायाभप्रिता सती ।  
 प्रायः पुत्रास्तस्य नार्यः साभिन्नापाः स्वभावतः ॥ ३९ ॥  
 तद्दक्षाऽपि तता नीत्वा भ्रष्टी ताननदस्मुधीः ।  
 अहां यथेप्सितं कार्यं कुर्याध्वं गृपमुत्तमम् ॥ ४० ॥  
 अयाज्ञयतृतीयायां निश्चित्याद्गृहमजसा ।  
 ससत्कारपुरस्कारा जग्मुस्त म्वास्वयं प्रति ॥ ४१ ॥

अथ यमसङ्गीतिः स्यात्स्यवानामपि सद्यमु ।  
 एकत्रीक्रियते निरस्यं सामग्री तत्र प्रस्यहम् ॥ ४२ ॥  
 घनघान्त्यमुषर्णादिबन्धासंकरणानि च ।  
 नीयन्तेऽथ महामौल्यं दत्त्वा तैः सावधानकैः ॥ ४३ ॥  
 सद्यमर्दनविधादि सर्वे निष्पाद्यत भृशम् ।  
 परस्परं समाहूतो बहुबर्गो यतस्तत ॥ ४४ ॥  
 इत्युद्गाहसमारंभे चत्वारोऽपि बणिग्वरा ।  
 सात्साहाः सद्यकार्येषु आताडवानन्दशास्त्रिनः ॥ ४५ ॥  
 अथ प्रत्यग्रराजेषु वसंतः सद्युपस्वित\* ।  
 छिन्दन् जीर्णानि पत्राणि चिन्त्यश्मिन्बानि च ॥ ४६ ॥  
 आतपत्रं दधानोऽसौ प्रफुल्लन्दीवरच्छात् ।  
 प्रसूनैः स्वयन्नामासां न्यघान्मूर्ध्नि स मार्षवः ॥ ४७ ॥  
 कौकिसासापवाचासं वनं यत्र विरामते ।  
 आम्बुधोरकवाणेश्च हन्तुं वा कापिनां ह्यसम् ॥ ४८ ॥  
 प्रससार परागोऽपि दिष्टु सर्पांस्तु यत्र वै ।  
 मन्ये कामठकेनच स्निप्तवर्णो विमादितुम् ॥ ४९ ॥  
 पुष्पगर्भैरिवाकृष्टा पक्ष्या यत्रास्मिन्मासिका ।  
 वने भ्रमति वद्रेषु ध्रुन्वसा स्मरदतिन ॥ ५० ॥  
 मदानिसौ वदौ यत्र सुगन्धश्च सुशीतलः ।  
 येन मानघनां सून माननीभिः पराभितम् ॥ ५१ ॥  
 यत्रासौक्यकर रेभे युतदर्शपकृष्टकै\* ।  
 स्फुटितस्य हृदो मांसं पिबो वृन् वियोगिनाम् ॥ ५२ ॥

रज्जुः किंशुकपुष्पाणि यभारक्तच्छमीनि च ।  
 दग्धुं हृदिरहावर्तानां शिताः प्रज्वलिता इव ॥ ५४ ॥  
 एषंधिषे मधौ रमे कुमारः सह दारकैः ।  
 रम्यासु बनवीर्यापु मधुः काज्रपि ( प्य ) परस्त्वयम् ॥ ५५ ॥  
 तत्र पौरजनाश्चापि रमंते सकलमका ।  
 कृत्वापवनवीर्यापु क्रीडामारभयप्सितम् ॥ ५६ ॥  
 पश्चात्स्नानार्थमाजग्मुः सर्वे तत्र जलाश्रये ।  
 ज्ञात्वाय गतुषामास्ते बभूवुः स्वास्य प्रति ॥ ५७ ॥  
 संहतिस्तत्र सजाता मियःसलापमापणैः ।  
 अश्वं गममयो यानं बगादानाय चतिर ॥ ५८ ॥  
 तत्र तूर्यप्रिषध्मानैर्भहान्कलकलीऽजनि ।  
 नददुंदुभिनादंश्च धापानंदपिषायिमिः ॥ ५९ ॥  
 भुत्वा कासाहलध्यानं बिभ्यति स्म महागजः ।  
 शिपमसंग्रामधुरास्यः पट्टेभौ रामसंयतः ॥ ६० ॥  
 यित्वासौ मृत्सलाशंभमभ्रमसत्र काशवान् ।  
 स्रजह्रदमदाषिष्टभ्रमरासीविरामितः ॥ ६१ ॥  
 दुरासदो महामत्तो स बभूव निपादिनाम् ।  
 मीमइशीत्कारनादैश्च प्रासितः स्वगणाग्रणी ॥ ६२ ॥  
 अंमनाद्रिसमो दत्ती चस्रत्कर्णप्रभमनः ।  
 स्थूलहाय कृताविर्मा नवापाइपयाद्वत् ॥ ६३ ॥  
 दंतानसीऽय दताग्रैस्त्वन्नन् पूयिषीतसम् ।  
 शुटादंदिन तभायैरुत्तिरन् बारिसचयम् ॥ ६४ ॥

उच्चस्वान धनं सर्वं राग्धातिविमीषण ।  
 उविच्छन्दन् वरुमूत्रानि मूलांश्चामितस्तत ॥ ६५ ॥  
 आभ्रमम्बुमुजवीरनारंगनिकरांकितम् ।  
 तमासवासकंकर्णान्निर्द्दबादीविरामितम् ॥ ६६ ॥  
 सल्लुब्धिशाल्मयाभ्यामिः पिशुमेन्द्रैरिहाततम् ।  
 द्राक्षारुघकस्त्रजूरदादिमीफलसमृतम् ॥ ६७ ॥  
 जातीशंपककुंडूद्रव्य मृषकुन्दैः सुगंधिमिः ।  
 पाण्ड्यारामपल्लीभिः रमणीयं मनोरमम् ॥ ६८ ॥  
 नागबल्लीमहाबल्लीपिल्वपद्मपल्लवैः ।  
 पल्लवितं नर्मामार्गे श्रीसंदादिद्वैरपि ॥ ६९ ॥  
 एसासवंगजातीनां फले पुष्परसंकृतम् ।  
 रामादनीनासिकेरपूगीफलसयन्वितम् ॥ ७० ॥  
 कैकिकैदारबाष्ठीर्णे क्रोफिसाकृष्णनिस्वनः ।  
 किमत्र बहुनोक्तेन श्लाघ्यं यत्त्रिदशैरपि ॥ ७१ ॥  
 तत्सर्वं ह्येष्टया हन्ती नमश्चैवपतिः क्षणात् ।  
 यथा पुष्पतरु सार्धैरिपयैमस्मिन् मनः ॥ ७२ ॥  
 यतस्ततः पलायतस्तत्र केचिन्नयाहुराः ।  
 क्षातरत्न समादाय न पुनः सन्मुत्सं ययुः ॥ ७३ ॥  
 केचिद्रामापरिभ्राण पर्याहृष्टितथैतसः ।  
 यन्मापैर्ये समासम्भ्य सावधानाः पद्ं दधुः ॥ ७४ ॥  
 माभ्यमथ किमभाहो पितृपन्तो मद्य अपि ।  
 न समाः सन्मुत्सं गन्तुं वन्यमायाद्दु दंतिनः ॥ ७५ ॥



दृष्ट्वा वीर्यं कुमारस्य मूषा विस्मयतां गत ।  
 स्वासनस्यार्पणयोगे तं नीतवानय नीतिवित् ॥ ८७ ॥  
 सुमसभमनाऽश्वायश्वाद्यां कुब-पुनः पुनः ।  
 पुण्यांपरिव सद्रत्नं पूजयामास भक्तितः ॥ ८८ ॥  
 धन्योऽसि स्व महाभाग त्वया नागो बधीकृतः ।  
 साध्वी भिनमती धन्या यद्गर्भे त्वत्समाऽजनि ॥ ८९ ॥  
 अयं हुंदाभिनाद्वैस्त सार्द्धं नृपशतैर्वृत ।  
 पुरं प्रवेशयामास दंतिनः शिरसि स्थितम् ॥ ९० ॥  
 अस्याद्राजतन्त्रायापि ताम्यां नीत स्वसधनि ।  
 पितृभ्यामर्चितः साक्षात्सन्त्यगस्यपुरस्सरम् ॥ ९१ ॥  
 सिंहासने निबभूवाशु विनयानतमस्तकौ ।  
 पितरौ पृच्छन्तौ भद्रं तस्मैहाद्रिवचध्रुवौ ॥ ९२ ॥  
 हृत्कंठं ते तनौ बस्त निघ्नता गमयूषपम् ।  
 इति क्वचिच्छुमारं तं स्पृशन्तौ मृदुपाणिना ॥ ९३ ॥  
 क ते पुत्र मपु सौम्यं कदलीदलसभिभम् ।  
 क गिरीन्द्रसमो नागो निर्मितस्तु कथं स्वया ॥ ९४ ॥  
 विस्मयस्य परां कार्तिं सद्बानो स्वसधनि ।  
 तस्यतुर्हो मुत्सं यावत्स्पर्श्यती तौ मुत्ताननम् ॥ ९५ ॥  
 यस्मात् पुष्पविपाकाद्वै जम्बूस्वामिकुमारकः ।  
 मान्यां राजसमामध्ये तत्पुण्यं क्रियतां बुधैः ॥ ९६ ॥

इति श्रीजम्बूस्वामिचरिते भगवच्छ्रीपदिचमतीर्थकरोपदेशानुसारिते

स्वाश्वानवधगवधपरिषादिशारपण्डितपद्मजम्बूचरिते

साधुपास्तसुतसाधुटोडरत्नम्यधिते जम्बूस्वामि-

वसंतकेचिद्विस्तारवर्णना नाम षष्ठः पर्वः ।

## अथ सप्तमं पर्वं ।



मपतु धेयसे वाच भीसवद्गमुखोद्भवाः ।  
भीसाभाः टाडरस्यास्य साधुपासांगजस्य वै ॥१॥ इत्यार्त्तावाद् ।  
श्रेयांसं तीर्थकर्त्तार इर्त्तारं दुग्त्रसंतत\* ।  
वामुपूज्यं च वन्द्यं सर्वविघ्नोपशान्तय ॥ १ ॥  
अर्थकदा सभामप्य स्थित रात्रि सुबिष्टर ।  
आनमन्मौलिभूपासनपव्यधरणांशुजे ॥ २ ॥  
पवभिर्भरसकाञ्चामरानीविराजित ।  
महामात्यादिरामीबरामन्यकसमन्वित ॥ ३ ॥  
श्रीलया तत्समीप च जम्बून्त्रामिनि सस्थित ।  
निर्नितं तद्गुणान्त्या भूपानां तमसां वये ॥ ४ ॥  
तत्राफ्रम्माभ्रमामार्गाद्गत स्वचरापिपः ।  
एकज्ज्यास्माभित्तमोभिर्दिशाचरं विभूषयन् ॥ ५ ॥  
दिम्यं विमानमारुहो रणदुपंगापत्कृतम् ।  
व्यामवार्गे तत स्वाप्य समुर्षार्णं तणादिद् ॥ ६ ॥  
स्विस्थावादीक्षतोऽप्यक्षं रानानं भणिफ प्रति ।  
प्रथयानुद्धतं वाचये नमस्कारपुरस्मरम् ॥ ७ ॥  
नाम्ना सहस्रं गुणां च रात्रे गिरिकुसम\* ।  
रात्रे तत्र वसंत्यव महाविषापरा नरा ॥ ८ ॥



मूपरे तत्र तिष्ठामि सकसप्रभिरात्सुत्वम् ।  
 नाम्ना ष्योमगतिश्चाहमसहायपराक्रम ॥ ९ ॥  
 निमित्ताद्य मया वार्ता या विभ्रास्पदकारिणी ।  
 भ्रौतव्या सा स्वया भूप कल्प्यमाना मयाधुना ॥ १० ॥  
 अस्त्यन्यतो गिरीश्वानो नाम्ना वै मल्लयाचलः ।  
 अस्य दक्षिणदिग्भागे केरसा पूरिहास्यया ॥ ११ ॥  
 मृगांकस्तत्र भूपोऽस्ति यश्चस्त्री च कलानिभिः ।  
 मामिनी तस्य नाम्नापि विद्यते मासती सता ॥ १२ ॥  
 सा स्वसा मम भो रामन् स्याच्छीमशुणमंडिता ।  
 क्रांशनामा सुतन्त्रंगी रोमराजीविरामिता ॥ १३ ॥  
 या निष्ठासवती नाम्ना सुता स्यादनयोः शुभा ।  
 कर्द्वैकविभासा सा निर्मिता विभिनाधुना ॥ १४ ॥  
 आकर्षातविश्रासाक्षी पृषुपीनपयोधरा ।  
 संतप्तकनकच्छाया क्रांत्या कतिः सृहापती ॥ १५ ॥  
 अथान्येषुर्पुर्गांकास्यः सीतेको विद्यापराधिपः ।  
 पृच्छति स्म मुनीशानं मभ्रपो मूर्तिमानिब ॥ १६ ॥  
 कृपावारिनिषे स्थाभिम् शूहि मे संनयच्छिदि ।  
 अस्मत्पुण्याः पतिर्भाषी भविता काऽत्र भूतसे ॥ १७ ॥  
 आकर्ष्येद् वचस्वप्यमुपाच मुनिनायकः ।  
 सास्यपक्षिप दिक्चक्रं मसरहस्यनाशुमि ॥ १८ ॥  
 पुरे रामस्यै रम्य भेणिकोऽस्ति महीपतिः ।  
 विश्वाकरस्यास्त्वपुण्याः परिमेता पक्षिव्यति ॥ १९ ॥

भुत्वा मुनिवच पथ्यं मृगाणां ररुष भ्रष्टम् ।  
 ततस्तामन्यस्मै दातु स तूषेतापराऽभवत् ॥ २० ॥  
 अयो विषाधिनायोऽस्ति रत्नशूलः समाम्यया ।  
 इसद्रीपमरुर्कुर्वन् स्वमहिम्ना पराजसा ॥ २१ ॥  
 प्रार्थयामास माऽस्त्यर्थं कन्यां तां कमलाननाम् ।  
 मृगांश्च न ददौ तस्मै मुनिवाचपमर्लययन् ॥ २२ ॥  
 ततस्तनाविरुष्टन पट्टवैरण कापिना ।  
 स्वाभङ्गं मन्यमानन कृत तस्य विरुपक्षम् ॥ २३ ॥  
 कृत्वा सैन्यं धनुःसङ्घं विष्णुस्तं तस्य पथेन ।  
 तेन पापात्मना तम वैत्य सघानि निघ्नता ॥ २४ ॥  
 सखीऽप्युदासिता देवस्तस्य यावान् समृद्धियुक् ।  
 धनधान्यसमाक्रीणग्रामभ्रणिविराजित ॥ २५ ॥  
 उच्छिन्नानि बनान्यस्य दुर्गाश्चापि विदारिता ।  
 आसक्तोऽप्यात्मनासं सर्वस्य भस्मसात्कृत ॥ २६ ॥  
 प्रस्तस्तत्रासत साऽपि मृगांश्च परीवर्ता भिनः ।  
 अधिदुर्गे समामीन प्राणान् रसाति यस्ततः ॥ २७ ॥  
 गृह्णात सर्वमैतत्तत्रत्य विषतऽधुना ।  
 शानादन्यत्र फा वृत्ति पुरस्तात्किं भविष्यति ॥ २८ ॥  
 अथ तत्र मृगांश्चाऽपि सावपानञ्च सयति ।  
 विषाम्यति न संग्रामं शौं दिन द्वि यथावत् ॥ २९ ॥  
 यथाऽप्ये तावपमस्य सम्भुग्यत्वं पत्न्याह ।  
 परं प्राणास्त्यपस्तत्र नान्यथा जीवन् वरं ॥ ३० ॥

महतां न धनं प्राणाः किंतु मानधनं महत् ।  
 प्राणत्यागे यश्चस्तिष्ठेत् मानत्यागे कृतो यश्च ॥ ३१ ॥  
 ये हृष्टवारिबलं पूर्णं तूर्णं भ्रमास्तदाहरे ।  
 पसायंति विना युद्धं धिक् तानास्यपसीमसान् ॥ ३२ ॥  
 ये तु धैर्यं विषायाशु युद्धं कुर्वन्ति धीमनाः ।  
 मृतास्तत्रैव नो भ्रमा घन्त्यास्ते हि यश्चास्मिनः ॥ ३३ ॥  
 राजन् कृतबधोर्ध्वस्तत्राहं गतमुपमी ।  
 आबध्यकमिदं कार्यं विषंबोऽनुषिता मम ॥ ३४ ॥  
 तथाप्यालोक्य माबलं दधनं स्यान्मुत्तमम् ।  
 वृत्तार्तं गदितुं चापि स्मितोऽहं स्रजमात्रतः ॥ ३५ ॥  
 अतः स्यादुं क्षयं यावदतिमार्घं न मे मन ।  
 रामभावापयत्साशु यथा गच्छामि वेगतः ॥ ३६ ॥  
 इत्युक्त्वा स नमोगामी स्वरितं प्रस्थादुत्तमतः ।  
 अमृतस्वामीत्ययीवाच बभौ विषापर प्रति ॥ ३७ ॥  
 तिष्ठ तिष्ठ क्षणं यावद्भवेत्सञ्चो नराधिपः ।  
 भेणिकाञ्च महासत्त्वो निर्मितास्त्रिलङ्काप्रवः ॥ ३८ ॥  
 चतुरंगबल्योपेतो महाधैर्यो महामतिः ।  
 सत्तांगराग्यपूर्णागस्तेऽस्वी यद्दसां चय ॥ ३९ ॥  
 भुत्वा यथः कुमारोक्तं स्वगी विस्मितमानसः ।  
 अवादीर्षं समाधाय युक्तिपूर्वं वधाऽस्त्रिलं ॥ ४० ॥  
 युक्तसुक्तं स्वया वास साधययोर्बितं हि यत् ।  
 परंस्मैदमसमाधि युक्त्यामासनिर्बपनं ॥ ४१ ॥

यद्यीमनश्चत दूर तत्स्थानं तिष्ठतेऽपुना ।  
 तत्र गंतुं न शक्यत का कया वीरकर्मणः ॥ ४२ ॥  
 अपि भूगाचरा यूयं ते भटा व्योमचारिणः ।  
 कथं साम्य भवद्याद् युष्माक सह तरहा ॥ ४३ ॥  
 ययार्मकः करस्फालैर्ग्रीहीतु जलसंस्थित ।  
 मतीच्छतीन्दुर्बिंब हि तथा युष्मत्प्रनल्पितम् ॥ ४४ ॥  
 अयथा ( अय ) हास्यास्पद् वैतदुद्गाद्गुवामना यथा ।  
 प्रांशु पृत्तफळ भाषतु तथा स्याद्भ्रवदुषम ॥ ४५ ॥  
 यदि कश्चिद्विषोपादाख्यन् फनफाषलं (१) ।  
 तथय घटत नून युष्मदीया समुद्धतिः ॥ ४६ ॥  
 बिना नावा पयानाय यथा कश्चित्तीर्षति ।  
 रत्नधूम तथा जंतुं युष्मदीया मनारयः ॥ ४७ ॥  
 दग्धित्वादिषा भूमिदृष्टान्तानां सहस्रतः ।  
 तन विद्यापरणार्षैर्यथास्मप्रतिभाबलं ॥ ४८ ॥  
 योगीकृताप सवापि कुमारण यगस्त्रिना ।  
 बाषदुर्ध्वया जल्प मतिदृष्टान्तकाचिदः ॥ ४९ ॥  
 या वद् विद्यापते बाषमित्यमश्रुतपूर्विषां ।  
 श्रुते केचनसाधादा षो वस्यन्वा कन्माषलं ॥ ५० ॥  
 क्षणाभिरुत्तरा ज्ञानः गगना ध्यापगतिस्तदा ।  
 मूर्खीभूत इषानम्यौ दग्धितुं तन्परायणम् ॥ ५१ ॥  
 भेणिरुष्मन्पथं धुम्वा मार्गकाः-मवन्तृषः ।  
 श्रीस्वैद दुर्पं हृत्यं विविदाहृष्यमानतः ॥ ५२ ॥

भूयोभूयः परामृष्य स्वेदमाप धरापतिः ।  
 किञ्चित्कर्तुं न शक्येत दुर्घटे तत्र कर्मणि ॥ ५३ ॥  
 नापि तत्र गमस्सूर्णे न क्षमो दातुमुत्तरम् ।  
 पुष्पकाष्ठाभिर्बद्धं वा राज्ञो दीक्षापथे मनः ॥ ५४ ॥  
 तद्दशावसरे धीरो अम्बुस्वामिङ्गुमारकः ।  
 कथे साम्नेष सानन्दं गंभीरतरया गिरा ॥ ५५ ॥  
 स्वामिभैतत्क्रियस्कार्यं स्वल्पसादात् प्रसिद्धयति ।  
 आस्ता इरे सहस्रांशुस्तद्वद्वीऽपि तमोपहः ॥ ५६ ॥  
 कार्यस्य साधनायाकं माह्वीऽपि भविष्यति ।  
 किं पुनर्दुष्प्रदीया सा सञ्चिता सर्वतश्चमूः ॥ ५७ ॥  
 ब्रह्मं जम्बूङ्गमारेण भुत्सानन्दमपीविष्टत् ।  
 भेणिकः भ्रष्टाति स्म भोक्त वस्त्रं सद्यष्टिषत् ॥ ५८ ॥  
 ततश्चोष मराञ्ज्रं सानन्दो मगधाधिपः ।  
 एवं वैस्सात्रधर्मस्य मर्यादा स्याद्विप्लुता ॥ ५९ ॥  
 आत्मजम् पुनर्जातमिष मन्धामहे वय ।  
 कन्यालामः पदार्येषु क्षमियेषु यश्चक्षयः ॥ ६० ॥  
 ज्ञात्स्वर्मां च स्वया धीर फलानां हि परंपरां ।  
 गतध्वं स्वरितं तत्र नाद्य भेयी विह्वलनं ॥ ६१ ॥  
 आदश्वितः हुमारोऽसौ शृपेनानदशाक्षिना ।  
 असहायकस्यैको निर्भीको गेहमुपतः ॥ ६२ ॥  
 अपीवाच स्वगापीष्टं नाम्ना भ्योमगतिं प्रति ।  
 अम्बुस्वामिङ्गुमारोऽसाधुस्तुष्टो धीरकर्मणि ॥ ६३ ॥

- भो स्वगन्त्र विमानऽस्मिन्नात्मीय मां निवेक्ष्य ।  
 इता नयस्व तत्राशु यत्रास्त रत्नचूषक ॥ ६४ ॥  
 ध्रुत्वा विभ्रास्पदं वाचयमिदमाह स्वगापिप\* ।  
 गर्तेनापि स्वया तत्र कश्चम्य किमयार्थक ॥ ६५ ॥  
 तावदक्षे स्वसद्यस्यश्वापरय मृगशावक ।  
 यावद्याभिमुखं गमन् ध्रुवो नायाति कश्चरी ॥ ६६ ॥  
 तावद्रूपुः पर सौम्यं लसन्सौर्दर्यरामित ।  
 यावदंष्ट्राकरासोऽसौ कृताता नाचुमिच्छति ॥ ६७ ॥  
 तावत्कृणगणा सर्वे सन्त्वरम्यपु द्वाद्दलाः ।  
 यावन्न स्याज्ज्वलज्ज्वालः प्रघटो दावपाचक ॥ ६८ ॥  
 तावदादवरं यत् सर्वोऽप्यभ्रगणाऽम्बर ।  
 यावत्घटानिलः काऽपि न वायादतिदुर्द्धरः ॥ ६९ ॥  
 तावदायुः स्वमारार्यं यन्न संपदने भय ।  
 यावद्वैशा न पापस्य नोदस्यन्न गरीयस ॥ ७० ॥  
 तावद्द्व्यग्रते साक्षात्त्रिर्मर्म जैनधर्मयत् ।  
 यावद्योपित्कयज्ञानां नापतिमजरं मन ॥ ७१ ॥  
 तावद्मूलगुणाः सर्वे संति धेयोपिपापिन ।  
 यावद्वृषंसी न रापाभिभस्वसात्कृत्त शणात् ॥ ७२ ॥  
 गौरव तावदवास्तु प्राणिन कनकाद्रिवत् ।  
 यावन्न भापने देयादेदीति द्वौ दुरत्तरौ ॥ ७३ ॥  
 तन्मन् वन्नान तावत्सुन्दर वाम्पामिन ।  
 रत्नचूमस्य वाणैस्त्रं यावन्ना जमरीकृत ॥ ७४ ॥

इति क्षपपरं वाक्यं शृण्वन् भूया जगाद् स ।  
 भंतःसंपृक्षिता वदिययात्र प्रउचन्निष्यति ॥ ७५ ॥  
 यो यो व्यामर्गं प्राह यावद्(दि)भ्यं कदाचन ।  
 यन्परिष्यामि वासोऽहं तस्मै द्रक्ष्यासि सांपत ॥ ७६ ॥  
 कुर्वति न वदस्यच कुर्वति च वदति च ।  
 जमादुत्तममप्यास्नेऽपमाऽहृवन् बन्धपि ॥ ७७ ॥  
 मृक्तमृक्तं कुमारण भुम्बेद्रं मगधाधिप ।  
 मयं च प्रति विपन्नं ज्ञानतर्क्याम्पस्तदा ॥ ७८ ॥  
 पदुक्तं मरुता व्यामर्चारिभ्यः समसत ।  
 पक्षाक्षी तत्र जाताऽपि बालाऽयं किं करिष्यति ॥ ७९ ॥  
 स ते पक्ष सपक्षाऽपि प्रतिपत्सदृषिताऽस्त्रिभ ।  
 मंगेन ना ( न ) इतः मिहां इतः पाष्टापदेन सः ॥ ८० ॥  
 इतं यत्र जगत्सर्व इतः साऽपि मिनयमः ।  
 जम्बून्नापन्नं नीता मयंटा द्रवपावकः ॥ ८१ ॥  
 वायु मयान्मयत्पम न गिरीन्द्रं महाभक्तं ।  
 विध्याज्ञाने भवन्त्ये रजन्या चापकारवत् ॥ ८२ ॥  
 न च स्यात्पराग्निज्ञान यथा सूर्योदये तपः ।  
 मय यापित्कटाधेः च इता मन्मयशास्त्रिनः ॥ ८३ ॥  
 या न प्रौषाप्रिना दृग्म सधः कर्मोदयावत् ।  
 कश्चित्कषानम् साऽपि नीतः क्षांतिं क्षर्मासता ॥ ८४ ॥  
 शीलामाश्रय तीर्थेषु मयसश्चरितंकरा ।  
 मिसया र्जुमयानाऽपि पूज्यः स्यात्सुरनापकः ॥ ८५ ॥

अर्थकाऽप्यबरस्यायी प्रकृतेस्तेमसां वय ।  
 तमस्तोमं विधुन्वानो नादेति किञ्च भानुमान् ॥ ८६ ॥  
 मूर्च्छं च वृद्धवाक्येषु यत्परीक्षासम वचः ।  
 य कार्यसापनायालमेकोऽपि च लक्षायते ॥ ८७ ॥  
 इत्यादिकां बधामालां रचितां श्रेणिक्वच वै ।  
 पारयामास वा मूर्ध्नि सादरात्तत्र व्यामगं ॥ ८८ ॥  
 भाङ्गया स्थापयामास खगा दिव्य विमानके ।  
 मम्पृस्थामिकुमार तमनापम्यमलान्वितं ॥ ८९ ॥  
 व्याममार्गो तदा यानं गच्छति स्म त्वरान्वितं ।  
 श्रीघ्रमापत्सित स्थान यथा वेगात्मनो जषं ॥ ९० ॥  
 अयानुं त स भूपाऽपि मतस्थं भणिक्रुस्त्वदा ।  
 चतुरगणलापतः सार्धं सर्वैर्मटाद्भटैः ॥ ९१ ॥  
 भयः प्रस्थानार्धसिन्यो नेदुरामद्रनिःस्पना ।  
 अकालम्वनितान्नं कामातन्वानाः शिबंदिनां ॥ ९२ ॥  
 वमतां रयचक्राणां पीत्वारैर्हृषहपितैः ।  
 मूर्हितैश्च गमेन्द्राणां शम्भुर्द्वैत तदाभवत् ॥ ९३ ॥  
 पदंगबलसामाया सपन्नं पार्थिवरमा ।  
 प्रमथ्य ध्रुणिक्रं भूपा रत्नशृमामिगीपया ॥ ९४ ॥  
 यशान् गमपत्राबंधा रैज स मपयत्न ।  
 गिरीणामिव संपातं सघागी सदपानिभिः ॥ ९५ ॥  
 अस्थान्मदमसासारमिनभूमिपदद्विषः ।  
 ममस्थं वृद्धदिवचमैः उर्मैरिव सनिभर ॥ ९६ ॥



जयस्वंभेरमा रेजुस्तुंगाः शृंगारितांगकाः ।  
 सांद्रसाध्यातपाक्वाताश्वसंत इव मूपरा ॥ ९७ ॥  
 घमूमतंगमा रञ्जुः सञ्जमाः सञ्जमयकेतनाः ।  
 कुसधैसा इवायाताः ममाः स्वबलवर्द्धने ॥ ९८ ॥  
 गजस्कंधगता रेजुर्दुर्मता विभृताकुशाः ।  
 मदीपोद्गठनेपध्मा दर्पाः संदीपिता इव ॥ ९९ ॥  
 कौसेयैर्कैर्निघातोप्रभाराग्रैः सादिनौ बभूवुः ।  
 मूर्तीसूय सुमोपाग्रस्रगैर्वा स्वैः पराक्रमैः ॥ १०० ॥  
 पन्थिनः सुरनाराचसंमृतेर्पुषपो बभूवुः ।  
 वनस्माया महाश्वास्वाकोटरस्पैरिबाहिभिः ॥ १०१ ॥  
 रविनो रयकव्यासु संभृतोचितहेतयैः ।  
 सञ्जामयापितरजे मास्थिता नापिका इव ॥ १०२ ॥  
 मया इस्थुरसं भेजुः सच्चिरस्रधनुषकाः ।  
 समुत्सावनिष्ठावासिपाणयः पदरसजैः ॥ १०३ ॥  
 मस्फुरत्स्फुरदस्रौषा मयाः संदर्शिता परे ।  
 औत्पातिका इवानीला सोरुका मेघाः समुत्थिता ॥ १०४ ॥  
 करबाळं करासार्द्रं करे कुत्साऽमपोऽपरा ।  
 पश्यन् सुस्वरसं तस्मिन् स्वसीदर्यं परिबद्धिबान् ॥ १०५ ॥  
 करार्द्रं विभृतं स्रजं तुल्यत्क्रेज्यमाद्भ्यः ।  
 मथिमिस्तुरिबानेन स्वामीसत्कारगौरवं ॥ १०६ ॥  
 महामुकुटभद्रानां साधनानि प्रतस्मिरे ।  
 पादाविहास्तिक्रान्धीयरयकव्यापरिच्छिदैः ॥ १०७ ॥

१ वनहस्ती । २ कौ । ३ कवात्कवा । ४ दृष्टीयः । ५ सञ्जमि । ६ वि  
 क्रावते इति चित्तव्यं, तुल्यत्क्रेज्यं कनधाः ।

बह्वर्षुवृषास्ते रत्नाशुद्धमौलयाः ।  
 सलील सौकपालानामना सुवमिवागता ॥ १०८ ॥  
 परिवेष्ट्य नैरतर्ये पार्थिवाः पृथिवीश्वरं ।  
 दूरात्स्वपथसामग्रीं दर्शयन्ता ययायपम् ॥ १०९ ॥  
 भूरेणवस्तदाश्वीयसुरोद्भूताः स्वर्गयिनः ।  
 क्षणभिद्रितसंमेषो प्रचलत्कुमरांगणा ॥ ११० ॥  
 समुद्रन्तरसमायेर्भटासार्पर्महीश्वराः ।  
 मयाणका धृतिं प्राप्नुर्भनजन्यैरपीदृशैः ॥ १११ ॥  
 विरूपकविदं युद्धमारुप्य मगधसिना ।  
 एश्वर्षमद्दुर्बाराः स्वैरिणः प्रमत्ता यया ॥ ११२ ॥  
 पुर पादानमश्वीयं रथकृत्यायहास्तिर्कं ।  
 प्रमाद्विरीयुराशष्टथ सपताक रथं प्रभाः ॥ ११३ ॥  
 चने चर्नर्नर्नर्मुक्ता विरेजुः पुरर्षाययः ।  
 कङ्काङ्कैरिब बन्धोर्धेमहाभ्यस्तीरभूमयः ॥ ११४ ॥  
 पुरांगनाभिरुन्मुक्ता सुमनाऽञ्जलयाऽप्यनन ।  
 मौषवातायनम्यायिदृष्टिपार्ते मम प्रभो ॥ ११५ ॥  
 पुरा षोडः पुरा पध्मात्मम च विधिनाधुना ॥  
 ददत्त दृष्टिपर्येतमसगप्यमिब तद्वत्सम् ॥ ११६ ॥  
 किमिदं प्रमथसोभात्सुधितं पारिधमसं ।  
 किमुत पित्रगरमगः प्रस्ययार्त्रं विजैभन ॥ ११७ ॥  
 वपिदनापृष्टातस्यर्गद्वैकानिगिष्पाधिनात् ।  
 स्वपनागानसंमक्तान् मिश्रान् महुरैतान् ॥ ११८ ॥

क्वचिद्धृताममूनेषु विस्तीर्णमधुपावली ।  
 विस्त्रायय स्रस्तकञ्चीनां सस्मार मिययोपिता ॥ ११९ ॥  
 पच्छायास्तफर्मास्तुंगान् सर्पसंभोग्यसंपद् ।  
 मार्गद्रुमान् समद्रासीत्स नृपाननुकृत्वतः ॥ १२० ॥  
 सरस्तीरधुनाऽपश्यत् सराजरजसा तताः ।  
 मुवर्षमुद्दिमाश्रका मधुःमुद्दि तन्वतीः (?) ॥ १२१ ॥  
 पसरणुभिरारब्धे दोषा मन्ये नमस्पसा ।  
 करुणां ख्यंती षीक्ष्य चक्र चक्रद्वकामिनी ॥ १२२ ॥  
 गर्भागणानयापश्यद्वाप्यदारण्यचारिण\* ।  
 तीरमथानिवाजस्रं सरस्तीरप्लुताकितान् ॥ १२३ ॥  
 सौरभेषान् समृंगाप्रसमुत्सातस्यसाधुमान् ।  
 मृणासानि यक्षासीष किरणान्यस्य दुर्मदान् ॥ १२४ ॥  
 वास्तकं क्षीरसंतोपादिष निर्मलपिप्रहम् ।  
 सोऽपश्यद्यापकस्यच परां कौटि कृतात्प्लुता ॥ १२५ ॥  
 वमति मुवमाप्रातृमिषात्पल्लमिबानतान् ।  
 सुपक्वकपिसानघ्नं कलमक्षेप्रमैसत ॥ १२६ ॥  
 नौदस्य फल्ययोगीति नृणां वक्तृमिबोधत ।  
 पश्यति स्म स भूपासौ रामन्यकपरिहृतः ॥ १२७ ॥  
 सावतसितनीलाब्जाः कंभरेणुभितस्तनीः ।  
 इधुर्वदभृती पश्यत् स्पसीस्यो कूर्पतीः स्त्रियः ॥ १२८ ॥  
 हारिगीतस्वनाकूर्पैर्वेष्टिता हंसमदलैः ।  
 प्राप्तिगोप्यो हसोरस्य मुदं तेनुर्पष्टिक्रयः ॥ १२९ ॥

\* हेनारजेमि । २ रुवमात् । ३ कञ्चन योजनं श्रीकृष्णस्वस्तीति उक्तवामह्यं ।

मुगपिमुस्तनिश्वासाद्मरंराकुलीकृता ।  
 मनाऽस्य ऋदु घालीनां पालिका कुम्भामिका ॥ १३० ॥  
 मध्यस्थाऽपि तदा तीव्रं तताप तरणिर्बुध ।  
 नूर्न तीव्रप्रतापानां माध्यस्थ्यमपि सापकं ॥ १३१ ॥  
 वृषांगनामुम्बाग्जानि यमर्षिदुधिरावयु ।  
 मुक्ताफलद्रवीभूर्तरिवाष्टकविभूर्पण ॥ १३२ ॥  
 पहाजवयुपा वषप्रादुदमंत सुरानिष ।  
 पहारस्का स्फुरत्प्रापा द्रुतं जम्बुर्महाहया ॥ १३३ ॥  
 अभूतपूर्वमुद्भूतनतिष्णानधमध्वनिम् ।  
 ध्रुवा बलवद्भोगुस्त्रियैषा वनगाधरा ॥ १३४ ॥  
 वस्यामादिमा निर्यद्वन्सामात्नतरान् ।  
 मुग्धः सुविमन्तांग सुरम इव कृपण ॥ १३५ ॥  
 मधोपमृमनादाम्यं म्यादनी किम् केतरी ।  
 न म्प्रयत्नमर्य किंचित्पयनऽप्रीव दमपन् ॥ १३६ ॥  
 मरभो रथमादृष्वसुन्वस्योषानित पतन् ।  
 म्य म्य एव पदे वृष्टेरभूमिमातृकांनमान् ॥ १३७ ॥  
 पापाण निग्वितस्फंषा गविनाताम्विनसण ।  
 गुरीं न्वातावति सैन्यदहन मादिषा विभी ॥ १३८ ॥  
 यमूर्ध ( पर ? ) शोद्धनसाप्त्रमा शुद्धा वृगाः ।  
 विभन्ता वषपानांगा महारण्य तुग ? ) धपन् ॥ १३९ ॥  
 वगाहागति सुवन्ता वगाहा सुन्दरन्वमा ।  
 विनगुरिस्फुरणपा यमूर्तांभादिता वृत्त ॥ १४० ॥

इति मत्वा वनस्येव प्राणां प्रवसिता मृधम् ।  
 प्रत्यासक्ति चिरादीयुः सैन्यसाध प्रसमुत्ति ॥ १४१ ॥  
 तताऽपि दूरमुल्लंघ्य सांख्यगं पृतनावृतः ।  
 रैवासरिष्ठे पीरो विभापमकरोत्कृती ॥ १४२ ॥  
 तवस्तां च समुचीय प्रवस्ये करसां प्रति ।  
 विघ्नभ्राम कियत्कालं नाम्ना कुरळभूषर ॥ १४३ ॥  
 पूजयामास भूमीश्वरश्च विंशं जिनेश्विन ।  
 मुनीनपि महामत्या तत मस्यातमुपतः ॥ १४४ ॥  
 कियद्दूरे ततो गत्वाऽतिष्ठच्छ्रीमगपाधिपः ।  
 अश्वभमापरोषाय सेनासार्यतसंयुतः ॥ १४५ ॥  
 अथ तावद्दुतं प्राप करसां नगरी प्रति ।  
 जम्बूस्वामिकुमाराऽसौ नीती विधापरेण य ॥ १४६ ॥  
 किमिदं मी सगापीश महाक्रोधाहसाकुलम् ।  
 साहाय्यकारी स्वमेवासि इहि नः सधयच्छिन्दे ॥ १४७ ॥  
 ततोऽवादीशमोगापी कुमारं प्रति प्रभवात् ।  
 सेवं सेना स्थिता बाल रत्नधूलस्य तद्विपः ॥ १४८ ॥  
 यो मयाऽभाषि विधाभूत् पूज्ये सपारिनाशकृत् ।  
 कन्यायाश्चापहामानभर्गमन्योऽस्ति रोषवान् ॥ १४९ ॥  
 उद्भासितस्तु येनायं दैवः सर्वोऽपि कोपत ।  
 मृगांक्षो यज्ञयात्रीतां बुभुषाभित्य तिष्ठति ॥ १५० ॥  
 अभय्यौ निर्गितासेपशाप्रबोऽयं सगेश्वरः ।  
 विधापराधिनावैस्ते संसध्यवरणांशुजः ॥ १५१ ॥

स्वगादतद्वचः भुत्वा कुमारो ब्रह्मिष्ठाऽम्बन् ।  
 यथा प्रज्वालितं तल्ल ज्ज्वाल जलयागत ॥ १५२ ॥  
 रस रस विमानं भा तावद्भ्यामगते क्षणात् ।  
 यावता रत्नयूतस्य द्रक्ष्यामि यत्प्रमुदतम् ॥ १५३ ॥  
 ततो विमानमुत्सृज्य क्षुभ्रसनामधीषिणात् ।  
 पश्यमितस्ततः सैन्यं कौतुकेन कुतूहली ॥ १५४ ॥  
 दर्शे दर्शे कुमारं तं सुन्दर पागसनिभम् ।  
 जम्बुद्वीपकित किञ्चिन् पियस्ससैनिषा यथाः ॥ १५५ ॥  
 अहो देवाधिनायोऽपमायाना लीलया स्वतः ।  
 दानवाऽप्यदिनाथा सा फणदेवाऽप्यवागत ॥ १५६ ॥  
 शृणुं वा सैन्यमस्मात्प्रमागाम प्रधीपतिः ।  
 भय क्विन्महाभागा मन्धीवान् किं यणिरपति ॥ १५७ ॥  
 सवितुं रत्नगुणस्य पददंष्ट्रं स्वगाऽथवा ।  
 साध्वमात्वरगच्छस्य सत्सहापिपिया पियु ॥ १५८ ॥  
 अथ क्विन्महापाणा ददं दानुमिवागतः ।  
 श्रीहनुस्य कृत व्याजादापानु ग्रेहमुत्तपम् ॥ १५९ ॥  
 भय यधिष्ठिरान्वपी धूर्तो वेषपरा नरः ।  
 वापद्वयं वायाणं पाण्वागितरंभ्रम् ॥ १६० ॥  
 एवं मम्मन्वयोऽप्यु नानारावय पदम्भ्रि ।  
 मम्मन्वापिदुमाराः मौ गजम्भ्रगति रणात् ॥ १६१ ॥  
 मधारापग्न निर्भीतो र के द्वाःशामकाहय ।  
 मग्निं मम नीम्बाधु मगम्याद्य निवदय ॥ १६२ ॥

अहं हुता मृगाकिन पाठयित्वाय प्रेषितः ।  
 तत्सर्वं वक्तुमिच्छामि तत्र साम्यकर वचः ॥ १६३ ॥  
 भुत्वा ददधरा द्वाःस्पस्वस्यास्याने गर्ता जयात् ।  
 मधुं नत्सौत्तमांगन प्राषापत्स विचक्षणः ॥ १६४ ॥  
 देव कश्चिन्नरा बाग्धी स्वद्वारि स्थितवानिह ।  
 वक्तुमिच्छति साम्नैव युष्मत्सदर्शनात्तुह ॥ १६५ ॥  
 भुत्वा रत्नश्लिखदचापि तद्वेष भुविपेन्नस ।  
 मधुं मबन्धय स्वै (१) नमित्युषं मत्सरी स्वगः ॥ १६६ ॥  
 आहामादाय द्वाःस्पेन तत्सपीप प्रवेष्टितः ।  
 जम्बूस्वामिकुमाराख्यो ज्वलत्कात्या वपुश्छविः ॥ १६७ ॥  
 प्रविष्ट स दिदीपि वा तिग्मांशुरिव भूतले ।  
 सर्वे वैजः स्वगेशानां विरस्कुर्वन् स्वकांतिभिः ॥ १६८ ॥  
 इच्छा त रत्नश्लिख्ये क्षण विस्मयमाप सः ।  
 कथ संभाषि दूतत्वमस्य कांतिमतः स्यत् ॥ १६९ ॥  
 यत्किञ्चिदुचिर्तं धाम नमस्कारक्रियादिफलम् ।  
 न कृतं चाटु पाक्यं वा स्वीयते तन स्वममत् ॥ १७० ॥  
 मूनं कश्चिदपूर्वोऽयं देवा वा मानसोऽप्यवा ।  
 परीक्षां कर्तुमायातो मद्गलस्यापि गौरवात् ॥ १७१ ॥  
 शितयमिति पमच्छ रत्नश्लिखः कुमारकम् ।  
 आमतस्त्वं हुता दद्यात्किमर्थं मम सन्निधौ ॥ १७२ ॥  
 भुत्वाऽशोषत्कुमारस्य रत्नश्लिख स्वर्गं प्रति ।  
 नीतिमार्गे समाधिस्य त्वां विबोधयितुं जयात् ॥ १७३ ॥

स्वं नहीदि दुराग्राहमिहामुप्र च दुःस्वम् ।  
 अयन्नस्करं स्वगार्थाय महादुर्गतिफारण ॥ १७४ ॥  
 सति यापित्सहस्राणि सुखमानि पद् पद् ।  
 तत्रानर्पेयं किं साध्यं नति विद्याऽपुना यय ॥ १७५ ॥  
 अथ चिद्धमसामर्थाभ्यात्सर्वे पहसि घुवं ।  
 इदमद्दविन्नासात्थं ह्ययतऽद्वैतवादवत् ॥ १७६ ॥  
 यत्तच्छास्त्रिन् भवापत्ते नंतव कृपशास्त्रिन ।  
 विद्यत परबोऽप्रसं पयदति ययायथम् ॥ १७७ ॥  
 फय नानाविधं तथ विधिभरसपापम ।  
 तस्म्यरूपमजानाना जीवा दुरष्टय स्मृता ॥ १७८ ॥

उक्तं च—

“अल्प्यशक्तिर्मरिचिम्यताया इन्द्रियादिप्लुतार्थमिहा ।  
 अनीश्वरा नंतरहं विद्यात महत्य फाषेप्तिनि मात्तवाणी ” ॥१॥  
 “विभक्तिमृत्यानि तथा गमिष मासा नित्यं त्रिर वाँउति नाम्य माय ।  
 तथापि शान्ता भयकामकथा वृषा म्ययं तप्यत इत्यर्वाणी ” ॥२॥  
 अयं महाऽपि मन्नाय तस्मै यापन्यमन्यत ।  
 तस्मात्परममन्या म्नि संसारम्येहर्णी म्यिति ॥ १७९ ॥  
 न वाऽपि विनर्थाभून्वा निप्यग्युहविभूषित ।  
 मीमृतावप्र जीवानां प्रयास यममसगान् ॥ १८० ॥  
 रन्पत्त स्वगार्थाय मन्त्रिभागपरा भव ।  
 शम्निनाप्युन्वयारूढाः सणाभग प्रयादिन ॥ १८१ ॥



यया दर्पसमावेशाच्छ्रूयंते रावणादयः ।  
 भूत्वा चाप्रापन्नःपामा मृत्वा वा दुर्गतिं ययुः ॥ १८२ ॥  
 इयं कन्या ददावादी भेषिकाय महीमृते ।  
 भवतेऽप्य कर्षं दातुं सोऽभिता दुर्घ्नोमयात् ॥ १८३ ॥  
 न वार्यं स्राग्धर्मोऽस्ति संगराद्यत्पसायनम् ।  
 जीवनस्य कृते पीमान् कः पिबेदुर्घ्नोऽपिपत् ॥ १८४ ॥  
 वरप्रसीद स्वगाभीष्ट ममादं मा विधेहि भौ ।  
 गर्हितं तदिदं वाक्यं वक्तव्यं न त्वया क्वचित् ॥ १८५ ॥  
 इति सृष्टिमन्त्रःपुण्यैर्गुणितो चातिशीतलाम् ।  
 मासासुष्णतरां मेने विरहीष स्वगस्वदा ॥ १८६ ॥  
 ततस्ताभ्रक्षणः सौभार्त्स्त्रित्स्त्रस्फुरितापरः ।  
 उपसृष्टोपानस्रग्वासां स्वगो वाचमुदीरयत् ॥ १८७ ॥  
 दूतमन्योऽसि रे वास यस्त्वमभ्यागतो मृष्टे ।  
 अवध्याऽसि तदा नान्या गतिस्त्वाहक् भवस्य वै ॥ १८८ ॥  
 मस्तादेऽनुचितं वाक्यं पिठुं वैरवर्धनम् ।  
 पद्म लज्जसे दूत स्वामिकार्येभिनास्रकृत् ॥ १८९ ॥  
 वाच्यावाच्यं न वस्ति त्वं न वेस्ति च वसावसम् ।  
 कवसं वावदूक्षाऽसि पाष्टर्षे (वै?) नाटयनिष ॥ १९० ॥  
 मानुमुद्रासिर्तुं नालं यया हृष्टोऽपि कीञ्चिकः ।  
 वाचासुत्सं तथा दूत नाल वस्तुमिदं वचः ॥ १९१ ॥  
 जीरकः किमु हेमाद्रिं भेषुमुत्सहते मृष्टः ।  
 मृगाङ्गः भणिको नालं मामारापयितुं युधि ॥ १९२ ॥

यय विद्यापरा दूत श्रेणिका भूमिगाधरः ।  
 आवयार्चनसापथ्ये तुन्यता न फदाचन ॥ १९३ ॥  
 आल्फानाहलेनाल वत्त चार्चयपी भव ।  
 मया सार्धे युषित्पुर्ये स सर्वोऽप्यापानु वेगत ॥ १९४ ॥  
 इत्युक्त्वा रत्नशूल स स्थिता निभृतमानसः ।  
 समुद्र इव गर्भीरा निस्तरंगाऽप्यनादुमः ॥ १९५ ॥  
 अय निर्घोषश्चाक्षयमूषे जम्बूकुमारकः ।  
 पद्मसद्वननापतच्छंटा दोर्दृढविभ्रम ॥ १९६ ॥  
 रत्नशूल खगार्धीर यस्त्रयार्क समस्मरात् ।  
 दर्पाभारमहे मन्य तत्सर्वे हनुपाधितम् ॥ १९७ ॥  
 परनास्याऽपि विद्यामृदता भूगोचरण स ।  
 रापर्येण पलादव युद्धता सह सैन्यकेः ॥ १९८ ॥  
 शायसम्यापि विद्यत विपद्रावित्वर्मजसा ।  
 माऽपि जर्मरिता यानैरष्टा भूमी पतन्निह ॥ १९९ ॥  
 आश्रयैर्दं मयम्यम्य जातमापन मेन प ।  
 प्ररिताम्नद्रिपातापमुन्यातामिप्यता भग ॥ २०० ॥  
 मन्मर्तैर्दुमारण्या जम्बूम्यामी बन्वान्वित ।  
 मूर्धरमानतर्हीन गमे कुंतादिपि शिपः ॥ २०१ ॥  
 यावदंशुं कृतावीगा भयच्छाष्टगद्वरकः ।  
 शेष्यामूर्ध्वे कुमारण नीताम्ये यमप्रदिरम् ॥ २०२ ॥  
 मन्ममृति पृष्टम्य मार्गमः श्वान्यहतरः ।  
 पश्चात्स्ये कुमारः श्वान्यहतरा मन्ममृत् ॥ २०३ ॥

कियत्कासं कुमारण योदारो बलशालिनः ।  
 आतिथ्यं पमगेहस्य नीता दार्दिदधिक्रमै ॥ २०४ ॥  
 पौरुषं चक्रिमन्त्रास्त्रैराहास्यिन्नारकारकैः ।  
 अयं श्रेष्ठ किमप्यस्त्रैर्मृतस्यामरणैरिव ॥ २०५ ॥  
 अयं व्योमगतिर्ज्ञात्वा द्वौ मिथा योद्धुमुद्यतौ ।  
 कुमारस्यार्पयामास कृपार्णं निम्नितं स्वतः ॥ २०६ ॥  
 अथावीचत्कुमारं स नान्नाकाशमतिस्वदा ।  
 अपिस्त्रं विमानं धे पातयारिकुलं महत् ॥ २०७ ॥  
 भ्रुवं तन कुमारेण बाधा शस्त्रेण संदितम् ।  
 न स्थितं भ्रुविरंघ्रस्य बाधय चापि स्वगोदितम् ॥ २०८ ॥  
 सुहृदत्र स्थितेनापि किं किल प्राणरक्षया ।  
 मदानामाहं नूनमस्ति वैचुष्यबद्रपुः ॥ २०९ ॥

सकं हि—

“ ब्रह्मचारी(?) वृष नारी शूरस्य मरणं वृषम् ।  
 दातुं चापि वृषं सस्मी निस्पृहस्य वृष जगत् ” ॥ २१० ॥  
 दिदीपेऽवितरां तस्य हस्ते स्वङ्गस्रता तदा ।  
 दारितारिपल्लैः सिन्धुता यमजिह्वेव गित्वरी ॥ २११ ॥  
 यत्र कुर्यात्प्रहारं स स्वङ्गपाणिः कुमारकः ।  
 तत्रारिमस्तकस्तीमो न्यपतद्भुवि वेगतः ॥ २१२ ॥  
 असिद्धं तस्य रापातं कर्बन्तोऽनुकुमारकम् ।  
 सर्वे निरर्यन्त आता रत्नचूषस्य सैनिका ॥ २१३ ॥

ब्रह्मकायस्य सम्प्राप्तं रामांश्चाऽपि न भिषत ।  
 निर्मितस्मरमैन्वेषु क्रियपांगपातैरपि ॥ २१४ ॥  
 युद्धं कुरुते तत्रास्मिन् सावधानतयाह्व ।  
 स्यादु तत्पुरतः काऽपि न द्रष्टाक भटाक्षम ॥ २१५ ॥  
 यथा त्रिगुणकरभेका इति संतमस जवान् ।  
 समतापस्तथा साऽपि अघान रिपुसंहतिम् ॥ २१६ ॥  
 अयाप्रायसरे देवात्फनचिघ्न घोरिणा ।  
 मृगाकस्य घरणाद्यु गत्वा तत्र निबदितम् ॥ २१७ ॥  
 देव कथित्समायाना भवत्पुण्यविपाकनः ।  
 ननुसैन्यमहारण्य ज्वलद्वावानन्नापमः ॥ २१८ ॥  
 अधुना युद्धं करोत्येव निमृत्त सपति स्थित ।  
 इत मूनस्ति (मनति) नारीणां दूजयाञ्जल्पविग्रह ॥ २१९ ॥  
 स र्बपुत्रावर्षीयाभ्य मित्रा वा पूजन्मनः ।  
 भ्रष्टमपमाननापि त्वदृगा(ः) मूर्तिमानिव ॥ २२० ॥  
 अथवा धनिवस्याय कधिरीराप्रणीभट् ।  
 तस्यादन्नबन्नादन्न यार्दुं रारः मयागमन् ॥ २२१ ॥  
 पञ्चम्युक्तं वरणत्थ कणगावर्गा गते ।  
 रोमांषितो मृगाकाञ्चुदमूर्तरिव मिश्रित ॥ २२२ ॥  
 तन्मूर्त्तं स सत्ता भूदूर्तरतिदुः समम् ।  
 पातागाभरणप्रानपुटादने गगोरपि ॥ २२३ ॥  
 ईदुः संघ्रायभयध गामनान्मृगस्त्वमणः ।  
 कृत्तं युद्धस्य तर्गान्ये निमगाम पुगादिति ॥ २२४ ॥

ततो हुन्दुभिनिर्घोषै रत्नचूषोऽप्यनिद्रितः ।  
 ऋषिः प्रोषाभिना योर्धु कृतावः कोपितः क्रिष्ट ।  
 अथ द्वाभ्यां च सेनाभ्यामारम्भ युद्धसुखणम् ।  
 हाहाकारकरं रौद्रं कृतमीपपनिःस्वनम् ॥ २२६ ॥  
 दक्षिणो दक्षिभिः सार्धमश्वैरश्वा रथै रयाः ।  
 यथास्वं युयुधः सर्वे स्वगाथापि स्वगै समम् ॥ २२७ ॥  
 यावान्सर्वोऽपि संग्रायो याद्गमातस्त्वानयोः ।  
 यास्तां तद्दर्शनं तावन्नाप्युद्देश्युं समा वयम् ॥ २२८ ॥  
 केषिचिदीर्षवो यत्र गच्छन्निगितवारिधिः ।  
 हृद्योद्भदसंमिष्ठा नाशक्यू रिपून् बहन् ॥ २२९ ॥  
 यत्रोत्थिते सुरास्वातादंबरि रजसि स्थित ।  
 पद्भुष्टकारनादन ज्ञातः मतिमटैर्मदः ॥ २३० ॥  
 सैनिकाश्चसुरोत्पुङ्गवपूष्णीमिश्रयादितेऽम्बरे ।  
 दिनं रात्रीयते स्माथ गगनं वसुपायते ॥ २३१ ॥  
 ज्ञायते स्म मटो यत्र मिथस्वभ्रामदेशनात् ।  
 रवो रवांगचीत्कारैर्घट्यतंकारितैर्गमः ॥ २३२ ॥  
 कषिद्रजानां धीत्कारो ह्रस्वरोज्य वनुष्मताम् ।  
 मध्यचारे रेक्षरश्चब्दः प्रावर्तते कषित् ॥ २३३ ॥  
 कैश्चिद्भटैः परमथा मथा निर्मित्य सगरे ।  
 गजेर्गजा रथैर्मघा रथाः पौरैश्च पत्तयः ॥ २३४ ॥



तापन्मृत्तरपातेन धिरस्पनमताडयत् ।  
 अम्बुस्वामी महाबाहुः पिनेद्धः समरांगण ॥ २४५ ॥  
 ब्रह्मसंहननोपेता दुर्बया धीरकर्मणि ।  
 मयापृच्छन्मृगाकः स हास्तिर्ष स्वीयमाद्रात् ॥ २४६ ॥  
 कोऽप्यमापतिवो भूमौ वेगात्केन परामितः ।  
 ममधीस्तस्मिन्निवः सोऽयं न त्व धेत्ति कथं प्रभो ॥ २४७ ॥  
 विद्याधीर्षो मयद्रूप्यो रत्नचूलीज्यमात्महा ।  
 अम्बुस्वामिकुमारेण बाणैर्भर्भरितो ममम् ।  
 विमानाद्भूमिपानीता बद्धः स्पृशन्ममरे ॥ २४८ ॥  
 गार्हं स निगृहीतस्तु दौर्भनस्यं गता भृशम् ।  
 बद्धेऽस्मिन् सैनिकास्तस्य नेशुः सर्वे विष्टोविष्टम् ॥ २४९ ॥  
 ततस्ते त्वद्भटे रुद्धा आनीताः स्वामिनोऽन्तिके ।  
 सर्वे गच्छित्तमानाभास्तस्पुरेत्य इतीजसः ॥ २५० ॥  
 तृष्ठा भृगाकविद्यामृष्यक्र जपजपारपम् ।  
 सर्वे विद्याधरास्तत्र धूमूर्ध्वकुमारकम् ॥ २५१ ॥  
 धन्याऽसि त्वं महाप्राज्ञ रूपनिर्मितमन्मथ ।  
 साम्पर्मस्य धाम्भयमथ जातं त्वया कृतम् ॥ २५२ ॥  
 नेदुरानद्दूर्पाणि गर्भितानीष बारिषेः ।  
 मृद्गपटश्रीनि सैन्यं करस्युपतः ॥ २५३ ॥  
 बंदिबुद्धमपारार्थं चक्रुरान्तश्चास्मिनः ।  
 वर्णयेता महावीर्यं कुमारस्य जयावहम् ॥ २५४ ॥

व्योमगतिश्च सानंदात्कारयामास तत्सणे ।

प्रीतिवर्षनमत्यंतं अंबुस्वामिमृगांक्यो ॥ २५५ ॥

अयो लब्धः कुमारिण जानुर्लपितबाहुना ।

सहस्राष्टमितान् इत्या स्त्रीलया स्वचराधिपान् ॥ २५६ ॥

एक एव सदा सेव्यो धर्मो सौख्यमपीप्सुभिः ।

यदिपाकात्कुमारेण अयभीः किंफरीकृता ॥ २५७ ॥

इति श्रीनम्बुस्वामिचरित्रे मगधम्भीपत्त्रिमतौर्यकरांपदेशानुसरित

स्याद्वादानवपगवपविषाषिशारदपण्डितरत्नमञ्जुविरचिते

साधुपासात्मसंसाधुटोडरसमम्यर्थिते निर्दितरत्न-

भूलविषाघप्रतिबद्धम्बुस्वामिचि-

त्रयवर्णन नाम सप्तम सर्ग ॥८॥



## अथाष्टम सर्ग



विजयस्वेति सद्वाक्यं पठित स्वपुरोषसा ।  
 माळाभिश्च विभेहि त्वं मूर्ध्नि श्रीसाधुटीकरः ॥१॥ इत्याशीर्वादः ।  
 विमलं विमलज्ञानं संस्तुषे विमलाक्षयः ।  
 छन्दाभगः अनंतं चानंतबीयाक्यं (नान्तबीयाक्यं) बंदेऽनंतगुणाक्षये  
 अयापदमकुमारः स बीमत्सामाहपाबनिम् ।  
 माषयामास कारुण्यादनिस्पां संसृतिस्वितिम् ॥ २ ॥  
 अहो वैद्विषंसंयोगादुष्पीभूतं बलं कश्चित् ।  
 तस्मिन् द्रव्यं गुणापेक्षं क्षीतलं न स्ममावतः ॥ ३ ॥  
 बस्त्रिष्टां ज्ञानबन्धिष्य विगिमां संसृतिस्वितिम् ।  
 अमी दुर्बोधमानांषा मृत्वा वा दुर्गतिं ययुः ॥ ४ ॥  
 हृषीकृनिपयासक्ता केवलं मृतिमगस्ततः ।  
 म्वयमेत्य पतंगम ययागाद्विरोधिपि ॥ ५ ॥  
 अहो कर्षधित्संमाप्त....प्राभापि न द्वात... ।  
 ( मृत्यु ) त तृप्पाद्वद्वै ते जायन्ते विपयाः स्वतः ॥ ६ ॥  
 आपाक कटुकं यस्य क्लिपाकस्य तरोः फलम् ।  
 त स्वादु बीजं भविदुमर्हति ॥ ७ ॥  
 अथ विद्विपयाचानां संमाप्ता य ह्यस्तं स्वतः ।  
 न्यायात्कथं क ... धियस्कराः स्मृताः ॥ ८ ॥

इदमप्रोषितं किञ्चिद्यत्तञ्जातं निसर्गतः ।  
 आदानसदृशं कार्यं दुःस्वनत् ॥ ९ ॥  
 परं किञ्च महर्षिभ्यं यदमी ज्ञानज्ञास्त्रिनः ।  
 कैश्चित्तानपि सेवते परलोकजि... ॥ १० ॥  
 भद्रो कोपि भद्रो मोक्षो दुस्त्याभ्यो महतामपि ।  
 यस्यानुमानतो अतुरास्त्रीयं मनुते परम् ॥ ११ ॥  
 ( मृगा ) मरीचिकां पातुं शक्येत्याद्यु अस्त्राश्रया ।  
 तथा तथा समज्ञानादीदृश विषयात्सुखम् ॥ १२ ॥  
 यथा पश्य... .. कं कंसुकं काशक्यमली ।  
 तथार्यं विषयात्सौख्यं मिथ्यापतमसां ततः ॥ १३ ॥  
 यथा वा बहिष्ठात्यर्यविषनं सिपति व्रुतम् ।  
 तथा वृष्णापश्चात्पर्यमङ्गः स्याद्विषयोन्मुत्तः ॥ १४ ॥  
 अथवास्तमत्वं तेन पाठयेन वृथापतः ।  
 कूर्पतापि परादेशं निग्नता स्वात्मनो हितम् ॥ १५ ॥  
 दृष्ट्वापि पतता गर्ते वृथा किं तेन चक्षुषा ।  
 दृष्टता विषयादीम् तर्कि ज्ञानेन माह्वाम् ॥ १६ ॥  
 जानतापि मयाकारि हिंसाकर्म महत्तरम् ।  
 तत्केवलं प्रमादाद्वा यद्रेच्छता यद्यमयम् ॥ १७ ॥  
 प्राप्नान्तेऽपि न हंस्य' प्राणी कश्चिदिति भ्रुतिः ।  
 मया चाष्टसहस्रास्ते हता निर्दयचेतसा ॥ १९ ॥  
 आफलोदयमेवैतत्कृतं कर्म शुभाशुभम् ।  
 शक्यत मान्यया कर्तुमातीर्षाधिपतीनपि ॥ २० ॥

यत्स्फाटिकां मणिं स्यच्छ स्वभानादिति भावतः ।  
 सोऽप्युपापिबलाद्ब रक्तपीतादिकां ब्रजत् ॥ २१ ॥  
 तथाय चित्स्वभावाऽपि जीवोऽष्टीन्द्रियसौख्यवान् ।  
 पच मानादिनानास्वद्विपादिह कर्मणाम् ॥ २२ ॥  
 कुर्बन्नासाश्च नामित्यमास्त यावत्कुमारकः ।  
 संसक्तस्तानदुर्बैस्त रत्नचूसादिभिर्नृपैः ॥ २३ ॥  
 अहो द्रव्याभयस्याश्च गुणा निर्गुणसप्तगाः ।  
 अस्त्यनिर्भचनीयाऽप्यं गुणबाध गुणस्त्वपि ॥ २४ ॥  
 यत्परं परसाहाय्याश्चयाश्चपि मदोद्धताः ।  
 असहायबलस्याश्च निर्दिण्णो विजयीभवन् ॥ २५ ॥  
 पिना श्युतद्रुमं कोऽत्र फलित्वा याति नम्रताम् ।  
 श्रुतं महादृष्टः सौम्य का विमित्य श्रमं ब्रजेत् ॥ २६ ॥  
 इत्यासापे मियस्तैषां स्वामी रत्नधिसद्विषाम् ।  
 ऊच गगनगत्यास्यो लग्नाकस्मिन् स्वतः ॥ २७ ॥  
 स्वामिन् जम्बूकुमार त्वं यान्छुदैः प्रसि भीरवा ।  
 अनेनापि मर्गाकेन कृतं तावत्स्वपौरुषम् ॥ २८ ॥  
 तत्केन वर्गिर्दु स्वामिन् प्रकथते स्वपुरोऽप्युना ।  
 पर बीरैरपि श्रुत्वाभ्यं भुतमप्यज्ञतो मया ॥ २९ ॥  
 भुत्वा तज्जातकोपः स रत्नचूलीऽवदत् क्रुधः ।  
 असहिष्युरतिक्रांती मिथ्यावादातिमारतः ॥ ३० ॥  
 न तत्पराभयान्मून दुःस्वमाप सगाधिपः ।  
 यन्मुपाहंकृतस्तत्र मृगाकबलसंभ्रमात् ॥ ३१ ॥

उक्तम्—

“ नागुणी गुणिन बेचि गुणी गुणिपु मत्सरी ।  
 गुणी च गुणिरागी च विरसः कोऽप्यहो महान् ॥ ३२ ॥ ”  
 अहा व्योमगते धीमन् षक्तव्यं न मृषा षच ।  
 स्वपुष्यै रचित वक्ष्यासुतश्रेस्वरसन्निभम् ॥ ३३ ॥  
 स्वामिमन्मूढुमारेण केवलं निर्जितो बलः ।  
 अमस्येऽपि मदीयोऽप्य प्रचङ्गुजविक्रमात् ॥ ३४ ॥  
 नामविष्यदयं वीरशैक संग्रामसंकटे ।  
 यदकरिष्याम्यह नूनं तद्द्रस्यस्त्वमंजसा ॥ ३५ ॥  
 क्व सस्त्रैस्त्रैश्च विधारापनसापनै ।  
 पदातयाऽप्यलं इतुं स्वाह्ना मामका भमी ॥ ३६ ॥  
 बलपानबन्धे सञ्जी ययागादुपहास्यताम् ।  
 पञ्चिनापि इतो दीनो विलसो न तथापरः ॥ ३७ ॥  
 यया बारिशिरर्ष्छ्द्री सायको निहते शिवे ।  
 लापबं प्राप लप्तीऽपि मृतोऽपि न तथा शिव ॥ ३८ ॥  
 गौरंभं किंच वेदस्ति युष्मदादिषु सांप्रतम् ।  
 नष्टं न किञ्चिद्द्यापि विद्यमानतयाबयोः ॥ ३९ ॥  
 तावत्तिष्ठेत्कुमारोऽसा मध्यस्यः फौतुकी यया ।  
 सासात्कारीव युष्माभिर्बुद्धमय विधीयताम् ॥ ४० ॥  
 बाक्य रत्नशिल मृष्वन मृगाङ्गुमुदुप धुषम् ।  
 मयिताऽपी पनस्त्रुणे मृते धूमध्वज न किम् ॥ ४१ ॥

अस्त्वस्तु प्रमाणं यद्रत्नचूल त्वयोजितम् ।  
 हेनो ( ह्यः सह ) लक्ष्यते ह्यमा विभुदि श्यामिकापि वा ॥ ४२ ॥  
 अर्घुनेव महापुद्गमायोरुचितं पुन ।  
 बिलषं मा कांसी ( कार्पी ) क्षामात्पिनडा भवसगर ॥ ४३ ॥  
 कातराणां विभिर्भेप स्वीकृतः सावसाक्षिकः ।  
 महतां हि मतिर्भैव नियमो यावज्जीवनम् ॥ ४४ ॥  
 इति मियो बाधसंदमात्स्पातां योर्दुं समुपती ।  
 कुमारस्तु यथास्याने तस्यौ बाधंयमीव सः ॥ ४५ ॥  
 बितितं तत्कुमारैश्च किमत्र क्षित्यसञ्जुना ।  
 मूषार्द्रयोपवामार्घ्यं माध्यस्थ्यं मम सुंदरम् ॥ ४६ ॥  
 पाग्यापि मूर्गाकं श्वेतद्वसस्यापि क्षापयम् ।  
 स्यापवस्त्रद्विपत्तीऽस्मि विपत्ती रत्नचूलकः ॥ ४७ ॥  
 रत्नचूले निपिद्धेऽस्मिन्नवश्यं स्यात् ( शुगौ ) श्रौरवम् ।  
 स्वार्थोत्कर्षं हि पुष्पाति विद्वापारापितो रिपुः ॥ ४८ ॥  
 अधानम्य कुमारं तं मन्यमानो यथा गुरुम् ।  
 रत्नचूलमूर्गाकौ द्वौ संसज्जौ यमता रण ॥ ४९ ॥  
 नैदुः संग्रामभेर्यथ सन्मुखं दृढयोर्द्वया ।  
 सभदास्तौ मद्यः सर्वे सावधाना रण पुनः ॥ ५० ॥  
 पूर्ववचुसुसं पुदं चक्रुर्द्वयोऽपि सैनिकः ।  
 दृष्ट्वा तं शौरवाकारं केचिन्मूर्च्छां गताः क्षणात् ॥ ५१ ॥  
 कश्चिदेवं समासम्य कुर्वति स्म महाव्रतम् ।  
 धितै घृष्टैश्चैव पातयंतोऽरिर्मंडलम् ॥ ५२ ॥

नागस्तत्र ह्वा नागा अम्बरारनिपादिन ।  
असिङ्कृतन्नरापातः पद्मेधापि पदातिक्रम ॥ ५३ ॥  
कारयामासदृष्टुर्दं साहकारो परस्परम् ।  
रत्नपुष्पमृगांको द्वाविध रावणराघवौ ॥ ५४ ॥  
शरासारस्तदा युद्ध द्वाभ्यां कृतमिषात्वणम् ।  
न काऽप्यत्र द्रव्यामप्य मित्ता वाय परानितः ॥ ५५ ॥  
तत्क्रुद्धा रत्नचूनाऽसौ मायाशुद्धमचीकरत् ।  
मृगांशुस्त्वत्त्रिषापार्ग सावधानाऽमरत्तदा ॥ ५६ ॥  
पांशुभिः सकर्तुं सैन्य स चक्र व्याकुलं तदा ।  
बायव्याश्रय मगांकाऽसौ शशाम सणतो रज ॥ ५७ ॥  
अथ रत्नद्विलेनापिस्तदा वानमकीलेया ।  
प्रवृत्तलिप्त मृगांकस्य सन्य सर्वे सणादपि ॥ ५८ ॥  
मगांका जल्पपृष्ठा वसिर्वापपदितस्ततः ।  
इत्यादि मुचिर माऽपि परिणा युयुध मृगम् ॥ ५९ ॥  
नागपाशस्तता बद्ध्वा मगांकं बभूवचरा ।  
रत्नपुष्प स्वगेष्ठानो सतुष्टुदयाऽमपत् ॥ ६० ॥  
तताऽसौ निजपीमून्वा पद्मवा घ इहर्षपने ।  
कुञ्जलं गेतुक्कामोऽपि धारितः स्वामिना भक्षम् ॥ ६१ ॥  
रे रं मूढ क यासि त्वं नीत्वेन प्रगसाऽनम् ।  
मपि निषति मृपीठ का हि द्रष्टुमविक्षमः ॥ ६२ ॥  
क सम क्षपमूर्द्धस्थमादातुं मणिमुत्तमम् ।  
कालवक्त्रादिहात्मानं को वा प्रातुं समीहिते ॥ ६३ ॥

पाणिना वा महामरुं कथासयिमुपिच्छति ।  
 स्वप्सा वा सिदश्यायां कथाहाप सुख व्रजत् ॥ ६४ ॥  
 तथा त्वं मामतिक्रम्य भद्रं यास्पसि सघनि ।  
 इदमेव महधिभ्रं व्रीटया नापृतां यतः ॥ ६५ ॥  
 यदस्यैवं कुमारैःस्निन् जम्बूस्वामिनि सगरे ।  
 सन्मुखीभूय सन्तस्यां यार्द्धुं रत्नशित्वस्वदा ॥ ६६ ॥  
 अपोषाच कुमारोऽसौ रत्नचूळ स्वर्गं प्रति ।  
 आवाभ्यां केशळं युद्धं विषय किमयापरै ॥ ६७ ॥  
 तत सर्वांसमुत्सार्यै सैनिकांश्च महाभयान् ।  
 दाषेन तस्वतुः सञ्जौ कर्तुं सग्राममुपगतौ ॥ ६८ ॥  
 ततो युद्धमभून्नोर इयोः घञ्जैश्च दारुणैः ।  
 नामाविषैर्महावीर्यैरन्योन्यं बधकांसिणाः ॥ ६९ ॥  
 मुषोश्च रत्नचूळोऽसौ नागाश्रं स्वामिन प्रति ।  
 न्यक्कृतं तत्कुमारिण मारुदाक्षेण तस्मिणात् ॥ ७० ॥  
 पुनः कौपोपरक्तः सन्नप्रिवार्णं ससर्भं सः ।  
 मञ्जुसाम तदा वेगाच्छुमारो अलक्ष्मिणिः ॥ ७१ ॥  
 पुनस्तौमरघातेन हतौ रत्नशित्वो यदा ।  
 तदा हंतुं कुमार स चक्रं अग्राह बाहुना ॥ ७२ ॥  
 यावन्मोक्तुं स शक्नोति चक्रं रत्नशित्वः स्वगः ।  
 तावद्गाल्कुमारिण सितौ बाणा अपात्रिणौ ॥ ७३ ॥  
 तन बाणेन तच्चक्रं संद्वितं तीक्ष्णवेतिना ।  
 न्यपतचक्रभः स्वधि बिभ्रुद्पातादिश्च द्रुतम् ॥ ७४ ॥

तडाताच्छूर्णमानार्गं नार्गं धीक्ष्य स्वगेश्वरः ।  
 मूमावधतवारासौ कुंतइस्वभ्र कापवान् ॥ ७५ ॥  
 ताषञ्जम्बूकुमारिण क्षणादुर्ध्वीर्यं हंतिन ।  
 इत्या मुष्टिमहारण पातित पृथिवीतल ॥ ७६ ॥  
 त्यक्तमानघनः साज्यं नीबभारोप्य हंतिनि ।  
 रत्नचूलः कुमारिण बलाढ्या स्वगाधिराट् ॥ ७७ ॥  
 वदसौ मुमुषे तूर्णं मृगाकं वचनालपात् ।  
 व्यभ्रे व्याप्ति शरत्काले यथादित्यो घनात्यये ॥ ७८ ॥  
 पुष्यवृष्टिं सुरास्तेजुः कुमारजयशंसिनः ।  
 विश्वो बुद्धमिनादिन पूर्यतो नर्माङ्गण ॥ ७९ ॥  
 चक्रुर्नयजयारावं सर्वे तं शिदृश्यादयः ।  
 अहा पुष्यदुमात्स्वाद्दु फल सर्वा हि संपदः ॥ ८० ॥  
 अय प्रवेशयामासुः कुमार केरुर्भा प्रति ।  
 तीर्यभिक्रमहानार्कं मृगाकं विक्षितीश्वरा ॥ ८१ ॥  
 यदाप परमानन्दं स्वगा व्यामगतिस्त्वदा ।  
 स्तोतु न शक्यते सर्वो निरवज्ञपतया यथा ॥ ८२ ॥  
 अय पौरस्त्रियस्त्वत्र पीनस्वनमरानताः ।  
 भिक्षिपुः सुमनान्पुष्यः कुमारमत्तुरागतः ॥ ८३ ॥  
 काभित्यौरांगनास्त्वत्र जगत्पुत्र परस्परम् ।  
 काभित्त्नर्मगन्नाद्रीर्ति गार्यति स्म मुदान्विता ॥ ८४ ॥  
 सत्वे दधय मामाशु नास्त्रा जम्बूकुमारकम् ।  
 इच्छया निर्जिता येन रत्नचूलस्वगाधिप ॥ ८५ ॥



काचिद्दृष्टिं पन्थोऽथ जीपाधिरतरं जयी ।  
 मस्माकं येन सौभाग्यं रक्षितं निघ्नता रिपून् ॥ ८६ ॥  
 मही मिनपती चन्था साईशासस्य भायिनी ।  
 दक्षमासान् यया गर्भे भृवाऽथ सिंहनिक्रमः ॥ ८७ ॥  
 पन्थः स भेणिको भूपो यस्यैतादृग्मद्योक्षम ।  
 एकऽप्यस्य सप्तसार्था ययन्ता मानहानये ॥ ८८ ॥  
 अप्यापममहाधीर्ध्यां धीर्मां षण्णिकुमुतैः कृताम् ।  
 पश्यन् स्वापी जगापाम्भु वोरैर्षं नृपमघनः ॥ ८९ ॥  
 तत्र शोभातिद्वायित्वां निवृत्तं षण्णिमौक्तिकैः ।  
 दर्शं दर्शं कुयाराऽसौ क्षणं तस्यां स कातुक्षी ॥ ९० ॥  
 ततः घनैः घनैर्गच्छन् प्रविष्टो नृपमंदिरे ।  
 आत्मन्दन् भगवतार्नवं मौन्दर्यं (प्य) सुषांशुभिः ॥ ९१ ॥  
 नीत्वा तत्र मार्गाकस्ते क्रियां सन्मज्जनादिकाम् ।  
 वचितां दासपञ्चके मधयाहीतमत्सर ॥ ९२ ॥  
 सर्वं यद्रसबन्धोर्ष्यं मृदुस्त्रिर्षं सुषामनम् ।  
 मृगांशोऽप्यर्पयायास मुक्तये स्वामिनः पुरः ॥ ९३ ॥  
 मुक्तं जम्बूद्वारेण नानाभ्यजनसंस्कृतम् ।  
 भौमर्न स्वाद्दु संमिष्टं पूर्णं पुण्यफलादिषत् ॥ ९४ ॥  
 ततः कर्पूरतांशुसैर्भदनादिद्रवैरपि ।  
 अर्चिताऽसी मृगांशु प्रीत्या सत्कारगौरवात् ॥ ९५ ॥  
 भयं मर्ष्यसमं स्थित्वा कुयारं ककुणापरं ।  
 कारामयाभुमाधार्तुं रत्नपूर्वं स्वर्गेश्वरम् ॥ ९६ ॥

अपि च कौमसासापै सूक्तिसंदर्भगर्भितैः ।  
 स्वर्ग संतोषयामास कुमारो मारगौरवः ॥ ९७ ॥  
 जयपराजयौ स्यातां कुर्वतां युद्धमाह्वये ।  
 विपाद स्वर्ग मा कर्षीधर्म पुसां निसगतः ॥ ९८ ॥  
 गच्छ गच्छ यथास्यान स्वसन्नन्यपि निर्भयात् ।  
 बट्टितम् परीमारैः स्वीयैः स्वीयसुखाप्तये ॥ ९९ ॥  
 अबादीद्रत्नचूषोऽपि कुमारं प्रति मार्दवात् ।  
 स्वामिन् गत्वा त्वया सार्धं द्रष्टुमिच्छामि श्रेणिकम् ॥ १०० ॥  
 स्थित्वा तत्र कुमारेण केषुचिद्वासरेषु च ।  
 ततो विमानमारुह्य प्रस्थितः श्रेणिकं प्रति ॥ १०१ ॥  
 प्रतम्येऽस्मिन् मृगांक्षोऽपि प्रतस्य सकलभक्तः ।  
 आदायोद्दाहितुं कन्यो तां विश्वासवतीं सतीम् ॥ १०२ ॥  
 तथाः सार्धं समादाय रत्नचूषोऽपि मक्तिमान् ।  
 पलति स विमानैः स्वैरमा पंचसतैः शुभैः ॥ १०३ ॥  
 स्वर्गो गगनगत्यास्स्यो मुदा निर्भरमानसः ।  
 अन्वगात्स कुमारं तं स्वविमानमधिष्ठितः ॥ १०४ ॥  
 अलक्षकुर्दिशां चर्कं विमानैर्घ्योपगा इमे ।  
 क्रिमेतदिति भूपासैराकुलं बीक्षितं जघात् ॥ १०५ ॥  
 ते सर्वे सङ्कुमाराश्च संसिद्धैः कुरसापसम् ।  
 यथास्ति श्रेणिको भूपो राममदलमंदिनः ॥ १०६ ॥  
 अयोधीर्यं विमानानि स्यापयित्वा नभोज्जगे ।  
 आनताः श्रेणिकं सर्वे ते मृगांकादयः स्वगाः ॥ १०७ ॥

भ्रूणिहोऽपि ततस्तूर्णं समुत्थाय निजासनात् ।  
 आसिद्धिं कुमारे तमुत्सृज्य परमादरात् ॥ १०८ ॥  
 साधु साधु मया ह्येते यच्चिरादपि मां भवन् ।  
 स्वयि ह्येते परान् ह्येषां जातो मे हृदि सप्रति ॥ १०९ ॥  
 ततो गगनगत्यान्पस्तद्वृक्षात्तपशीकृतम् ।  
 यथाहृतं द्वयोरिव तक्षया भेषिकं प्रति ॥ ११० ॥  
 ततोऽसौ दर्शयामास संग्रया हस्तसंग्रया ।  
 तक्षयामभिष्टिष्टं सा तं तं व्योमगतिः स्वगम् ॥ १११ ॥  
 एष देव मृगाहोऽयं ददां तं तनयां निजाम् ।  
 एपास्य महती माया नाम्ना स्यान्वासतीसता ॥ ११२ ॥  
 एष रत्नचिर्त्सा नाम्ना म्यातो विद्यापराग्रणीः ।  
 निर्मितो यः कुमारेण बुर्जया महतामपि ॥ ११३ ॥  
 भुत्सेवं तन्मुत्सातामा न क्षमे निर्हृतिं पराम् ।  
 यया चर्तुर्ये सिधुर्दिवाप सहासता ॥ ११४ ॥  
 स्तुतिं चक्रे कुमारस्य भेषिकस्य सुदुष्टेभुः ।  
 निसगान्मुदुभापित्वं राशिं वृषकर्ता न किम् ॥ ११५ ॥  
 परिणीताप मृगाहस्य तनया सा परीक्षिता ।  
 या विभासपती नाम्ना भ्रूणिहस्य कृतप्रविता ॥ ११६ ॥  
 तवधोद्गहकस्याणे नृस्यं तेजुः स्वगेश्वरा ।  
 कामिन्यां गजगामिन्यो गार्यति स्म सर्वगसम् ॥ ११७ ॥  
 मन्त्रीप्राचीं द्वयोश्चापि रत्नचसुमृगाकयाः ।  
 मियः कारापितस्तेन भ्रूणिकन महामसा ॥ ११८ ॥



- बर्षर्षक्तिं निरीक्षस्व सरस्तीरपु सुदरि ।  
 स्वत्कृताळबिनी मासा यथा (सु) स्वमनसां त्वयि ॥ १३० ॥  
 इतश्चक्रयुगं पश्य चकारासि विलसताम् ।  
 गर्तं स्वद्वन्द्वं भीक्षुषु चन्द्रोदयविशङ्कया ॥ १३१ ॥  
 घातकश्चनिमारोद्रे शृणु स्नेहानुकारिणीम् ।  
 रट्यं परममीत्या बहुधाऽपि मियं मिय ॥ १३२ ॥  
 ममरीं पित्रां पश्य सुग्ने श्रुतद्रुमावलीम् ।  
 तत्र कर्णावर्तसाम्यां स्पद्यमानां सुफोरकैः ॥ १३३ ॥  
 शुभद्विरपहृन्दानि पश्य पश्य घनांतर ।  
 स्वद्वन्द्वस्वोपकराणि सिस्तितान्यसराणि वै ॥ १३४ ॥  
 दुराददी बन् पश्य कफिककंदारवाकुलम् ।  
 सेमारजयपाक्षीर्णे घनागममुर्षकया ॥ १३५ ॥  
 इतः पश्य सराजासि मकुल्लेन्दीपरानने ।  
 श्याममानां द्विरेकैश्च स्वदाननभिहासया ॥ १३६ ॥  
 अयि पश्यपितां बह्वीमसमाचरतां नय ।  
 स्वम्बुदुकरसंस्पदां कुर्वती स्वदक्षैरिति ॥ १३७ ॥  
 काठे कातिशुपथान् पश्य सुमनसां चपान् ।  
 स्वम्बुस्वामादमादाय वपतः मियसुचमाम् ॥ १३८ ॥  
 इतिममृतिमागार्णां श्यामां सवशयमपम् ।  
 मियाय भ्रूणिको भूय प्राय राजसृष्टं पुरम् ॥ १३९ ॥  
 तत्राप्युपवने भीमान् सज तस्यां ससंनिधौ ।  
 वन्द्याय मुनिं नाम्ना सांपर्मे धर्मवत्परम् ॥ १४० ॥



## अथ सप्तमः पर्वः ।

यवतु भावशुद्धयर्थं स्वभाषो भवहानये ।  
 धर्मं धर्मफलै रागस्तप भीसाधुद्वैवर ॥ १ ॥ इत्याशीर्वादः ।  
 धर्मनाथं स्तुवे धर्मतीर्थेण धर्मसिद्धये ।  
 शान्तिनाथ पुनर्नीमि शान्तये चाष्टकर्मणाम् ॥ १ ॥  
 अथ जम्बूद्वीपेण विहितं निजमानसै ।  
 कुतः पुष्पादयादेकन्मया सूर्यं यज्ञोपनम् ॥ २ ॥  
 तत्सर्वं यज्ञयात्र्यष्टुपागती मुनिसनिधौ ।  
 तं प्रणम्यापविष्टश्च विनयावनताननः ॥ ३ ॥  
 भी मुने कृपया किञ्चित्कृद्दि मे सद्यश्छिन्दे ।  
 कोऽहं कुतः समायातः कस्मात्पुण्यपिपाकतः ॥ ४ ॥  
 जन्मांतरस्य वृत्तार्तं ज्ञातुमिच्छामि त्वन्मुखात् ।  
 स्वप्नोपेसापरः स्वापिन् निस्पृहः सुखदुःखयोः ॥ ५ ॥  
 अत्रै मित्ते समानस्त्वं जीवने मरणे समः ।  
 स्तुतिर्निदासमः सौम्यो वास्यां वा हरिर्षदने ॥ ६ ॥  
 स्वं निस्वारी भवावर्तार्थं मुने भक्तवत्सलः ।  
 जीवन्मुक्तस्त्वमवाप्ति कृपालुः सर्वगतपु ॥ ७ ॥  
 अयोबाध मुनिर्नाम्ना सौषमो धर्मदेशकः ।  
 मृशु वत्स पदेवै(ः)ऽथ वृत्तार्तं पूर्वजन्मनः ॥ ८ ॥





भूपतिस्तथ नास्त्रापि सुमतिष्ठ\* पतिष्ठ ॥  
 जैनपयसराशासिं शुम्भितु पदस्त्रोपय ॥ २० ॥  
 माया रूपमती तस्य नास्त्रा धर्मसमन्विता ।  
 पट्टबद्धा सुव्रीहाख्या सौन्दर्यगुणशालिनी ॥ २१ ॥  
 भावद्वयचरा ज्ञायान् यास्य भूत्वाऽपरा दिवि ।  
 भूत्वा सागरचंद्रश्च सोऽप्य तस्य सुताऽग्नि ॥ २२ ॥  
 सौधर्म इति नास्त्रापि राक्षः म्यातः स बंधुना ।  
 क्रमाद्बुद्धिं समासाय जातो निःश्रयश्चास्रवित् ॥ २३ ॥  
 कुमारामस्यया यावत्तिष्ठस्त्वह्नुसदीपक\* ।  
 अयान्येषुः स पार्श्वीद्वः सुमतिष्ठः कस्तत्रयुक्त ॥ २४ ॥  
 समवादिच्छति भूमिं माता वीरस्य बंदिहम् ।  
 वर्द्धमानमुत्सात्तत्र भूत्वा धर्मोपद्वयनाम् ।  
 सद्यद्योत्पन्ननिर्वेदी भोगेभ्यश्च परान्मुखा ॥ २५ ॥  
 धामयामास स्त्रै विष्टे संसारासारतां चक्षाम् ।  
 सपिकृत्स्नादनादीनां वारिषुद्भुदसभिमाम् ॥ २६ ॥  
 दीप्तां जग्राह नैर्त्रेयीं स्वर्गमुक्तिमुत्सवदाम् ।  
 सर्वसंगविपुक्तात्मा हानये चाष्टकर्मणाम् ॥ २७ ॥  
 द्विपसैः कृतिभिर्भिष्टुः भ्रुतपूर्णाऽभवन्मुनिः ।  
 गणपरस्तुयो जातो वर्द्धमानजिनंश्चिनः ॥ २८ ॥  
 सौधर्मोऽपि तथा पश्चाद्दीक्ष्य तं गणनायकम् ।  
 आत्मसंबगनिर्वेदं प्रववाम महामुनि\* ॥ २९ ॥  
 क्रमात्सोऽप्ययश्चतस्य पंचमो गणनायकः ।  
 सोऽहं मुषम्मनामा स्यां भवद्वावृषराऽधुना ॥ ३० ॥



अवस्थय क्व तं वत्स वयोस्त्रीभानुसारिणी ।  
 क्लृप्तं दीक्षाभ्रम सौम्य दुर्दरं महतामपि ॥ ४२ ॥  
 अथ चत्सर्बपात्कृता वर्तते तप चेतसि ।  
 एकत्र स्वष्टौ गत्वा कुरु कृत्यं मयादितम् ॥ ४३ ॥  
 बंधुवर्गं समाहूय समापृच्छपाय गौरवात् ।  
 समाधानतया कृत्वा संतर्भ्यं च परस्परम् ॥ ४४ ॥  
 पश्चाद्गृहाण नैर्घ्रिणीं दीक्षां कमक्षयंकराम् ।  
 एष भ्रमः समाज्ञायास्स्वीकृतः पूर्वस्वरिभिः ॥ ४५ ॥  
 भ्रुत्वा जन्मूकुमारोऽसौ प्राक्त सौभर्मसुरिणा ।  
 धितयामास स्व विते किं कर्तव्यं मयायुना ॥ ४६ ॥  
 वेत्सघनि न गच्छेयमहं स्वात्महटादिह ।  
 गुराराज्ञाविर्साप स्यात्स न भ्रैयस्करः स्वतः ॥ ४७ ॥  
 तताऽवदयं हि गंतव्यं मया स्वात्मास्य वशात् ।  
 पश्चाद्गत्वा दीक्षां तां गृहीष्यामि तपोन्विताम् ॥ ४८ ॥  
 निधित्येतन्नमस्कृत्य गुरुं सीषमसंज्ञकम् ।  
 जन्मूस्वामिकुमाराऽसौ भगामाशु निजास्यम् ॥ ४९ ॥  
 गत्वाय त्वरितं तप वार्तां जिनमतीं प्रति ।  
 निश्च्छद्यतः स्वधित्तीर्थां सर्वां तामप्यधीकवत् ॥ ५० ॥  
 मातमून धिमान्निहि निधिष्णाऽह मवाद्रिति ।  
 इत पाणिपुत्राहारं कर्तव्यं मयक्व ( हि मया ) द्युधि ॥ ५१ ॥  
 चक्षुषे भ्रुतमाश्रेण माता जिनमती सती ।  
 पवननरिता बेगाद्धिमदग्नेव पथिनी ॥ ५२ ॥

अहो पुत्र किमास्यात् वज्रसंपातनिष्ठुरम् ।  
 कारणं किमकस्मात्स्यादत्र कार्यनिदर्शने ॥ ५३ ॥  
 अप्रोचरप्रदानेन समाधानचिकीर्षया ।  
 कथितानि कुमारैण मुनिवाक्यानि तानि वै ॥ ५४ ॥  
 मृत्वा गिनमती तस्माच्चन्द्रनांवरनाथिकम् ।  
 पर्यभुद्धितया किञ्चित्समाधानमुपाददे ॥ ५५ ॥  
 साहसासाग्रतः सर्वे कृत्वांत गदति स्म वै ।  
 धरमांगी कुमारीज्यं जैनीं दीक्षां निवृत्तति ॥ ५६ ॥  
 अहंसासो विश्वम्यैतन्मूर्छां प्राप्तः क्षणादिति ।  
 महामाहोदयादेव हाहाकारं रट्यमिति ॥ ५७ ॥  
 ततः कथञ्चित्सीपायैरुत्थितोऽपि वणिक्पति ।  
 बिलछाप यथात्यर्थं तथा को वर्णयेत्कथिः ॥ ५८ ॥  
 अहंसासेन तस्मिन् कथिद्राग्मी विश्वक्षण ।  
 मेपितस्वत्कर्यां प्राकृतं वार्द्धिदत्तादिसद्यनि ॥ ५९ ॥  
 आदिष्टस्वरितं गत्वा स सदेष्टाहरः सुभीः ।  
 सर्वं निवेदयामास यथासर्वसमस्तकम् ॥ ६० ॥  
 अहो दुर्दैवमस्माकं यद्युप्यत्समसज्जनाः ।  
 प्राप्ताश्चापि वनप्राप्ता बिभ्रकर्मोदयादिह ॥ ६१ ॥  
 आकर्म्येदं वचस्तीक्ष्णं दुःस्वदं क्षत्रपातवत् ।  
 भीष्टुनस्व महाभीतेश्चत्वारोऽपि चक्रपिरे ॥ ६२ ॥  
 द्रवंति स्म शुचाक्रांताः क्षणं विस्मिन्नमानसा ।  
 किमन्यत्र कुमारीज्यमुद्रैर् कर्तुमिच्छति ॥ ६३ ॥

तानत्स एव संपृष्टं श्रेष्ठिमिस्त्रैमहाकुम्भैः ।  
 पत्र सौम्य यद्यस्तप्यं कारणं क्षिमिहात्र भो ॥ ६४ ॥  
 स संदशहराश्वात्रीषातुर्यतरया गिरा ।  
 अहो स्वामिकुमारोऽयं त्रितीयापुष्यवारिधे ॥ ६५ ॥  
 निदधपात्क्रामभागम्पी निसृष्टा दुःखमीरुक्तः ।  
 ससृष्टो मुक्तिक्रमिन्त्या जैनी दीप्ता ग्रहीष्यति ॥ ६६ ॥  
 भुत्वा तं शणिजां नावाः क्षणाद्दृष्टवतां गताः ।  
 धौपयिर्हुं स्वकन्यास्ता ययुर्म्प्राभिजास्यम् ॥ ६७ ॥  
 तत्र गत्वा समाहूय मीताश्चाप्यनुर्वासितुम् ।  
 ताः कन्याः कुसुमीसत्वं न बहुल्लेखतस्त्रिषा ॥ ६८ ॥  
 पुत्रि जम्बुकुमारोऽयं भूपते भागनिसृष्टः ।  
 व्रताभ्यादातुमीहेतु तपःपूर्वाणि मुक्तये ॥ ६९ ॥  
 तद्दृष्ट्वा तु पपाकार्म का नो हानिस्तु सायतम् ।  
 भवतीनां समुद्रोरे भयैवाप्य शरोऽपरः ॥ ७० ॥  
 निश्चम्यैतत्पितृर्षाकये पद्यभीः कपिता कदा ।  
 ममादादा कर्षचिद्रे प्राणिहस्येष योगिराद् ॥ ७१ ॥  
 तात मा मद दुर्भावमेतर्षीबाकरां मयि ।  
 प्राणविक्षिपि न कतम्प्या क्रमहानिर्यहात्मभिः ॥ ७२ ॥  
 एक एव यथा देवः सर्वदोषवियर्जितः ।  
 अर्हाञ्जिति त (स) दास्यातो परमैको महात्मनाम् ॥ ७३ ॥  
 तथा जम्बुकुमारोऽयं मर्ता चैको हि मामकः ।  
 नापरः कश्चिदेवातो नियमो मे निसर्गतः ॥ ७४ ॥

पिग्मोगान्विपयोत्पन्नानिन्द्रमासोपमानिह ।  
 पतौ गच्छति वीज्ञायै षयं तूपपतौ रता ॥ ७५ ॥  
 अथ चेन्द्राषिनी सेयं मागसंपदनीदृष्टी ।  
 अस्माकं मान्यसयागादय स्यास्यति सद्यनि ॥ ७६ ॥  
 यदि भोगांतरायस्य कर्मणो मे विपाकत ।  
 नारितो बहुषोपायैरयं गता तपोषणे ॥ ७७ ॥  
 तदापि न मनस्वापो भविता मे सुनिश्चयात् ।  
 नान्वया श्रवयते कर्तुं यद्भाष्य तद्भविष्यति ॥ ७८ ॥  
 असमम बहुक्तेन तात वाचयमी मव ।  
 सर्वथा पतिरेको मे जम्बूस्वामिद्रुमारकः ॥ ७९ ॥  
 भुत्वा सागरतत्तास्य श्रेष्ठी पुत्रिमचस्ततिम् ।  
 सर्वे निवेदयामास त संदेष्टहरं प्रति ॥ ८० ॥  
 भुत्वा बभौहरदवापि गत्वा श्रेष्ठिनिभासये ।  
 जगाद् सर्वतस्तत्त्वं यया कन्याकयानकम् ॥ ८१ ॥  
 अथ साहस्यतां गच्छन् भानुरस्ताचक्रं धितः ।  
 अहो न क्षमका द्रष्टुं संतः परविपत्तयः ॥ ८२ ॥  
 इति कर्तव्यतामूढः सोऽर्थासी षणिकपतिः ।  
 गत्वा प्रति कुमारं तं विज्ञप्तिमकरोस्तृती ॥ ८३ ॥  
 एकमेव दिनं यत्स विवाहानंतरं तव ।  
 स्वया ताभिः सहास्थानं कर्तव्यं वैकृष्टः क्लिप्त ॥ ८४ ॥  
 मामकीं मार्यनां पुत्रं यामोर्धां विधेहि भो ।  
 पश्चाद्यद्रोषते दुर्म्यं तत्तद्यया विधीयताम् ॥ ८५ ॥

निरीहोऽपि कुमारः स पितुरत्याग्रहापदा ।  
 तथेस्युनाच ताव त्वं मा विपादीः स्वचेतसि ॥ ८६ ॥  
 ततो मांगल्यतूर्पाणि पचानां भ्रष्टिनां सुहे ।  
 नेदुरानंदभेर्यश्च पूरिताश्चासुम्बा जषात् ॥ ८७ ॥  
 क्लृप्तागीतानि कामिन्यो गायन्ति स्म भ्रुदान्विताः ।  
 संप्रस्तमृगनेप्रास्ताः पीनोऽभवपयोधराः ॥ ८८ ॥  
 चद्राहोषिवसामग्री या क्वाचन प्रसिद्धितः ।  
 तथा सह चपासासावन्वास्तु कुमारकः ॥ ८९ ॥  
 ध्वनञ्जिर्भाषसंपैश्च बंदिर्बुद्धैः सुसुन्दरैः ।  
 पठञ्जिस्त्वघञ्चोऽभ्यानं मृत्यञ्जिनर्तकीजनैः ॥ ९० ॥  
 पौराणिकादिसङ्घोऽकैर्दृश्यमानः पद् पदे ।  
 प्राप जम्बूकुमारश्च बाह्दिक्षस्य सप्रणि ॥ ९१ ॥  
 चक्षीर्य सुरगात्तूर्णमुपविष्टश्चतुष्किङ्काम् ।  
 मपगंभीरनिस्वानो धीरो मंदरकठषट् ॥ ९२ ॥  
 अथानीताभिरत्यर्यमुद्राहस्य कृठ कृती ।  
 करग्रहमनिच्छोऽपि मेष्टैर्द्विषिषशात्स हि ॥ ९३ ॥  
 विवाहानंतरं सर्षे स्वर्णरत्नादिपावनम् ।  
 दत्तं सागरदत्तार्घ्यं दर्शनीयं पद्मरोषितम् ॥ ९४ ॥  
 पट्टहृत्मानि श्रुष्णानि विष्विप्राणि वि ( व ) स्वाणि च ।  
 परायादुदुहिता ( व ) भ्यो मणिमुक्ताप्रवालकान् ॥ ९५ ॥  
 सत्कूपरमुभिभाणि कुंडुपार्दीनि समुद्र ।  
 पत्न्यकामनयानादिवस्तुनि बलिभो ददुः ॥ ९६ ॥

इत्स्यश्वघनभान्यादिदासीद्रासाद्रिक तथा ।  
 यदुत्तम गृहे किञ्चित्तत्सर्वे स्वामिन ददु ॥ ९७ ॥  
 तदादाय स कन्याभिः संपद्भवसर्नाचलः ।  
 रमन्यां सहकांताभिर्नानाविधमहात्मरै ॥ ९८ ॥  
 पठद्भिर्भेदिषुंदैश्च वृत्त्यग्निर्नर्चकीजनै ।  
 मर्हशासगृहे प्राप स्वामिनम्युकुमारफः ॥ ९९ ॥  
 यत्तप्राप्युचित किञ्चिद्यत्प्रासगिष्णुत्तमम् ।  
 तत्सर्वे विनयान्नूनमर्हशासाऽप्युपाददे ॥ १०० ॥  
 यः कश्चित्तत्र दानीया साऽपि दानेन भीणितः ।  
 प्रभयाहोऽपि यः कश्चित्तस्तच्छ्रुत स तथा क्लिप्त ॥ १०१ ॥  
 जिनमत्यापि सोत्साहात्स्वगृह्यो बहुमानिता ।  
 ययास्य पट्टकृष्णादि ताभ्यो दर्श स्वमक्तितः ॥ १०२ ॥  
 सन्मानिताश्च ते सर्वे ( ताः सर्वाः ) प्राप्ता निमनिमगृहम् ।  
 निद्राघ्नमि ( मि ) तनप्राश्च धम्युः शयनोपता ॥ १०३ ॥  
 सह तामिः कुमारश्च रहस्यरूप मंदिर ।  
 स्थापितस्तु वयस्यास्मीजनैः सम्यितमोषनैः ॥ १०४ ॥  
 अय इत्सस्तु दीपणु दीपिताश्रपवस्तुपु ।  
 हंसनुस्त्रास्यश्रय्यायां स्थितस्तामिः सहस्रकौ ॥ १०५ ॥  
 तत्र धारंयमीवागु तस्यां स्वामी विरक्तितः ।  
 संस्थितश्चापि तन्मध्ये पद्मपत्रं जले यथा ॥ १०६ ॥  
 नापि वक्ति न पश्यथ मुरुपास्त्रपि तामु वै ।  
 स्थितः स्थिरतरः स्वामी निम्तरगसमुद्रवत् ॥ १०७ ॥



ताराणां निकरा रंजे तदा भ्यार्जाप निर्मलः ।  
 यामिनीकामिनीभूपाइतुमुक्ताकर्द्वबध् ॥ १०८ ॥  
 भय तासां घरीरपु ज्वलति स्म स्मरानलः ।  
 मत्स्युपापैरसद्यदथ सामिलापा रिरंसया ॥ १०९ ॥  
 सपमकं तत स्थित्वा तामि कामानुरात्मभिः ।  
 मर्दं मदमयासाप हृषीतीभिः परस्परम् ॥ ११० ॥  
 कामाकुम्भामिरामिदथ ताम्भूसादिमुदितसया ।  
 मारम्भा स्मरसंभेषा नानाभ्रुंगारबार्धया ॥ १११ ॥  
 दन्तपत्काभुकी काचिच्चत्र हारमिपात्स्वनी ।  
 इहा बिल्वफलाकारै र्यापनीभोभृता पथी ॥ ११२ ॥  
 काचिभार्मि सुगंधीरां दधयंती स्पलादिह ।  
 काचिदृष्टयोप्लास पत्त स्म निजसीलपा ॥ ११३ ॥  
 काचिदृष्टहासादिनर्मगर्भे च ममभित् ।  
 बचभोध नबाडाहा स्वामिनं प्रति सस्मरा ॥ ११४ ॥  
 काचिदृष्टकीणवीलामिः स्वसात्कर्तु समीहत् ।  
 हासमावबिष्ठासाधैः काचित्कृतं विमाहति ॥ ११५ ॥  
 काचिद्रागांम गायंती पत्रम ( म ) ध्वनिमिधितान् ।  
 काचित्पठति भद्रगुणार्जितं श्यामिना मनः ॥ ११६ ॥  
 इत्यादिपिषिर्षेमावर्त्रेधयत्याः स्वपान्थम् ।  
 म समास्वाभ्यतस्त्रीऽपि तन्मना माहितुं मनाह् ॥ ११७ ॥  
 इतिमुकुटविपाकात्स्वामिजम्बूकुमार\*  
 सकलमुत्सनिधाना मारमार्तगर्सिहः ।

कृतपरिणयकर्मा धर्ममूर्तिर्विरक्ता

विषयविरतचेताः स्यात्समासन्नमध्य ॥ ११८ ॥

इति श्रीअम्लूस्वामिचरित्रे मगवल्लीपश्चिमतीर्थकरोपदेशानुसारित  
 स्याद्वादानवषगवषयविषयिषारदपण्डितराजमङ्गुलिरचिते साधु  
 पासात्मनसाधुदोहरसमन्ययिते अम्लूस्वामिपरिणय-  
 नोत्सववर्णनो नाम नवमं पर्व ।

## अथ दशम पर्वः ।

भवत्पारापिता सम्पद्भारती परमष्टिनी ।  
 साधुपासांगप्रस्यास्य भवस साधुद्वारः ॥१॥ इत्याशीवादः ।  
 कुर्युं कुंभ्यादिसदयं धमतीर्यभिषायकम् ।  
 अरं चारिषिनाशाय बंदे मुक्तिवपुषरम् ॥ १ ॥  
 अथ तासां चतसृणां दृष्ट्वा पंचपुत्रिप्रियाम् ।  
 निर्बिषत्र बिदांर्य्यो जम्पुस्वामी तदर्थकृत् ॥ २ ॥  
 हा भिगदानमवैतन्मोहकर्मोदयादिह ।  
 यत्प्रभावाज्जु मन्यते जीवा दुःखं हि सांस्यवत् ॥ ३ ॥  
 तथा मरीचिकां पार्तुं सृगा घासति वार्षिया ।  
 तथा प्राणिगणभाषमिच्छेदपायिकं मुसम् ॥ ४ ॥  
 यथा कंदूयनं कुर्वन्मातुरीं नस्वरेः स्वरः ।  
 अजानन् स्ववपुःपीडां मनुते हि परं वरम् ॥ ५ ॥  
 तत्सौम्यं यन्निराशां सर्पाः स्वात्मसुखात्तय ।  
 निर्बिषेक्षमया नित्यमभ्याषापमतीन्द्रियम् ॥ ६ ॥  
 इदं स्वाह्यं मुखाभासे परं वापापुरसरम् ।  
 बंधरंरुरानित्यं च तदेयं हि महात्मभिः ॥ ७ ॥

१ नरं वाचलद्विषं चिदिज्जर्णं बंधघरत्वं विभ्रमं ।

२ इतिरिदि मदा तं कर्मणं मुक्तमेव तदा ॥

भाषा(त्मा)नदमजानानो जनः प्रज्ञापराभव ।  
 विपयेषु समासक्त सुखं भदति मूढपीः ॥ ८ ॥  
 किं चास्मिन्सुखे ममो जीवो मज्जति दुर्गतौ ।  
 योपित्पाशैर्दृढं बद्धो यथा वायुरया मृग ॥ ९ ॥  
 आश्लेषिषिषं बर्दस्यन्ये वंदशूकविशेषकम् ।  
 श्रया वै तद्दई मन्ये भदयो योपिदजसा ॥ १० ॥  
 यासामर्षविलाकैश्च ददन्ते हि काष्ठका ।  
 अलस्कामाभिना दग्धाः श्वराभातैर्मृगा इव ॥ ११ ॥  
 असारेऽपि बधूकाये मोहुरांत शठाः कथम् ।  
 स्पृशन्वातीन्द्रियसौख्यं हि सीदति भव दुर्मदा ॥ १२ ॥  
 यदत्र गर्हितं किञ्चित्तरसर्वे स्त्रीकुटीरक ।  
 बर्षोमूत्राद्यसृग्मांससंभृतं कीकसोश्चये ॥ १३ ॥  
 सुंदरं चापि यद्वस्तु पूतं वा यभिसर्गतः ।  
 अपुःसंसर्गतो नूनं याति दुर्गेषुतां क्षणात् ॥ १४ ॥  
 आलक्ष्मीसहस्रेनालमिमाः सर्वाश्च योपितः ।  
 मन्ये प्राणिविषंघायं घात्रा पाप्मा विनिर्मिताः ॥ १५ ॥  
 एव संचित्तयन्मास्ते यावत्स्वामी स्वचेतसि ।  
 तावत्प्रोवाच पद्मभ्रीस्तास्तिस्त्रोऽपि बधूः प्रति ॥ १६ ॥  
 अहोऽस्मिन् निर्घृणे पुंसि किं कृतेनापि चादुना ।  
 बाणाः कुर्वन्ति किं पंढ्रे मन्मथस्यापि सर्वश ॥ १७ ॥

१ अश्विनि आदयं वा विपमस्येति विपमर इत्यर्थः ।

गर्हितं बधति इति दृश्यतेः उच्यते । ३ उतीयः ।

पर्यापि नर्तनेनापि गानन वधिर न हि ।  
 क्वातर किं कृपाणन किं खस्य्या कृपण वृथा ॥ १८ ॥  
 सस्य समीपकारीव वर्तते ग्राहयानयम् ।  
 प्राप्तं तपःफलं त्यक्त्वा पुनः कर्तुं समीहित ॥ १९ ॥  
 यथा कश्चिन्नरो मूर्धः सिद्धमन्नं स्वसपनि ।  
 त्यक्त्वाहानात्ममादाद्वा भिक्षुभिःसामन्त्यदा ॥ २० ॥  
 तपसां हि फलं सौम्य तत्स्वर्गे वा महीतले ।  
 प्राप्तं चापि न जानाति नूनमव्यसता जडः ॥ २१ ॥  
 बयं रंभासमा नाय सद्यैतस्स्वर्गसन्निभम् ।  
 वपुर्दिभ्यं गृहे सपद् दुःखमं क्रियतः परम् ॥ २२ ॥  
 सर्वे स्वापीनमुत्सृज्य तपः कर्तुं समीहित ।  
 तत्र सा प्राप्यत नो वा विवर्करहितस्त्वयम् ॥ २३ ॥  
 सस्यः कृपानक चैकं रम्यं दृष्टांतभूमिजम् ।  
 सावधानतया भाष्यं गुप्ताभिर्बध्म्यहं यदि ॥ २४ ॥  
 भृष्यंति स्म च तास्त्रिस्रो साधर्याः सकुमारदाः ।  
 पद्मभीरवदस्साम्या धनदत्तकृपानकम् ॥ २५ ॥  
 यथात्र होमिकः कश्चिन्नदत्ता नाज्जाप्यपूत् ।  
 तस्य भाया यथानात्नी पतते स्म मुदान्विता ॥ २६ ॥  
 तयोर्जातः सुतश्चैकं नाज्जा वै सवळा बली ।  
 अप्येकाकी स निष्पाता गृहकार्ये क्षमाः क्षमी ॥ २७ ॥  
 अथ देवपदायस्य हासिकस्य मृता वधूः ।  
 समृद्धा सस्यीयया स्वमे दृष्टेनष्टामवत्सणात् ॥ २८ ॥

हालिकेन ततः पश्चाद्द्राक्षाद्यु मुतं वरम् ।  
 परिणीता परा स्वस्मै वृद्धेनापि सक्तामिना ॥ २९ ॥  
 पोडशाब्दमिता सेयं पष्टिबर्षमितः स्वयम् ।  
 तथा सार्द्धं रतिफीढां कुरुमास्ते स कामुकः ॥ ३० ॥  
 अथाऽन्येद्युर्निर्भीय सा कामुकी कामिना सह ।  
 क्वचिद्व्रणयक्रोधाज्जाता मानमभिष्टिता ॥ ३१ ॥  
 तताऽनुनेतुकामोऽसौ स्वप्रियां तां प्रसादयन् ।  
 उवाच हालिकः कामी चादुवाचयं वदामिति ॥ ३२ ॥  
 प्रिय प्रिये वदस्वाद्यु सन्मूखीभूय मां प्रति ।  
 कोपस्य क्वरणं किं स्यादप्राकस्मात्प्रिये मयि ॥ ३३ ॥  
 वदत्यंभं मृदूकस्यापि सानुकूलेऽपि भतरि ।  
 मा मां स्पृष्ट करेणेति सानदत्क्रीषष्ठास्मिनी ॥ ३४ ॥  
 अलं स्वया प्रियेणापि मदघोऽकुरुवता घट ।  
 अज्ञानाभिघ्नता मीतिं तच्छक्षणममानता ॥ ३५ ॥  
 उक्तं च—

“ पानीयं च रसः शीतं परार्थं सादरं रसः ।  
 रसो गुणयुता भाया मिमद्वचान्तरो रसः ” ॥ ३६ ॥  
 इत्याकर्ष्यं स भार्योक्तमूचे वाच प्रियंवद ।  
 वद प्रिये मया चाद्यु कर्तव्यं स्पन्मनीपितम् ॥ ३७ ॥  
 छासितानुनयेनैह साच पापाश्रया शुभा ।  
 नन्दन सखल नास्त्रा घावयैर्न घुनिश्चयात् ॥ ३८ ॥

भुत्वति कंपमानाऽसौ शास्तिकः पुनरवधीत् ।  
 मद् सुगुणे महादुष्टमेतत्कम दय कथम् ॥ ३९ ॥  
 किं भेषस्तद्वधेनापि दर्शयस्व मिये मम ।  
 नं हि कायमनुविश्य मंदश्चापि प्रवर्तते ॥ ४० ॥  
 शास्तिकं सा (मिया) वादीष्टुक्तिसदर्मया गिरा ।  
 इत त्वस्मिन्महाभेषा मारीति मृषुव (!) यथा ॥ ४१ ॥  
 सत्यस्मिन् मूनवः केचिद्यं यास्यंति ममोदरात् ।  
 ते सर्वेऽप्यस्य दासत्वं करिष्यंति न सद्य ॥ ४२ ॥  
 मतीऽयं सर्वथा बध्यो नूनं भर्तृभिर्भेदि तत् ।  
 मारिते त्वत्र ते सर्वे स्वाधीनाः स्यु मृत्वाबहाः ॥ ४३ ॥  
 एवं तद्वधनैरीपत्यस्त्वस्मानसोऽपि मः ।  
 किञ्चित्काश्निकस्त्वत्र शास्तिकः पुनरवधीत् ॥ ४४ ॥  
 सुगुणं निरपराधं तं मारयामि मुतं कथम् ।  
 अपि केकं गृहस्यास्य बोद्धारं विनयान्वितम् ॥ ४५ ॥  
 यदि धा मारिते त्वस्मिन् राहो दंढमयो मवेत् ।  
 बाधवाश्चापि ते सर्वे दोषं दास्यति सत्वरम् ॥ ४६ ॥  
 पुनर्दुर्लभिता साधे मर्तारं शास्तिकं प्रति ।  
 बधेनं सर्वथा भर्तृरन्यथा नापयी मृत्वरम् ॥ ४७ ॥  
 अतः परं तु मृत्वर्यं य मविष्यंति मूनवः ।  
 इदत्स्ये ते करिष्यंति निर्विघ्नं मृत्तमावयाः ॥ ४८ ॥  
 अप्युपायं च ते बध्यि यथा तस्य मयं कृते ।  
 नापि मृपतिमीति स्यान्नापि बध्यति बाधयाः ॥ ४९ ॥

यदासौ लांगुल मंदं मंदं चाहयति स्फुटम् ।  
 तदा स्वमप्यतः पश्चाद्वाहयातीव वेगतः ॥ ५० ॥  
 स्वरमृगैर्बलीवर्द्धैः प्रातोदादतित्तादितैः ।  
 मारयैनमनायासाघयाधूर्तविशेषितम् ॥ ५१ ॥  
 एष कृते न भूपासो वरु वास्यति ते क्वचित् ।  
 नापि षष्ठुजना सर्वे युष्मदोपाबहा मनाक् ॥ ५२ ॥  
 भार्योक्तं प्रतिपाद्यासौ कामांभा हालिकः कृषीः ।  
 तथास्त्विति षष्ठ्योश्च तामाश्रास्य पृथग्जन ॥ ५३ ॥  
 आलिन्याभिमुखीभूय संतुष्टासौ स्वमानसे ।  
 क्षमकोलिं तथा शक्रे प्रिया सुरतिपण्डिता ॥ ५४ ॥  
 अथ तत्सुजुना सर्षमाकर्णितं यथादितम् ।  
 सुतेनोपग्रहं वृत्तं समस्तमनुरक्तयो ॥ ५५ ॥  
 मातरुत्याय प्रागव तत्रागात् सवलः सुतः ।  
 हालिकस्त्वदनु प्रावो इतुकामः स्वनदनम् ॥ ५६ ॥  
 पृष्ठस्थाऽपि यानत्स जनकस्तत्र गच्छति ।  
 तावद्यथादनेनाशु क्षेप्रे संपादितं इहम् ॥ ५७ ॥  
 अथ गत्वा वदधर्मासौ पामरभात्मजं वरम् ।  
 मूलान्मूलं हि कूर्वाण क्षालिक्षेप्रे इलास्यतः ॥ ५८ ॥  
 इष्याय हालिकीश्वरीत्रे रे पुत्र महाशठ ।  
 भ्रात्या (१) कष्टकरं मूनमर्थच्छन् फरापि किम् ॥ ५९ ॥



उवाच पुत्र मां तात जीमत्स्वात्सस्यसपदम् ।  
 मोन्मृत्य रापयिष्यामि नर्षाश्चात्मसुखात्तप ॥ ६० ॥  
 समाकृष्य वचस्तस्य पित्राप्युक्तं स्वबुद्धितः ।  
 सिद्धं त्यजसि रे पुत्र नर्ष्य कांससि रे जह ॥ ६१ ॥  
 छसान्नेपी स पुत्राऽपि वचदधोवै समूदभाक् ।  
 तावैवं वेत्स्मरस्पाशु रामौ यज्जल्पितं त्वया ॥ ६२ ॥  
 इत्वाप मां मुसचाकं पुत्रं वाँछति माभिनम् ।  
 सुस्वार्थं कांतया सार्द्धं तात बुद्धिस्तवदृष्टी ॥ ६३ ॥  
 पुत्रवाक्यात्स मूर्खोऽपि जातः प्रतिबुद्धतां सप्तात् ।  
 दुराग्राही स्वयं बासे नेतुं भक्त्या न मार्दवम् ॥ ६४ ॥  
 अश्वत्थेष्टे तद्वत्स्वामी अम्बुकुमारकः ।  
 स्वाधीनाः संपदस्स्यक्त्वा संदिग्धाः पुनरीहत ॥ ६५ ॥  
 एतस्सर्वे कथाहृतं भुत्वा प्रोवाच धीपनः ।  
 निरीहोऽपि यथा वक्ति घर्मास्थान मृषांगिराद् ॥ ६६ ॥  
 प्रियाः कथानकं शैवं मन्त्रोपनिषापकम् ।  
 सावधानतया श्राव्य मन्त्रीमिमयात्रितम् ॥ ६७ ॥  
 विद्यावत्सं महात्स्यां मृतशैवीं मतंगम ।  
 वर्षापूरमरैषेव नर्मदां प्रति सोऽप्यगात् ॥ ६८ ॥  
 तत्तत्कलैपरं कश्चिद्भ्रममाणोऽपि वायसः ।  
 अन्वगात्कर्करस्यां सौलुपः पिप्रिताश्रितः ॥ ६९ ॥

मध्येमलं यथाभावस्पतितोऽसौ महांशुषौ ।  
 काकस्वत्पिशितग्रासरससंल्लुपमानसः ॥ ७० ॥  
 मसितं तद्गुस्तूर्णं मत्स्याधैर्नलचारिमि ।  
 काकेन गंतुमारब्धमृद्धीनेन महाम्शुषौ ॥ ७१ ॥  
 उड्डीयाड्डीय यावत्स ज्योत्स्नि पश्यति दिङ्मुत्सम् ।  
 स्यात्तं ग्रामं तर्लं शैलं विभ्रामार्यं न किञ्चन ॥ ७२ ॥  
 क्रियत्काल स बंभ्रम्य पतितोऽय महार्णवे ।  
 आस्यैकैककमित्युक्त्वा धराका पचतां गत ॥ ७३ ॥  
 यथा तन्मांसल्लुप्येन प्राप्ता चापदनीहृष्टी ।  
 तयाहं न यविष्यामि कांता कांतवपुभयाः ॥ ७४ ॥  
 मोक्तारं चाधुना भोगान् युष्मत्सस्पर्शसंभवान् ।  
 सत्याकान्मां निमज्जंतमुद्धरंत्को मर्षांशुषौ ॥ ७५ ॥  
 इष्टतिन प्रतिघ्नस्तं सत्यधभीकपानकम् ।  
 कनकभीरयोवाच कथां कौतूहलाबहाम् ॥ ७६ ॥  
 कैसासे पर्वते रम्ये कपिशचैकोऽमबत्किञ्च ।  
 दैवयोगादथापेषुः क्षैल्युगमधिष्ठितः ॥ ७७ ॥  
 पतित्वाय ततो वेगास्त्वंदत्स्वद्वितविग्रह ।  
 अकामनिर्जरां हर्षन् मृत्वा जातः स्वगाधिपः ॥ ७८ ॥  
 एकदा स मुनिं नत्वा पप्रच्छ स मर्षांतरम् ।  
 मुनिस्तूथे यथाहृत् सावधिज्ञानधधुपा ॥ ७९ ॥  
 पुरा जन्मनि विद्येश स्वमासीत्कपिरुत्तम ।  
 कैसासास्व पतित्वाथ मृत्वा जातो स्वगः शुभात् ॥ ८० ॥

भुत्सेतिवचनं रम्यं पावनं मुनिनोदितम् ।  
 निदिधक्याय स्वर्गेनाथु स्यापितं हृदि दुर्धिया ॥ ८१ ॥  
 यत स्यानात्कपिमृत्ना जाता विद्यापरो मरः ।  
 धूनं ततः स्वर्गो मृत्वा द्योऽह भविता क्षणात् ॥ ८२ ॥  
 अतएव मयावश्यं कर्तव्यं मरणं वरम् ।  
 तत कैलासकूटाग्रात् पतिरथाय तथाविधम् ॥ ८३ ॥  
 विमृश्य चैत्राश्रादीत्स्वर्गा निजमियां प्रति ।  
 यथा मनीषितं स्वस्य प्राणघातस्य सूचकम् ॥ ८४ ॥  
 मिये सर्वे हि सुमार्प्यं स्वर्गपाप्मादिकं फलम् ।  
 क्वचन शैलकूटाग्रात्पातेनाथु विर्षक्या ॥ ८५ ॥  
 भर्तुर्षयः समाकर्ष्यं विस्मयपातिदुःखिता ।  
 भार्या विद्यापरस्योष्पैर्विद्वन्ना दीनमानसा ॥ ८६ ॥  
 कांत कांत महामाह ब्रूया मरणमिच्छसि ।  
 विद्यापरोऽसि नाय त्व दुर्द्धयं क्रियतः परम् ॥ ८७ ॥  
 उच्छंभ्याव मियावाक्यं शैलश्रृंगात्पपात सः ।  
 मृत्वा दुर्ध्यानयागेन यातो रक्ताननः क्वपि ॥ ८८ ॥  
 सस्यो यथा स्वर्गो मूर्खो मृत्वा स्याधीनसपदः ।  
 मृतदशापन्नयो जातस्तवास्माकीयनायकः ॥ ८९ ॥  
 पाप्मादवापि महारम्यास्त्यक्त्वा सर्वा हि सपदः ।  
 भाविन्यस्ताः समीहितं प्राप्येते तपसा न वा ॥ ९० ॥  
 जम्बूस्वामी तदाकर्ष्यं सर्वे क्वचनकृधिपादितम् ।  
 मंत्रानौघरं व्याजादेक किंपितृक्यांतरम् ॥ ९१ ॥

विष्प्याद्री बलवान्कश्चिदासीत्स्वमातुरः कपिः ।  
 असहिष्णुः कपीन् सर्वांन् इत्यमानो बनेतरान् ॥ ९२ ॥  
 घात जात स्वमार्यायाः स्वपुत्रमपि इत्यत ।  
 एकक्री सुरतक्रीडां कर्तुं ( कामो ! ) बर्नातके ॥ ९३ ॥  
 मयैकदा तत्पुत्रोऽपि जातो न ज्ञायते तदा ।  
 वैषाद्भृदिमगाद्गोप्यः स्थितो वृत्तसा ॥ ९४ ॥  
 ततः क्रमेण जातोऽसौ युवा स्मरातुरः कपिः ।  
 (स्व) भार्यो मन्यमानश्च मातरं रंतुमुषमी ॥ ९५ ॥  
 ... न केनापि तस्मिन्ना बानरेण सम(मीलि)कृतः ।  
 समुद्रतरुणा तेन इतुं नीतो बलादिह ॥ ९६ ॥  
 -- स्काररक्तास्यश्च विभीषणः ।  
 सोऽपि त्वैर्नखाग्रैश्च जातकोपोऽद्भुत्कपिम् ॥ ९७ ॥  
 तदा तौ मिथ एतौ युद्धमुत्पन्नम् ।  
 नखदंवाभिघातेस्तेर्मर्मरौ जनकात्मजौ ॥ ९८ ॥  
 मयी वृद्धकपिर्बेगादपला ... .. इन् ।  
 लघ्नः कोपपरः पृष्ठौ निर्भीकस्वरुण कपिः ॥ ९९ ॥  
 वानघातद्धिनस्ति स्म बानरं वृद्धमेव तम् ।  
 -- विमयीमृत्वा भ्यावृधः स्वष्टं प्रति ॥ १०० ॥  
 अय पिपासया तूर्णं वृपासंशुष्कताल्लकः ।  
 संमदिष्टो मळे मीपक्षीये सर्पकिसे ॥ १०१ ॥  
 पीन्वाय कल्लपं तोयं ततो निःसर्तुमस्रम ।  
 आतुरा विपयार्येषु मृतस्तत्र कुपीर्यया ॥ १०२ ॥

तथा नाहं भवान्मम संसार प्रियवादिनि ।  
 निर्ममं विषयपूष्यैः कः को मां हि समुदरेत् ॥ १०३ ॥  
 इत्युत्तरबलादेव कनकभारभीरभूत् ।  
 विनयभीस्त्वृतीयोऽथ मा कयाकोपकौशला ॥ १०४ ॥  
 एकः कद्रिषद्विद्रा हि सखनामास्ति कुप्रथित् ।  
 मध्येवर्नं स मस्युप याति क्वाष्टादिदृशे ॥ १ ५ ॥  
 ततश्चेन्मनमानीय विक्रीयाथ ययार्थतः ।  
 क्लेशेन बद्धमनं तस्य भवेत्सातवरादयात् ॥ १ ६ ॥  
 एकदा बहुमूस्यत्पाल्म्यं किञ्चित्ततोऽधिकम् ।  
 भाजनादपश्चिष्टं स्यादेकं रूपकमाप्रकम् ॥ १०७ ॥  
 ततो विमृश्य दीनीऽसौ भार्यया समकं दद्रा ।  
 आप्द्रस्तादिदेतोस्वच्छमौ निसिप्तवानिह ॥ १०८ ॥  
 अथ कथित्यवासी च साध्वसात्तत्र कानने ।  
 रत्नमाहं सुनिसिप्य गतस्तीर्यादिक्लेषु सः ॥ १०९ ॥  
 काननं भ्रमता तेन दृष्टं तद्वैवयोगतः ।  
 निसिप्तं च ततोऽन्यत्र सोमात्तत्र विमृश्यता ॥ ११० ॥  
 मस्यहं रत्नमेकैकं ग्रहीष्यामि प्रयत्नत ।  
 इत्यानन्दमनाश्वासौ वैमात्तूर्णं स्वसद्यनि ॥ १११ ॥  
 गत्या गेहे द्रिद्राऽसौ मार्गो मति निमैद्रयम् ।  
 रत्नमाहं मया प्राप्तं मिये पुष्योदयादिह ॥ ११२ ॥  
 स्वापितं तत्र कातारे मया चाथ प्रयत्नतः ।  
 सत्यं जानीहि हे कति माम्पया वप्यि कर्हिचित् ॥ ११३ ॥

भुस्वाश्वर्षवती भार्या जाता रोमांशिता तदा ।  
 मद्र तवास्तु हे कांत चिरंजीवी स्वक मय ॥ ११४ ॥  
 अथ मयोदित मप्रमषश्य क्रियतां त्वया ।  
 संधितो रूपकः पूर्वं योऽसौ संयुक्त सप्तताम् ॥ ११५ ॥  
 सोपि तत्रैव सस्थाप्यो रत्नभांडे सुकौशलात् ।  
 स्वमहं च तयापूर्वं कुर्याथ कर्म सांभतम् ॥ ११६ ॥  
 मामापितं दरिद्रेण मोहाज्जायोदितं भवः ।  
 वर वरं स्वयोक्तं यस्काति वैदग्ध्यश्रासिनि ॥ ११७ ॥  
 ततस्तौ दंपती स्यातां काष्ठशुद्धरक्षमा ।  
 तद्दनाच्छिरसा नीत्वा विक्रीय च कुक्षिमरौ ॥ ११८ ॥  
 एवं व्यतीयमानेऽप्र काष्ठे क्रियति धानयोः ।  
 वैशाद्रत्नपतिः सोऽयमागतस्तत्र कानने ॥ ११९ ॥  
 ययास्याने निरीक्ष्याथ न लब्धं रत्नभांडकम् ।  
 ततश्चाद्यमयान् जाता यत्र तत्र निरीक्षणे ॥ १२० ॥  
 बिराल्लब्धं धनेधेन रत्नभांड स्वपुष्पतः ।  
 नीत्वास्त्राय गतः सोऽयं सानंदात्स्वालयं प्रति ॥ १२१ ॥  
 अहो पुष्पमशाल्लक्ष्मीशंभलापि स्वभागतः ।  
 विनष्टाप्यन्यमानेन कथं सख्या मुखादिह ॥ १२२ ॥  
 एकद्वोद्घातव्यं कुंभं त रिक्तं यावत्स पश्यति ।  
 इत्वा इत्वा क्षिरः स्वीयं रोदिति स्म महोऽयमः ॥ १२३ ॥  
 रत्नभांडेन तनाच्छं मम पूर्वोऽपि रूपकः ।  
 संधितोऽपि विनष्टोऽमूचेन सार्द्धं स्वदुष्कृतात् ॥ १२४ ॥

हा वंशितोऽस्म्यहं नून दुर्धनेन विपाकिना ।  
 यतो लम्भमपि स्यान्न क्षानायाय न भुक्तय ॥ १२५ ॥  
 स्वषष्ठां भुंजते नैव सद्मी प्राप्तामपीह यः ।  
 पश्चात्तापपरो मूर्खः संस्वपत्स भविष्यति ॥ १२६ ॥  
 बभ्रुस्वामी निशम्यैतद्दिनयभीकवानकम् ।  
 मोचे कर्पांतर म्यामाद्वाक्य प्रस्युत्तरमदम् ॥ १२७ ॥  
 आसीदृषिम्बरः कदिषल्लुम्पदत्त इतीरितः ।  
 बाणिज्याय जगामाशु कर्पांतरं बर्षं दुर्गमम् ॥ १२८ ॥  
 दुर्दैवात्तत्र सम्प्रो गमो दुर्मदमीपण ।  
 इतुं तं वणिजं क्वापास्तुतांश्च इव निर्दयः ॥ १२९ ॥  
 तद्गीतो वणिजां नाथः प्रपञ्चयभितस्वतः ।  
 बट्पाराहमासंभ्य स्थित क्वापंतरास्तः ॥ १३० ॥  
 तत्र पाराहमूखं तस्तुतांश्च भूपकद्वयम् ।  
 सितासितं च वणेन सद्दर्शं वणिग्बरम् ॥ १३१ ॥  
 वितितं नन चित्त स्व किं कर्तव्य मयाघुना ।  
 क्वापगते पतिष्ये विल्लिष्ये द्यतस्त्वहतां ॥ १३२ ॥  
 वितयभिति यावत्स स्थिता धीरतया वणिक् ।  
 तावत्कूपस्य भूमागेऽजगर दृष्टवानहो ॥ १३३ ॥  
 कंषमानास्य तद्गीतरतर तत्र कूपके ।  
 पार्श्वबाल्मीकरंध्राच्च निर्गता मीपणाहयः ॥ १३४ ॥  
 यादृशं वणिगी दुःखं तत्राजापत सकृदे ।  
 वित्ताभ्याकृष्णचित्तस्य कः क्षमा वक्तुर्ममसा ॥ १३५ ॥

नागोऽय रोपधानत्य घटमुत्त्वात्सुषमी ।  
आत्मस्कषषलेनेह ध्वनति स्म महाद्रुमम् ॥ १३६ ॥  
स्थितस्तत्र बटावासे श्युता मासिकसम्पनः ।  
एकस्तस्योन्मुखस्यास्ये मधुर्बिदुरपीपवत् ॥ १३७ ॥  
से तेन निर्धृतिं छेमे यथा छर्षं मनीषितम् ।  
उत्तमं स्थानमैतन्मया प्राप्तं बद्धमिति ॥ १३८ ॥  
अप्रांतरे स्वर्ग ऋषिस्तपसरन्म्योमवर्त्मनि ।  
एषा दृग्स्य तमुर्ध्वार्य विमानादित्यबीषदत् ॥ १३९ ॥  
रे रे मूढ स्वर्गोऽहं स्वामुद्धतुममं स्वर ।  
मामर्कं मुममासुभ्य निःसरस्वाशु सकटात् ॥ १४० ॥  
शुस्वाधादीत्स मूढात्मा तद्रसास्यादसोऽल्प ।  
मपीतस्व स्वर्गेश त्व मन्मुख सपतन्मधु ॥ १४१ ॥  
तावत्सुखेन तिष्ठामि भीम्ये चाहं यथास्थित ।  
मधुर्बिदुरसामावाचतो निःसरणेन किम् ॥ १४२ ॥  
मृष्यमपि कृपाकृतं स्वर्गा मूयाऽवदत्सुषी ।  
रे रे मूढानभिदोऽसि मर्तृमिच्छसि किं इठात् ॥ १४३ ॥  
नेतसे मरण पार्श्वे स्थितं ते दुर्निमित्ततः ।  
बिंदुमात्रस्य स्रोधेन मा याहि यममदिरम् ॥ १४४ ॥  
आसक्तोसाहलेनासं यदि भीबिदुमिच्छसि ।  
आलंबयस्व म बाहुं बिसंबाऽनुषितस्तव ॥ १४५ ॥  
इत्यादिविषिषैर्षाषैर्षोषितोऽपि स्वर्गक्षिणा ।  
नागमन्मार्दवं मूर्खो रसनेन्द्रियवचित ॥ १४६ ॥



आकृष्येदं वक्षस्तस्य मर्तुकामस्य दुर्दृष्टः ।  
 विघाघरो जगामाशु सत्परं स्वास्पर्दं प्रति ॥ १४७ ॥  
 अथ प्राप्तं स पंचत्वं सरघाघवपीडिता ।  
 श्पाकुलीभूय प्राप्यदि हाहाकारं रत्यभिति ॥ १४८ ॥  
 कूपश्रीपतदेवासौ सम्पदघा यणिकस्रुतः ।  
 युम्भूपकसंछिन्नवटारोहसमन्वित ॥ १४९ ॥  
 कूर्पांत प्रपतन्नाशु मसिताऽमगरेण सः ।  
 कामरूपेण तेनाही सम्पदघो यणिक्यथा ॥ १५० ॥  
 तयाई न विश्वासासि सुखलेशस्य इतये ।  
 कामरूपेण महामीमे विश्वास्यात्महतो मयन् ॥ १५१ ॥  
 निम्बूहा स्वामिवापयात्सा विनयभीः सुधीरपि ।  
 अयोबाध कर्वां तुर्यां रूपधी रूपशास्त्रिणी ॥ १५२ ॥  
 अपैकण समायात माशृद्कामा मनाहरः ।  
 नयांमोडैमहीमार्गं कुर्यभकाणयं जवात् ॥ १५३ ॥  
 रूपसिद्धाणि सर्वाणि यारिपूरैमहीतले ।  
 विष्टु आ(१)कारसंभस्तयापिअनकृदंशकः ॥ १५४ ॥  
 गमनागमनाम्पां च कर्दमीभूतभूतसः ।  
 महादुर्दिनतमस्तोमतिराहितदिवाकरः ॥ १५५ ॥  
 अथ यैवविधे काम यतमाने महीतले ।  
 कुंकसास ध्रुपाकांठा निगता शुक्ये विष्ठात् ॥ १५६ ॥  
 तेन पर्यन्ता हृष्टो ददशुकीप्रतिमीषणः ।  
 अंमनामाप्रतिपीभरसप्रसज्जिहायस क्रयः ॥ १५७ ॥

कृष्णसर्पं तमालोक्य कृष्णस्य पुरःस्थितम् ।  
 तत्रास्ते कृष्णसासीऽय भीतर्भितातुरो भयात् ॥ १५८ ॥  
 जीविष्येऽहं करं देव केनोपायेन सांप्रतम् ।  
 धितयभिति तद्गाद्विवेश नकुलालय ॥ १५९ ॥  
 नागोऽपि तमनुमाप्य छिद्रे छिद्रश्चतान्विते ।  
 ह्युपार्तानामहो कास्या प्राणिनां प्राणिसकटे ॥ १६० ॥  
 तत्राप्यग्रे स्थित मुक्त्वा कृष्णसास सरीसृपः ।  
 गच्छति स्म ततोऽप्यग्रे तत्कुदुम्यजिघृक्षया ॥ १६१ ॥  
 पिशंस्तत्र बिले दृष्ट्वा नकुलैः स बिलेशय ।  
 मलितस्त्वैः क्षुपाकृतिं समूय बहुभिर्यथा ॥ १६२ ॥  
 तथाय मामकः स्वामी विवेकरहितो जडः ।  
 मस्यग्रास त्यजंछुक्ष्मी पयभ्रष्टो भविष्यति ॥ १६३ ॥  
 भुत्वा जम्बूमारोऽसौ वाक्य रूपभिषोदितम् ।  
 ऊधे तत्प्रतिबोधाय रम्य किञ्चित्कृषांतरम् ॥ १६४ ॥  
 आसीत्स जम्बूको कश्चिदत्र बिस्रयातभूतले ।  
 एकदा तु विमार्यां भगाम नगरांतरम् ॥ १६५ ॥  
 तत्र भ्ररत्तं चैकं मृतं दृष्ट्वा स हर्षित ।  
 अथ संपत्स्यते नून यथास्व मे मनोरथः ॥ १६६ ॥  
 धितयिस्था मविष्टः स तद्वलीवर्द्धपभर ।  
 मक्षयन्निश्चितं तस्य नाद्यासीद्रिजनीं गताम् ॥ १६७ ॥

१ मुमुक्षितः किं न करोति पारं । इति हितोपदेशः । २ तर्कः । ३ एवौ ।  
 ४ इदमर्थः ।

मातःकासेऽप्य संभाते ह्यु\* पौरजनैरिह ।  
 तदस्त्रिपंजरात्पर्यङ्क निःसर्तुमपि न क्षमः ॥ १६८ ॥  
 शिताभ्याहृमिताः सोऽप्यं शितवित् स्म निमै हृदि ।  
 अथ मे मरणं मून संभातु दैवयागत ॥ १६९ ॥  
 अथ पौरजनः कदिषत्तस्य कणद्वय यथा ।  
 पुष्पठकं च लुनाति स्म सिद्धौपधिधिया कुर्याः ॥ १७० ॥  
 शिवित्त मम्बुकनेह जीषिष्ये वैदह मनाक् ।  
 ईदृशाऽपि कथमिदं न नष्ट य किमप्यहो ॥ १७१ ॥  
 अथ कश्चिद्विठस्तस्य रदानुत्साय वाग्मना ।  
 नीत्वागमद्यूहे स्वस्य वशीकरणहस्त ॥ १७२ ॥  
 अपितयत्तदा सोऽपि दैवाभ्यीष्ये कर्षणन ।  
 इदृशोऽपि प्रदापेऽप्य मूर्ध्नं यामि वनात्वरम् ॥ १७३ ॥  
 शिवपन्निति तत्राशु श्वानाद्यैर्मारितः क्षणात् ।  
 मसितश्च शृगाळोऽर्सा रसनाभभर्मा यथा ॥ १७४ ॥  
 तयाहं न भविष्यामि निपपांथा न मूढधीः ।  
 मिये जानीहि क माशा हृष्टिषानुत्सये पतेत् ॥ १७५ ॥  
 मायश्चकं हृषीकर्षिरामत्यां कः सद्भूदरेव ।  
 न परीक्षास्यमं वैतदृशोऽपि तत्र सम्मतम् ॥ १७६ ॥  
 इत्थं नानापिकाराद्यैः संसापेस्तत्र यापिताम् ।  
 न च्चाल मनस्तस्य मनागपि महात्मन ॥ १७७ ॥  
 अर्थात्तरे शुरासक्तौ नास्मा विष्णुश्चरो नरः ।  
 निधि कामस्तागदाभिर्गतदशौरकर्मणे ॥ १७८ ॥

सौष सौषं भ्रमभव चित्तयंस्तरस्रणात् ।  
 सोऽर्थासृष्टे देवात्मनिष्ठो दुष्टधीः स्वच्छ ॥ १७९ ॥  
 श्रम्यागारं कुमारस्य प्राप्तुर्ष्वति व्यचित्तपत् ।  
 आदौ रत्नानि गृह्णामि किं वा पश्यामि कौतुकम् ॥ १८० ॥  
 बधुवरद्वयोरेव मिथ संनत्यकौतुकम् ।  
 शृणोम्येकाग्रतो नून ततो गृह्णामि तद्धनम् ॥ १८१ ॥  
 इति निश्चित्य चित्ते स्वे शुभ्रपुः स्याद्द्वयोरपि ।  
 भार्ती विष्णुचरो नाम्ना दस्युकर्मरतोऽपि यः ॥ १८२ ॥  
 भुत्वा द्वयोर्यथा वृत्त वृत्तांत मरकन्ययाः ।  
 परमाश्चर्यपदा ज्ञात सोऽपि विष्णुचरस्तदा ॥ १८३ ॥  
 महो धैर्यमहो धैर्यं वर्णितुं केन शक्यते ।  
 यद्युचोऽपि मनाधैर्यं नापि भिन्न बधुमनैः ॥ १८४ ॥  
 अर्थांतरं कुमारस्य माता सा दुःस्वपूरिता ।  
 गमागमौ करोति स्म व्याकुला तत्र वर्त्मनि ॥ १८५ ॥  
 पश्यति स्म महामोहाद्गृहद्वारं मुहुर्मुहुः ।  
 किं जातमय किं यात्रि वर्तमानमयात्र किम् ॥ १८६ ॥  
 कामिनीकठपाशे किमपतत्किमुतोऽयथा ।  
 इति सप्तयदोलायामारुढा दुःखिता सती ॥ १८७ ॥  
 कृत्यपार्श्वेऽप्य सलीन तस्करं सददर्श सा ।  
 अबादीर्घीतभीता च कः कौऽस्त्यत्र महानिति ॥ १८८ ॥  
 ततो विष्णुचरोऽत्रादीन्मातर्मा गच्छ साध्वसम् ।  
 मह विष्णुचरो नाम्ना पौरोऽस्मीह धरावत् ॥ १८९ ॥

धौर्यकर्म करोम्यम नित्यं स्वभारं वसन् ।  
 अतःपूर्वं हतं मातर्बहुशोऽपि महापनम् ॥ १९० ॥  
 सुपितं त्वद्दृष्ट्वादेव स्वर्णरत्नादिकं मया ।  
 किमपि बहुनोक्तं न यावदपि विधीयते ॥ १९१ ॥  
 अयोबाष कुमारस्य माता विष्णुचर मति ।  
 वत्स यद्रोचते तूर्ध्वं तद्दृष्ट्वापि ममाख्यात् ॥ १९२ ॥  
 ततो विष्णुचरफोक्तं वाक्यं निनमती मति ।  
 मातर्भन्यस्व मे चिन्तां न स्यादपि धनार्जने ॥ १९३ ॥  
 किंतु कौतूहले चैतन्मया शृणुपूर्वजम् ।  
 पशुषी न मना भिन्न कटाक्षैर्बेरयापिताम् ॥ १९४ ॥  
 कारणं हि किमभाही मातरभ्रातिती वद ।  
 अतस्त्वं मे स्वसा पर्यादहं भ्राता तथा तव ॥ १९५ ॥  
 भुत्वा निनमती मोक्ष धैर्यमासंभ्य त मति ।  
 भ्रातरकोऽस्ति पुत्रो मे सुमीतः कुसुदीपकः ॥ १९६ ॥  
 मोहाद्दुष्टाद्वितीऽप्यपि तपो वाञ्छेद्विरकर्षीः ।  
 आसुर्पोदयमस्यास्ति नियमस्त्वपसे ध्रुवम् ॥ १९७ ॥  
 भ्रातर्भनीमसौ दीप्तां ग्रहीष्यति न सद्यः ।  
 तद्वियोगकुठारेण मे मनः क्षतस्तेऽहताम् ।  
 नीपतेऽजोऽधुना भ्रातजातास्मि चसथेतसा ॥ १९८ ॥  
 श्रुं पुरोत्सवं देवाद्दृष्ट्वाभिः सह संगमम् ।  
 सुदुर्मुहुर्बेष्मद्वारं श्याकुलाहं विमोक्षये ॥ १९९ ॥  
 भुत्वा निनमतीवापर्यं भ्रातः क्षरणिक्तो महान् ।  
 उच्ये मातर्भया भ्रातः सर्वमेतत्कथानकम् ॥ २०० ॥

मा विभीस्त्वं सुसाध्येऽस्मिन् कार्ये कार्यविदा मया ।  
 यथाकर्यचित्तत्पार्श्वे मधु मां हि प्रवेक्ष्य ॥ २०१ ॥  
 मोहनं स्तंभन मंत्रं क्षत्रं चापि बध्नीकरम् ।  
 यथावदुर्षटं किञ्चित्तत्सर्वे हेळया क्रिये ॥ २०२ ॥  
 अथ वेदभूषदनसरोमालीमधुव्रतम् ।  
 स्वत्पुत्रं न करोम्यथ तदेयं मे गतिर्धुषम् ॥ २०३ ॥  
 एवं कृतप्रतिहोऽसौ यावदास्ते षडिः स्वयम् ।  
 गत्वा मिनमती तत्र सद्दारे धनकैः स्थिता ॥ २०४ ॥  
 अगृह्यत्रैः कृपाटस्य युगलं तर्जयत्यपि ।  
 नोषाच व्रीडया किञ्चिच्चातुर्यैकनिधिस्तदा ॥ २०५ ॥  
 अंररदं द्रुघाट्य नीर्तातः सृजुना तदा ।  
 भाषीर्दानपरा जाता मसभा मणुता सती ॥ २०६ ॥  
 अथ जम्बूकुमारण विद्वप्ता विनयादहो ।  
 त्वरितं वद मो भ्रातः किमभ्रागमकारणम् ॥ २०७ ॥  
 ऊचे मिनमती पुत्र त्वयि गर्भस्थितेऽगमत् ।  
 अनुमोऽय मामको भ्रातर्षाणिश्यायं विद्वेषके ॥ २०८ ॥  
 इदानीं स समाकर्ष्य पुत्रोद्ग्रहमहोत्सवम् ।  
 दूरादप्यागतो द्रष्टुं युष्मत्संदर्शनोत्सुकः ॥ २०९ ॥  
 भ्रुत्वा मिनमतीबाक्यमूचे जम्बूकुमारकः ।  
 आनयस्वाशु भो मातरागतं मम मातुलम् ॥ २१० ॥  
 पुत्रस्याङ्गां समादाय माभ्रा नीतः समभयात् ।  
 दस्युर्विद्युत्परो नाम्ना तत्समीपं समागतः ॥ २११ ॥

मायामातुसमासोक्य जम्बूस्वामी स्वगौरवात् ।  
 आलिङ्गि महास्नहात्यर्च्यकादुत्थितो त्वरा ॥ २१२ ॥  
 पृच्छति स्थाप सं स्वामी मार्गादिकुशलं वरम् ।  
 एतावत्सु दिनेषुचैः क्व स्थितं मातुस त्वया ॥ २१३ ॥  
 भुत्वा विष्णुचरोऽन्वादीन्नागिनवपिया कदा ।  
 माणिम्यस्य कृते सौम्य शृणु यत्र मया स्थितम् ॥ २१४ ॥  
 कसिपस्यां दिशि माप्य समुद्रं मस्यवाचकम् ।  
 पटीरादिद्रुमाकर्षिमग्नोऽंगुगमनोहरम् ॥ २१५ ॥  
 अगम्यं हि सिद्धसद्वीपं केरळं देशमुभयतम् ।  
 द्रविडं चैस्पृष्टहारामं नैनसोकपरिवृतम् ॥ २१६ ॥  
 चीर्णं कृष्णसंज्ञं च काशीं कौतुकावहम् ।  
 काशीपुरं सुकास्या वै काशिनार्यं मनोहरम् ॥ २१७ ॥  
 कौतुसं च समासाद्य सद्यं परंतमुभयतम् ।  
 महाराष्ट्रं च वैदर्भदेशं नानाबनाङ्कितम् ॥ २१८ ॥  
 बिचित्रं नर्मदातीरं प्रथमं विष्यपर्यतम् ।  
 बिष्पाटवीं समुद्रज्य ततश्चसितवानहम् ॥ २१९ ॥  
 आहीरदश धरुलं मृगुकुण्डलं महत् ।  
 यत्र श्रीपासुमुपाला पबलभेच्छिनः सुतः ॥ २२० ॥  
 काङ्गुण नमर पाय किञ्चिन्नगरं सुतम् ।  
 इत्यादिकौतुकान्वेषी ह्यय वै कृतवानहम् ॥ २२१ ॥  
 पश्चिमायां च सौराष्ट्रदेशं संदृष्टवानहम् ।  
 अनिष्टं तीर्थकर्तृणां पंचकल्याणपावनम् ॥ २२२ ॥  
 यथैर्बयाद्विशृंगेषु मेमिनायीं जिनेश्वरः ।  
 स्वक्त्वा रामीमतीं भार्यां कृतपांश्च तपधिरम् ॥ २२३ ॥

संपद् संति सर्वाश्च तत्र को वर्णयेत्कविः ।  
यतो मुक्तिमगाभेमिः यदुवन्नविभूषणः ॥ २२४ ॥  
मिथुमाल विन्नालं च गच्छऽहं स्वर्गुदाचसम् ।  
लाटश्च महारम्यं सर्वसपत्समन्वितम् ॥ २२५ ॥  
विप्रकूटं गिर सौम्यं देष्टुं मास्यसङ्गकम् ।  
पारियात्रमर्षस्याथ क्षुण्णं जैनालयाङ्कितम् ॥ २२६ ॥  
उत्तरस्यामयो दृष्टा मया धाकमरी पुरी ।  
जैनवैभ्यालयाक्षिर्णा मुनिभूदेः समाभिरा ॥ २२७ ॥  
कास्मीरं करहाट च सिंधुदेशसमस्तकम् ।  
दृष्टवान्हेलया चाह किं दूरं व्यससापिनाम् ॥ २२८ ॥  
ततः पूर्वदिशाभागे कन्नौज गौडदेशकम् ।  
भंगं धगं कस्मिं च जालपरमनुभ्रमात् ॥ २२९ ॥  
बाणारसी कामरूप दृष्टवानहमादरात् ।  
यद्दृष्टं मया पूर्वं तत्सर्वं कथ्यते क्रियत् ॥ २३० ॥  
इति निविषकयौर्यं सद्विषेकी स भृञ्चन्  
परपरिचयभीत कामिनीमध्यसम्य ।  
तदनुविरतचित्तो धौरबाण्यं च किञ्चित्  
जपति जगति पूजयः स्वामिजम्पूङ्गुमार ॥ २३१ ॥

इति श्रीबन्धुस्वामिभारिणे भगवन्शीपस्त्रिभक्तार्यकरोपदेशानुसरित  
स्याश्रयानवधगमपद्यविद्याविशारदपण्डितराजमल्लविरचिते  
साधुपासनामत्रसाधुदोहरसमन्विते मार्याचतुष्कफथा-  
विष्णुवरागमनवर्णनो नाम दशमं पर्व ॥ ८ ॥



## अथ एकादश पर्व ।

धर्मवृद्धिमसादद्वै सर्वेऽभीष्टा भवतु त ।  
 साधुपासांगजस्वाही तत्र भीसाधुद्वेष्टर ॥ १ ॥ इत्याशीवादः ।  
 मर्द्धि मोहमहामच्छपतिमच्छमह स्तुने ।  
 मुनिमुव्रतमाभ्रातमुव्रतापव्रसंशिकम् ॥ १ ॥  
 मय विपुश्चरोऽप्यादीन्मया मादुलसंशिकः ।  
 मार्दबोढापमिच्छुस्त्वं जम्पूस्वामिनर्मजसा ॥ २ ॥  
 अहो जम्पूहमार त्वं महाभागा महोदयः ।  
 कामद्वयसमा कीप्या पीर्पाह्विसमा बसी ॥ ३ ॥  
 द्विमरद्विसमः सौम्यो यज्ञसाध महीतसे ।  
 मेरुबदीरबीरस्त्वं गंभीरद्वय समुद्रवत् ॥ ४ ॥  
 भानुमानिष वेगस्वी कंजवत्कामछाद्ययः ।  
 शरणागत महाराज रक्षण शुभर्मजरः ॥ ५ ॥  
 दुर्लभं भोगसायत्री जानीहि त्व परावसे ।  
 सा सदापि स्वया प्राप्ता पूर्वोपार्जितपुण्यतः ॥ ६ ॥  
 दुर्लभं वैश्वतयैर्कं वस्तुजातं स्वभावरतः ।  
 भीरुं शक्तिर्न केषाधिपयासत्यपि भोजने ॥ ७ ॥  
 परेषां भोजनं नास्ति याकतुं शक्तिस्तु पर्यते ।  
 द्वय प्राप्य न हृमीत यः स देवेन वंषितः ॥ ८ ॥

यथा वा संति कामिन्यः कामोत्साहो न विद्यते ।  
 अथ कामोद्यमस्तस्य कामिन्यो न कदाचन ॥ ९ ॥  
 यथा वा दानशक्तिबेद्रेहे द्रव्यं न वर्तते ।  
 अथ वेद्(स्त्व)गृहे द्रव्यं दानशक्तिर्न जायते ॥ १० ॥  
 देवात्तदुभय माप्य यो न संक्ते स मूढधीः ।  
 शशभृगभनुःकृष्टेर्हेति वंध्यासुतं जडः ॥ ११ ॥  
 तस्य हेतास्तपःकृष्ट विकीर्षसि विचक्षणः ।  
 सर्गं निर्बिभ्रं पूर्णं तत्सुखं स्वल्पुरःस्थितम् ॥ १२ ॥  
 तस्यस्तथा तपसा मून ततः साधिकमीहसे ।  
 इदमाकूर्तं ते प्राज्ञ न परीक्षास्रमं कथित् ॥ १३ ॥  
 एकं कथानकं रम्यं पश्चि दृष्टांतहेतवे ।  
 माग्नेय महाभाग साधनानतया शृणु ॥ १४ ॥  
 तथया करमः कथिदासीत्सौहस्पर्मपरम् ।  
 यथेच्छं कानने रम्ये भसति स्र दुमान् पद्मन् ॥ १५ ॥  
 एकदा भ्रमता तन वृक्षः कूपतटे स्थितः ।  
 आत्वादितो यथात्वाद् ग्रीवया संबमानया ॥ १६ ॥  
 तद्दृष्टानि सुदून्येष लिहता करभेण च ।  
 स्वादितं मल्लिकाजास्रान्मघुर्बिंदुं तथैककम् ॥ १७ ॥  
 पितयामास विष्टे स रसास्वादपद्मीकृतः ।  
 वृक्षस्यास्यार्ष्वंशास्त्रायां साधिकं तद्भविष्यति ॥ १८ ॥  
 निमित्त्येति महासीमादर्ष्वंशास्त्रां प्रपक्रमे ।  
 गंतुं पुनः पुनश्चीर्ष्वंशास्त्रां प्रति तृपादुरः ॥ १९ ॥

किं बहु मस्त्वसंस्तत्र मृतः कूपे पतमसौ ।  
 जर्जरंगो महासोमाष्ठमूष करभो यमा ॥ २० ॥  
 तथा त्वं भादिभागार्थे त्यक्त्वा प्राप्तं हि संपदम् ।  
 चिकीर्षसि तपशोऽग्रमज्ञानेन विमोहितः ॥ २१ ॥  
 जन्मुस्वामी ततो वाचमूषे विद्युत्परं प्रति ।  
 अमोचरमदं किञ्चिच्छृणु माम कथांतर ॥ २२ ॥  
 एको वभिक्षुतः कश्चित्तप्तधकार्यरतोऽभवत् ।  
 एकदा म्पवसायार्थे गतो देवांतरं स्वतः ॥ २३ ॥  
 मार्गे पिपासितः सोऽपमभूत्काननसंकट ।  
 स्वात्तदा जलमप्राप्य पशुपात्तयेन पीडितः ॥ २४ ॥  
 निःसृतोऽहं वृथा गेहादरण्ये पतितोऽधुना ।  
 न प्राप्नोति मम केन्यं भरणं स्यादिनिश्चयात् ॥ २५ ॥  
 चित्तमभिति यावत्स आस्ते वभिम्वनांतरे ।  
 द्रुपितस्तावत्तमत्स्यैश्चौर्यैर्कर्मपरायणैः ॥ २६ ॥  
 ततः श्रीकृपिपासाम्यां पीडिताऽसौ वभिम्वरः ।  
 मंदुं नासं पदं पैकं सुसुष्याप तरोरपः ॥ २७ ॥  
 तत्र द्रुपतः स अद्राक्षीत्स्वममेकं वनांतरे ।  
 पयः पीत्वा करोति स्व भिद्यया कैहने तथा ॥ २८ ॥  
 अथ भाद्रदशस्यः स चित्तयामास चेतसि ।  
 क सरः क जलं तत्र पन्यया पीतममसा ॥ २९ ॥  
 तद्वत्स्वमनिर्मां विद्धि मातुल्य मां च संपदम् ।  
 महतां हि कथं ज्ञेही भवेदत्र कदापन ॥ ३० ॥

इति भुत्वा कुमारस्य धार्त्वा विष्टुचरस्तदा ।  
 धातो निरुधरस्तूर्णे मिथ्यैकांतादिषादिषत् ॥ ३१ ॥  
 अथ विष्टुचरो वस्युर्मायया मातुलभ यः ।  
 निरस्तोऽपि कया कांचिदपरामग्रबीत्पुनः ॥ ३२ ॥  
 एकः कश्चिद्दुष्कृतो गृहमेधी मियारतः ।  
 तस्य मिया प्रचहास्य (स्ति) पुष्पली नवयौवना ॥ ३३ ॥  
 सैक्यादाय स्पर्णादि तद्देहादपि निर्गता ।  
 विद्याद्रवसुख मोक्तु स्वैच्छया कामरूपया ॥ ३४ ॥  
 गच्छती सापि घूर्तेन केनचिच्छ्रिता क्षणात् ।  
 रंजिता मायिना तेन चादुषाक्यकृता जषात् ॥ ३५ ॥  
 तामुद्दिष्यामददूर्तः स्नेहक्षोमलया गिरा ।  
 मुंदरि स्वयि हृष्टायां मयि स्यात्स्नेहवर्षनम् ॥ ३६ ॥  
 न जानीमो विश्वालासि कारण त्वम कर्मणि ।  
 किं वा जन्मांतराबद्धो स्नेहोऽद्याप्यवशिष्यते ॥ ३७ ॥  
 साबादीप्तेदियं संस्या मर्तते तथ वेतसि ।  
 तदा त्वमेव मे मर्ता नान्यभ्यान्यादृशः क्वचित् ॥ ३८ ॥  
 ततस्तौ दपती जातौ स्नेहबुद्धेः (द्वौ) परस्परम् ।  
 कामलीलां सुहृत्पतौ यथच्छं सुरतमियौ ॥ ३९ ॥  
 ततःप्रभृति कासोऽप्रात्क्रियान्बहुतरस्तयोः ।  
 एकदा सापि हृष्ट्या स्यात्सार्द्धमन्येन कामिना ॥ ४० ॥  
 अथ द्वाभ्यां रतं भुक्ते सा स्वस्मरश्चासिनी ।  
 निर्लज्जा निर्भूषा पापा मायामिथ्यामिर्लसिनी ॥ ४१ ॥

मनस्पन्यद्रुषस्यन्यत्कार्यं कुर्वति पापितः ।  
 अही क्वापि न कर्तव्या विन्वासस्तासु पंडितं ॥ ४२ ॥  
 एकदा प्रथमा आरदिषतयामास दुष्टपीः ।  
 निष्टुह्यापि कथं विनमनया भाषया सह ॥ ४३ ॥  
 साषायं स गतः शीघ्रं तस्मिन्सकृत्सभिषिम् ।  
 क्रोधानिष्ठा महारौद्रमूष दुश्चरित तयो ॥ ४४ ॥  
 तस्मिन्सकृत् मद्रार्थी मृणु साम्भर्षकारिणीम् ।  
 रामी कथित्समागत्य रमते मामही वष्टुम् ॥ ४५ ॥  
 अथ वैशं कथयित्स्व समा वदुं निष्ठीयिक ।  
 तदा ते स्वर्षसाम स्यादित्युक्त्वा स सुहोऽग्रामन् ॥ ४६ ॥  
 कृपाञ्जात निष्ठीयेऽथ जाग्रन्निष स्थितस्तदा ।  
 यः पूर्वोपपतिस्तस्या द्रष्टुं तच्चरितं स्वयम् ॥ ४७ ॥  
 अथागतां भाक्ता तस्या द्वितीयोपपतिः सनैः ।  
 तदृक्तात्सा समुत्पाय तस्समीप गतेत्वरी ॥ ४८ ॥  
 तत्र नीता भराज्ञौर्कृतं पापत्कार्यमातुरेष सा ।  
 तावत्तमामतस्त्वेणं प्रहीतुं तस्मिन्सकः ॥ ४९ ॥  
 तत्र कोष्ठाहसे जाते सा दुष्टा कपटान्विता ।  
 पुनर्भ्यापुष्ट्यं मुष्पाप पूर्वोपपतिसभिषौ ॥ ५० ॥  
 आगतास्ते महारौद्रास्त्वस्मिन्सकमृत्सका ।  
 वृषुः कोऽत्र सुहो तिष्ठेदित्यो वा तस्मिन्सकः ॥ ५१ ॥  
 द्वितीयोपपतिर्बेगादुवाचाम्बपर्यंतु भौः ।  
 न जाने घूर्णमानोगो (नागो) निद्रयाहं मुष्मिन्सकः ॥ ५२ ॥ --

इतोऽमुतस्ततो दृष्ट्वा बद्धः पूर्वपतिः क्षुभैः ।  
 सोऽई येनोक्तमेवैतत्सायं वेति बद्धपि ॥ ५३ ॥  
 र्त्त नीत्वागृभ स्थस्थाने घातयत्तः पदे पदे ।  
 यष्टिष्टुष्टिप्रहारैश्च महानिर्दयमानसा ॥ ५४ ॥  
 अथ सा चिंतयामास मम भ्रयः पलायनम् ।  
 अन्यथा निग्रहोऽस्माक भविष्यति न संशय ॥ ५५ ॥  
 विमृश्येति तथा जारः शिशितः स्वीयवार्धया ।  
 अथ द्वौ दंपती भूत्वा गंतुं सार्द्धं समुद्यतौ ॥ ५६ ॥  
 नीत्वाय यद्गोत्रे किञ्चिद्दस्त्रासंकरणादिकम् ।  
 उच्यते बहुमुत्सर्गं च जारेणामो चक्षाल सा ॥ ५७ ॥  
 मार्गेऽजाघां नदीं प्राप्य पतिमन्योऽबद्धदा ।  
 मिये बह्नादिकं मर्षं ददस्वाशु विवर्णकया ( कृता ) ॥ ५८ ॥  
 समुत्तीर्य गते पारे स्थापयामि मुनिबसम् ।  
 एकत्र मुस्यते स्थाने बह्नासंकरणादिकम् ॥ ५९ ॥  
 पश्चादागत्य स्वस्कंधे त्वामारोप्य प्रयत्नतः ।  
 शंकादुत्तारयिष्यामि निःश्रुत्पूहता मिये ॥ ६० ॥  
 स्वयं भूर्तापि विश्वासान्मन्यमाना तथैव सा ।  
 ददौ स्वर्णादिकं तस्मै प्रतीता पतिशुद्धितः ॥ ६१ ॥  
 सा स्वयं नक्षिका भूत्वा तस्थापर्षाकृतं कथित् ।  
 भीमत्सा निक्षपा हृदया डाकिनीश्च भयकरा ॥ ६२ ॥  
 अथात्तीर्य गत पारे तस्याश्वोपपतिर्जघात् ।  
 नागतः पुनरत्रासौ नेतुमेकाकिनीमिमाम् ॥ ६३ ॥

सायाच रे महापूतं मां मुक्त्वेह गर्तं त्वया ।  
तैनोक्तं हे स्वस्रं त्वम विष्टु त्व पापशाछिनि ॥ ६४ ॥  
एतस्मिन्नतरे कश्चिर्भ्रंशुकः समुपागत ।  
वत्पुच्छ वाक्यभाषु मांसस्येदं मुत्स दधन् ॥ ६५ ॥  
मसादुष्ट (च) सितं मत्स्यमेकं दृष्ट्वा स भ्रंशुकः ।  
वाचति स्म महासायान्मुक्त्वा मांसं मुत्से स्थितम् ॥ ६६ ॥  
सादुर्मर्देति वाचत्स मत्स्याज्याद्वारिमध्यगः ।  
मांसपिष्टमितो वृद्धा नीत्यागात्काननार्तरे ॥ ६७ ॥  
वमभ्रष्टं तमासोक्य भ्रुकुं दैवयंचितम् ।  
सा कामिनी महासोकैः पदितमन्यमानसा ॥ ६८ ॥  
अभिचार्यं कृतं वै तज्भ्रंशुकन ह्युद्धिना ।  
मुक्त्वा स्वापीनमपेतत्परायणं समिच्छता ॥ ६९ ॥  
पारं स्थिताऽब्रह्मदूतो मर्ममिदूषनं तदा ।  
त्वयापि किं कृतं मूर्खे पश्यात्मानं मुनिधिता ॥ ७० ॥  
अयं निर्यग् न जानाति वाच्यावाच्यं द्विवाहितम् ।  
त्वं विदग्धा स्वमर्तारं इत्वा धान्यरतामसत् ॥ ७१ ॥  
तर्जयन्निति तां मुक्त्वा पूतोऽयात्स्वीयसधनि ।  
तदा सापीमुत्सी ज्ञाता नारी कञ्जापरा यवा ॥ ७२ ॥  
तथा त्वमपि मा गच्छ भागिनयोऽब्रह्मस्यताम् ।  
त्यक्त्वा इस्तस्थितां सस्वीमिच्छन् दूरं स्थितामहो ॥ ७३ ॥  
ऊचं भेषुङ्गमारोऽस्तौ परकृपां श्रुतिपिञ्जलाम् ।  
प्रसरद्भ्रमन्योतिरुद्भोतितनिशाक्यः ॥ ७४ ॥

आसीद्गणिकमुतः कश्चिदाइनव्यवसायवान् ।  
 एकदा पातमारुह्य सोऽगाढीपांतरं क्वचित् ॥ ७५ ॥  
 सर्वं वस्तु मुचिक्रीय रत्नमकं समग्रहीत् ।  
 ततः स्वगृहमुदिश्य चघालु षणिर्जां पर ॥ ७६ ॥  
 धितयमिति स्व विधे कार्यसदाहमीहितम् ।  
 इत्तं सस्याप्य तद्रत्नं विस्राकयन्मुहुर्मुहुः ॥ ७७ ॥  
 वेसाकृत्समितं प्राप्य विक्रियेऽहं महन्मणिम् ।  
 शरीप्यामि गमान्वादि विधिर्षं वस्तु मुदरम् ॥ ७८ ॥  
 ततो नृपसमा भूत्वा यास्यामि निमपत्तनम् ।  
 भ्रिया च क्षोभया पूर्णो मंभिमृत्वादिसेधित ॥ ७९ ॥  
 तथापि स्वगृहे स्थित्वा जीविष्यामि सुखं यथा ।  
 शालय-पुत्रपौत्रादि पश्यन् योपित्तु सस्मितम् ॥ ८० ॥  
 एवं धितयतस्तस्य यावद्रत्नमपीपतत् ।  
 इस्तादम्भौ प्रमादाद्वा दुर्देवाद्वा महाध्रमा (१) ॥ ८१ ॥  
 मोघीभूतास्ततस्तस्य चित्तिताम मनोरयाः ।  
 न हृष्यते महारत्नं हाहाकारं प्रकुरुषता ॥ ८२ ॥  
 तथाहं न भविष्यामि मातुल त्वमनैहि मो ।  
 त्यक्त्वा धर्मफलं सौख्यं दुःखं भुंजामि समति ॥ ८३ ॥  
 इत्युत्तरप्रदानेन स्वामिना कथितेन वै ।  
 निरस्तो मातुलो नाम्ना बीरो विद्युच्चरोऽभवत् ॥ ८४ ॥  
 पुनराह कयामेकां दस्युर्विद्युच्चरस्त्वदा ।  
 इतोऽपि मुरजो नूनं करोति मधुरध्वनिम् ॥ ८५ ॥



तपया पातुक्तः कश्चिद्विद्याऽप्यासीदनुषरः ।  
 नाम्ना दृढमहारीति विष्वात्रो संबसन्धिति ॥ ८६ ॥  
 तनैकत्रा इतो धन्या कुमरी पाणसंहतः ।  
 वारि पातुं कृपाकांतः समागच्छन् जस्राश्रय ॥ ८७ ॥  
 देवात्सीश्रपि मृता मिच्छां दष्टः सर्पेण तस्त्रणात् ।  
 अथ साश्रपि धनुषांतान्यृतभाशु भुनगमः ॥ ८८ ॥  
 मृतेष्वंतपु जीबेषु गमामिच्छादिषु स्फुटम् ।  
 आगतस्तत्र गोमायुः धुषितः कामनादित ॥ ८९ ॥  
 पतितं चापि बीक्ष्याशु गर्भं भिष्टं सरिसृपम् ।  
 धनुभापि स हृष्टांगो जाता सांभादुसुत्सया ॥ ९० ॥  
 धितति स्माय गोमायुः कुंजराऽयं मृतो महान् ।  
 भक्षयिष्यामि पश्यासं यावदन्नं मुनिब्रह्मम् ॥ ९१ ॥  
 ततो मासैरुपर्येतमष्टे नरकशैबरम् ।  
 ततोऽप्यकदिनं यावत्सर्पं भाक्तास्मि निमित्तम् ॥ ९२ ॥  
 इमं ययास्थिताः सर्वे तिष्ठन् कुंजरादयः ।  
 तावदथ यया भीक्ष्या व्यावृद्धा गुण एव हि ॥ ९३ ॥  
 इति तं भक्षमाणोऽसौ गोमायु पापपाकृतः ।  
 मृतस्फुटच्छरापाताचाहस्फाटेन दुःखितः ॥ ९४ ॥  
 यया बहुसुखं विच्छन् गोमायुर्मृत्युमागमत् ।  
 तथा स्वमैहिकं सौख्यं त्यक्त्वा या गच्छ हास्यताम् ॥ ९५ ॥  
 पातुसोक्तं ततः भुत्वा प्रोच अमृतकुमारकः ।  
 किंचिच्छुषांतरं रम्यं प्रतिपाद्यदिविदित्सया ॥ ९६ ॥

एकः कर्मकर कश्चिदासीदतिदरिद्रिषान् ।  
 वनादिन्वनमानीय विक्रीय कुरुतेऽश्नम् ॥ ९७ ॥  
 अपैकदा महामारं नीत्वा स्कन्धे कथंचन ।  
 प्रतस्ये षट् मध्याह्न स्वालय प्रति यत्नतः ॥ ९८ ॥  
 माराश्रांतोऽथ पापात्मा तप्तताल्लभ तृष्ण्या ।  
 क्षणं मुष्वाप श्रांतः सन्नपमारस्वरोरथ ॥ ९९ ॥  
 सुप्त स स्वप्नमद्राक्षीभिद्रया कर्मकारक ।  
 साम्राज्यपदमारुहं स्वात्मानं समपश्यत् ॥ १०० ॥  
 आसीनं विष्टरे रम्ये मणिमौक्तिकयूपिते ।  
 पञ्चामरसंपातैर्बीज्यमानं मुहुर्मुहुः ॥ १०१ ॥  
 बंदिहृदमयाराधै स्तुयमानं मनोहरै ।  
 कापि यौवंतमध्यस्य कालकेसिरसाङ्गुलम् ॥ १०२ ॥  
 गमाश्वादिपरीभारैर्बेष्टिते रामर्मदिरे ।  
 अश्रांतरे स पादाभ्यां ताडितो यष्टिमुष्टिभिः ॥ १०३ ॥  
 भार्यया स्वस्य तथैत्य क्षुधापीडितया बलात् ।  
 उत्थितो जागरूकः स पितयामास कर्मकृत् ॥ १०४ ॥  
 कथं सस्मीः क साम्राज्य दृष्टनष्टं क्षणादपि ।  
 तदन्माम कलुषादि स्वप्नसाम्राज्यसन्निभम् ॥ १०५ ॥  
 जानीहि क्षणिकं सर्वं सद्यःश्राणापहारि च ।  
 मत्स्येति माम को घीमान् जनो दुःस्वास्थ्यं व्रजेत् ॥ १०६ ॥  
 त्यक्त्वा स्वात्मीत्यितं सौम्यं जन्मपृथुनिनाशकृत् ।  
 जघृस्वाधिकयां भुत्वा प्रोथे विषुधरः सुधीः ॥ १०७ ॥

यामिनीपद्मिमे मागे तुर्ये चापि कथानकम् ।  
 एकं कश्चिन्नर्तौ मिथो कृत्वा विज्ञानकोषिदः ॥ १०८ ॥  
 आसीदत्र मुविम्यातो यथानामा कृतहसी ।  
 अथैकदा वृषस्याग्रं ननर्त्त बहुर्काससात् ॥ १०९ ॥  
 नर्तकीभिः समाकीर्णः सासंफारिमिरप्यसौ ।  
 तन्वृत्स्यं पश्यता राज्ञा प्रसन्नमनसा तदा ॥ ११० ॥  
 दर्शं स्पर्णादिकं ताम्यः पट्टकृत्सादिकं तथा ।  
 राज्ञः प्रसादं नीत्वा ते क्षुपुपुस्तत्र निद्रया ॥ १११ ॥  
 रजन्यां जागरुकृत्स्वार्तुमसमक्षा नटा ।  
 अथ क्षुपेषु तेषूचैर्नर्तय्यादिभर्त्स्यति ॥ ११२ ॥  
 नन्वर्ष्यस्तदा तस्यौ जाग्रन्नेव स पापपीः ।  
 जाग्रता विवर्तितं तेन र्षकृत्स्वपियाऽधिप्या ॥ ११३ ॥  
 नीत्वा हेमादि सर्वस्वं गच्छयं नीहृदंतंर ।  
 यथोत्पन्नं कृतं तेन नीत्वा सर्वस्वममसा ॥ ११४ ॥  
 गंतुकामो वृत्तस्त्वर्षे जाग्रन्नर्त्तकीजनैः ।  
 पौरस्वनामियुक्तस्तेर्नीता भूपस्य सभिधिम् ॥ ११५ ॥  
 हृष्ट्वा रुष्टं भूपेन कृतं पौरोषितं हि यत् ।  
 तद्दर्शं मागिनपाहो अम्बूस्वामिन्महामत ॥ ११६ ॥  
 यागाढहर्षसाभाय श्रीष्यान्नस्यां कदाचन ।  
 अम्बूस्वामी निश्चम्यैठन्मातृलोकां कर्पावरम् ॥ ११७ ॥  
 किंचित्कथांठरे रम्यं मोवाच प्रदिभान्वितः ।  
 वाराणस्यां मुविम्यातो भूयाऽप्यासीन्महत्तरः ॥ ११८ ॥

आस्यया लोकरपालोऽसौ राज्यभारधुरंधरः ।  
 तस्य राक्षी तु नाम्ना स्याद्ब्रह्मपट्टा मनोरमा ।  
 कंदर्पस्य धनुर्वेष्टिर्जिगीषोरिव भूपते ॥ ११९ ॥  
 भवान्येषुः स भूमीशो नगामाशु स्यलीलया ।  
 आलेटकक्रियासक्तो धन्या इतु वनांतरे ॥ १२० ॥  
 भ्रमांतरे महाराक्षी राक्षस्वस्य मनोरमा ।  
 कामुकी रंतुकामासीत्कामबाणैर्निपीडिता ॥ १२१ ॥  
 द्रुव कांचिस्समाह्वय विदग्धामभिसारिकाम् ।  
 पित्तस्यं गूढमाकूतं सानुद्वीमषेदयत् ॥ १२२ ॥  
 मातर्मो च विमानीहि तद्भाषां सोढुमत्समाम् ।  
 क्षतरां कुपिते कामे स्वयि तत्स्परमानसाम् ॥ १२३ ॥  
 तत्सं मे श्ररणं भूयाः सोषता मदनुग्रहे ।  
 मानयस्वाशु गत्वाथ सुंदर तद्वण नरम् ॥ १२४ ॥  
 तत सोषे महापापा दृती साहसिकं वधः ।  
 मय्यत्र सानुकूलार्था मा दौस्थ्यं कुरु सुंदरि ॥ १२५ ॥  
 माह्वयामि स्वभार्ताभिर्निष्काममपि योगिनम् ।  
 का कथा नरकीटानां क्षमाशासत्रवर्तिनाम् ॥ १२६ ॥  
 अंतरे देवयोगाद्रे स्मसौषस्थितया तथा ।  
 इष्ट काञ्चिप युवा वीर्यां पर्यटंस्तत्र सीलया ॥ १२७ ॥  
 नाम्ना वंग इति म्यात स्वर्णकारा इडोरुकः ।  
 अयमेवाचितो रंतुं तथा धैत्यवसूहित ॥ १२८ ॥  
 इष्ट्या तं मृगशोभासी दृती मत्याह पुंभसी ।  
 पनमानय सोपापिर्भवनस्य कृते मम ॥ १२९ ॥

प्रवस्थे सा तदादशावृत्ती मायान्विता सती ।  
 आनयामास तं बगात्सियता यत्र मनारमा ॥ १३० ॥  
 सा राक्षी रंतुकामा तं यावधीत्वा स्वसघनि ।  
 क्षय्यातल्ल समायाता सस्मरा मुरतीत्सया ॥ १३१ ॥  
 तावद्देवाद्गमास्ता भूपाऽप्यत्र समागतः ।  
 पृथातपत्रसच्छाया धीजपमानः मुषामरैः ॥ १३२ ॥  
 आगच्छतं तमासाक्य रामान स्वर्णकारकः ।  
 म्याकुलाऽभूत्त्रयाक्रांतः कपमानो मुहुमुहुः ॥ १३३ ॥  
 गापयित्वा तथा र्गं क्रीडन्त्याद्गूढरूपक ।  
 सन्मुखीभूय भूपालः क्लृप्तासीतः स्वसघनि ॥ १३४ ॥  
 कामासक्तः स भूमीश्वरः पञ्चासं स्थितवानिह ।  
 मनोरमां मुस्तामौमर्गंभङ्गुष्यमधुव्रत ॥ १३५ ॥  
 जीघनस्य कृतं तत्र घ्रासमार्त्रं प्रपत्नतः ।  
 मुक्तोष्णितृच्छादेव क्षिपति स्म मनारमा ॥ १३६ ॥  
 एष यावत्स पञ्चास विष्टस्तत्रातिदुर्गलितः ।  
 पांडुरोगी महापापाज्जाता दुर्गपयासितः ॥ १३७ ॥  
 अथ भूपाङ्गपा नीचः कृप प्रसासिते जलैः ।  
 र्गं प्रणासिकाद्वाराभिर्गस्यागात्सरित्ते ॥ १३८ ॥  
 तत्रत्ये सर्वसाक्षेऽथ पृष्टः साधर्यमानसै ।  
 क्षात्रसि त्वं ते कथं पांडु जातं कांचनसधिभम् ॥ १३९ ॥  
 र्गनोक्तमही श्लोका मत्सीन्दर्पासन्नोफनात् ।  
 योक्तुं पातालकन्याभिनीताश्च परमावरात् ॥ १४० ॥

- तत्र गतुक्ताप मां ज्ञात्वात्मीयमृशान्मुखम् ।  
 बहुर्वैषर्ष्यमत्यतं कोपाक्रांतास्तु ताः स्वलाः ॥ १४१ ॥  
 निसर्गवाप्रपि यत्सत्य न बंदति कदाचन ।  
 किं पुनः कारण प्राप्य तद्यथा म्वणकारक ॥ १४२ ॥  
 तत्रापि क्रमादेव कृच्छ्राच्छर्षैर्गृह प्रति ।  
 आगतभंगनामासौ कथक्यमिवात्महा ॥ १४३ ॥  
 तत्रानातेमहादेयेर्नीतः सौरभ्यमादरात् ।  
 सुगधद्रव्यसंयोगै शोभनांगोऽभयघया ॥ १४४ ॥  
 भवेत्कदा गतस्तत्र वीथ्यां कार्यबध्नादिह ।  
 रामसौषसमीपस्यो ह्यष्टः साऽपि तथा स्त्रिया ॥ १४५ ॥  
 तथैव सस्मरा साचे वंगमुदिश्य संज्ञया ।  
 आगच्छागच्छ धी मूयीऽप्यकन्तो मम सद्यनि ॥ १४६ ॥  
 वंगेनोक्तमस्य स्नहेस्तापकीयैः स्वसेऽधुना ।  
 यत्प्राप्तं स्वदृष्ट्वाहुस्व विस्मरामि न तत्क्षणम् ॥ १४७ ॥  
 अद्यापि न तन्महेहाहोर्गच्छ याति सबतः ।  
 अपसर्गाथेन्मुक्ताऽहं नाविमृश्यं करोम्यतः ॥ १४८ ॥  
 तदुभाहं भविष्यामि सुखलेशस्य हेतवे ।  
 तिर्यगादिगतिज्वाहो जातुषिदुःखमाजनम् ॥ १४९ ॥  
 बहुमलपितेनालं मातुल स्वमथैहि धो ।  
 नाहमाह्यं सुखं श्रेजे समाधानस्तैरपि ॥ १५० ॥  
 ज्ञात्वा बिष्णुशरी दस्युः कुमारं दृढमानसम् ।  
 स्तुतिं चक्र मुनिर्विष्णु सौऽप्यासन्नमयः स्वत ॥ १५१ ॥

ततस्त्वयात्र यज्ञाणि शृङ्गानीष निजान्वयात् ।  
 फटसानीष मायायाः क्षणादथ विषक्षणं ॥ ५० ॥  
 तुभ्यात् कृत्स्नं च यत्किञ्च मणिषष्टितं ।  
 इहं क्षणमस्यैव सत्सारस्य महाद्विषः ॥ ५१ ॥  
 ततः कुंडलयुग्मं च न्यक्कृतं कर्णयाः स्थित ।  
 भुङ्क्तेनरपस्यैव चक्रयुगमपिनामुना ॥ ५२ ॥  
 कचस्रोषः कृतस्तन कराभ्यां स्वस्य स्त्रीक्षया ।  
 पंचमुष्टि यथाभ्रायमाश्रमभाषरभिति ॥ ५३ ॥  
 ततर्भागीकराति स्य गुरोरादन्वतः क्रमात् ।  
 शुदान्मूत्रगुणान्सवानष्टाविश्रतिसंमितान् ॥ ५४ ॥  
 महायतानि पंचैव स्मृताः समितयस्तथा ।  
 इद्रियाणां निरंशथ पश्यति प्रकीर्षिताः ॥ ५५ ॥  
 सौषधका गुणी मुस्यः पादावश्यकसत्किया ।  
 अथेसत्त्वं ततः प्राक्तं शुद्धचारिभ्रपारिमिः ॥ ५६ ॥  
 अहिसाव्रतसिद्धर्ष्यं पतीनां भ्रानभर्मनम् ।  
 प्राशुकावनी क्षयनं वैराग्यादिविहृद्धये ॥ ५७ ॥  
 दसकाष्टादिभागश्च विरागाणामनुक्षमः ।  
 गन्धुपादिक्रिया चापि कूर्ध्वभ्या न यतीश्वरैः ॥ ५८ ॥  
 कापात्सर्गेण भोक्तव्यं स्थितिप्रामनमेकद्वयः ।  
 केषसं देहसिद्धर्ष्यं न भागार्थं फलावन ॥ ५९ ॥  
 एतं मूत्रगुणाः प्रोक्ताः भ्रमणानां भिनैश्वरैः ।  
 संत्युचरगुणाभापि स्रसाधतुरशीतिकाः ॥ ६ ॥

सर्वेऽप्यामरणं नीत्वा पासनीया सुसुष्टुमिः ।

एतत्समुदितं सर्वं निश्चितं स्वाग्निव्रतम् ॥ ६१ ॥

इत्युक्तं गुरुणा स्वेन गुरुणा सहृणैरपि ।

भुत्वा जन्मूत्सुमारोऽसौ सर्वं जग्राह शुद्धपीः ॥ ६२ ॥

ततो जयजयारावन् चक्रुः सर्वेऽपि समुदा ।

श्रेणिकममुत्सा भूषा सर्वे पौरजनास्तथा ॥ ६३ ॥

ततः केषिन्नु भूपालाः शुद्धसम्यनत्वभूपिताः ।

बभूवुर्भूतयो नूनं पयामातस्वरूपकाः ॥ ६४ ॥

केचिन्माहावृतेस्तत्र क्लीबत्वेन कद्रपिता ।

भावकस्य प्रतान्युच्चैस्तेऽपि जगृहुः सादरात् ॥ ६५ ॥

अथ त्रिष्टुब्धरो दस्युर्बिरक्तो मधमोगतः ।

सर्वसंगपरित्यागछल्लभं प्रथमग्रहीत् ॥ ६६ ॥ ✓

सार्धं पञ्चसुतैर्भूपुत्रैरासीत्स सयमी ।

दस्युर्कर्मरतैः सर्वैः प्रथमादिमुसंश्रिकैः ॥ ६७ ॥ ✓

अतः परं मुनिर्षिष्णः सोऽर्हसासो गणिम्बरः ।

सकल्मषं गृहं त्यक्त्वा इहोऽयन्मुनिकुंजरः ॥ ६८ ॥ ✓

मुप्रभासांतिका पार्श्वे माता भिनयती ततः ।

संसारासारतां मत्वा स्यादार्यिका ( याः ) प्रतान्विता ॥ ६९ ॥ ✓

पञ्चभीममुत्सा बज्जी बीहस्य संसृत्विसंस्थितिम् ।

मुप्रमां गणिनीं नत्वा वृद्धंति स्म तपो महत् ॥ ७० ॥ ✓

प्रणम्याशु ततः सर्वान् सौधर्मादिमुनीन्परान् ।

जग्मुः श्रेणिकभूषाद्याः प्रदिसप्तसमुत्सुकाः ॥ ७१ ॥



अहो स्वामिभद्रो प्राङ्घ्र्योऽसि त्वं जगन्मये ।  
 मास्त्रां का कथा नाथ त्वं पूज्यस्त्रिदशैरपि ॥ १५२ ॥  
 संसारमच्छेपे पारं प्राप्ताऽसि त्वं महामते ।  
 धर्मकृत्यतरोमूले त्वं भेत्ता कमभूषिताम् ॥ १५३ ॥  
 इत्यादिस्त्वन्नं कृत्वा तेन विपुषरप वै ।  
 निर्धेपमात्मवृत्तं गदितं तस्करादिकम् ॥ १५४ ॥  
 अत्रांतरे दिमासीत्प्राग्रक्तवर्णा घुमास्वरा ।  
 भम्बुङ्गुमारसंत्यक्तै रागैर्जातैरिवाश्वनिः ॥ १५५ ॥  
 केचित्सद्दृष्टपस्तमं ध्यानसंछीनमानसाः ।  
 कापीत्सर्गपरा भव्या बभूवुः परमादरात् ॥ १५६ ॥  
 कपिध्वीमग्निनेष्टानां पूर्वां कर्तुं समुपताः ।  
 गंधधुपादिसामग्रीं स्वीकुर्वाणा बभूवुराम् ॥ १५७ ॥  
 गतो वेगाद्भवेति ह्य भानुभानुदयाचक्षात् ।  
 स्वाभिर्न द्रष्टुमौस्तुकपादुचक्ष्व गर्भस्तिथिः ॥ १५८ ॥  
 यत्प्रसादान्महासत्त्वा सुमतिं सुखमभ्युतम् ।  
 शक्रचक्रपदं वैव सख्यां धर्मः स धार्मिकैः ॥ १५९ ॥

इति श्रीअम्बुस्वामिचरित्रे भगवत्सुधीपदिभस्तीर्थकठेपदेशानुसरित  
 स्वात्प्रान्तवधगणपपनिवाविशारदपण्डितजनमह्यविरचिते साधु  
 पासश्रमनसाधुटोडरसमन्यार्थिते विपुषरकथा-  
 चतुष्कर्णनो नाम एकादश पर्व ।

## अथ द्वादशः पर्वः ।

त्रिविधस्तु सदा तुभ्यं जैनशासनशासनात् ।  
 साधुपासांगमस्यास्य तत्र श्रीसाधुदण्डर ॥ १ ॥ इत्याशीषाद् ।  
 नेमिं नमस्तुराधीश्वर पञ्चकल्याणभागिनम् ।  
 नेमिं धर्मरयस्येव नेमिं नौमि नगदुःखम् ॥ १ ॥  
 अथ प्रमातसमये यद्भूष्णैष्ठिनो गृहे ।  
 प्रवक्ष्यामि तदेवोच्चैर्यथावृत्तमनुक्रमात् ॥ २ ॥  
 नैशं तस्य कथावृत्तमश्रौपीच्छण्डिणो नृपः ।  
 अर्हसासेन समोक्तं स्वतो गत्वा नृपालयम् ॥ ३ ॥  
 सप्त वैश्वदेवमासाद्य सान्द्रस्नेहवशान्तृपः ।  
 धर्मबुद्ध्या पुनः सोऽप्यज्ञातमानन्दनिर्मरः ॥ ४ ॥  
 नैदुर्दुःखमयस्तत्र श्रेणिकस्याज्ञया तदा ।  
 केवलज्ञानसाम्राज्यपदावाप्तिर्नयावहा ॥ ५ ॥  
 यद्गानकनादैश्च व्याप्ता भूवलयस्तदा ।  
 कल्याणेष्वेष तीर्थेशां व्योममार्गे यथामरैः ॥ ६ ॥  
 आगत श्रेणिके भूपः सात्त्विकः श्रेष्ठिनो गृहे ।  
 स्नहार्द्रः सङ्घट्टम्बभ्य संदितुं स्वामिपंकजम् ॥ ७ ॥  
 नम्रवक्त्रादिषेष्टाभिर्निर्विकारामिरस्य वै ।  
 धीरं वैराग्यमाख्यं स्वामिनं सोऽप्यभिज्ञपत् ॥ ८ ॥

ज्ञात्वा स भूपयामास स्वामिन भूपणादिभिः ।  
 आनमपि बिरागं तं भावशुद्धपर्षमात्मनः ॥ ९ ॥  
 षडनादिद्रवैरंगं चर्चितं स्वामिना षभौ ।  
 यया मेरौ भिनन्नस्य भूपनेशामरेक्षिना ॥ १० ॥  
 सशैस्वरं श्विरस्वस्य शोभामापातिशायिनीम् ।  
 स्वयंवराय मुक्तभीकामिन्या इष संस्तुतम् ॥ ११ ॥  
 ततः सानुमतिर्भूत्वा भूपतिः श्रेष्ठिना सह ।  
 शिबिक्रयां स्वहस्वाभ्यां स्थापयामास स्वामिनम् ॥ १२ ॥  
 वन गंतुं समुष्टुकं स्वामिनं तपसः कृते ।  
 सर्वैः पौरजनस्वभ्राममदीक्षितुमादरात् ॥ १३ ॥  
 सन्नक्षर्याप्यतीत्यापि धारंती अनसंहतिः ।  
 अद(ह)ष्टमिष तं द्रष्टुमामगाम सकौतुह्यत् ॥ १४ ॥  
 मुक्तभार्यापतुष्कोऽसौ सिद्धिसौख्याभिलापनान् ।  
 धन्योऽप्यमिति सर्वेऽपि भ्रमस्थुस्त परस्परम् ॥ १५ ॥  
 हाहाकारो महानासीत्तदा रामसूदे पुरे ।  
 केषिचस्नेहसंसक्ता मुमुक्षुरिष दुःखिताः ॥ १६ ॥  
 भ्रातरे समायाता माता गिनयती सती ।  
 स्रवदभुसमाकर्तं गद्गद् चामिजस्यति ॥ १७ ॥  
 प्रतीक्षस्व सर्गं यावत्पुत्रं मां यातरं मति ।  
 इति दीनगिरं मीहादुत्तिरंती मुमुक्षुष्या ॥ १८ ॥  
 नष्टनेष्टामिबासोक्य चर्भुं तापद्रुमनः ।  
 बिलसाप महामोहात् सघोरं गिरसुत्तिरन् ॥ १९ ॥

हा नाथ मन्महामाण हा कंदर्पकसवर ।  
 अनाया वयमघाहो विनाप्यागाकृता कथम् ॥ २० ॥  
 पिन्द्रैवं यन दत्तास्य तपस पुद्दिरुत्कृता ।  
 पश्यता स्म महादुःखं तत्कारुष्यमकुर्वता ॥ २१ ॥  
 अथापि भा कृपानाय प्रसीद कुरु मादवम् ।  
 हृत्स्व भोगाश्चभोगाभाषित्युचुस्ताः प्रियास्वदा ॥ २२ ॥  
 रेजुर्षय कथ नाथ त्वां विना दीनवृत्तयः ।  
 यथा चन्द्राहते राशिरिति दनिगिरथ वाः ॥ २३ ॥  
 तत्र सोपायमालम्ब्य संदनादिद्रवैरपि ।  
 यत्नैर्निनमती नीता ताभिश्चतनतां तदा ॥ २४ ॥  
 सावधाना तदा मोचे माता जिनमती सती ।  
 वीरवैराग्यमारूढं स्वामिन प्राप्ति प्रभयात् ॥ २५ ॥  
 कंदं तत्र अपुर्वत्स कदलीगर्भसोमसम् ।  
 खड्गधारानिभ पुत्र कंदमुग्रतरं तपः ॥ २६ ॥  
 अंगुष्ठाज्ज्वरसिता वदियया याति म्यमस्तक ।  
 तथा तपो विजानीहि तस्मादप्यतिरिक्तम् ॥ २७ ॥  
 कर्तुं भूयपनं बाल कथं शर्त्तोपि दुःखम् ।  
 बाहुमुच्छीपक कृत्वा गामिप्यसि कथं निशाम् ॥ २८ ॥  
 अप्यावां (हि) परित्यज्य पितरौ कामनाश्रयो ।  
 विना गा (ः) दुःखितां कृत्वा कथं यासि वनांतर ॥ २९ ॥  
 इमा वप्त्रभनसाऽपि त्वामृते दुग्धपूरिताः ।  
 एकाकिन्यो न धामंते भारगुन्या मिया इव ॥ ३० ॥

इत्यादिबहुधासापैर्विस्तरपंतीपिवापुराम् ।

मातरं प्रति प्राञ्जल जम्बूस्वामी हृदाश्रयः ॥ ३१ ॥

मातः श्लोकं धरीद्वि त्वं कातरत्वं परित्यज ।

भावयामस्त्रमेवेयामनिर्त्या संसृतिस्मितिम् ॥ ३२ ॥

आदौ वैपयिकं सौम्य मातर्हृत्पत्वाञ्छितं मया ।

बहुधाऽपि पतस्तद्वि न समीहामहं मयम् ॥ ३३ ॥

स्वर्गेऽपि यन्महाभागैर्नागात्तृप्तिमयं जनः ।

एभिः स्वमनिमैर्मर्त्यैः स कथं तृप्तिमाप्नुयात् ॥ ३४ ॥

न मानं विपत्तौ वारानमयं नारकं सुरः ।

वियक्त्वापि नरव्याहं भूत्वा भूत्वा पुनः पुनः ॥ ३५ ॥

उक्तं च—

“ कृति न कृति न वारान् भूपतिर्भूरिभूतिः

कृति न कृति न वारानत्र जातोऽस्मि क्रीटः ।

नियतमिति न कस्याप्यस्ति सौम्यं न दुःखं

जगति तरलरूपे किं मुदा किं शुभा वा ॥ १ ॥ ”

इति प्रभृतिवाक्यद्वैरुचितैरमृतोपमैः ।

मातरं प्रतिर्षाण्याशु निरगात्स निभासयात् ॥ ३६ ॥

गच्छन्नुबन रेजे तदासौ चिम्वस्त्री शृणात् ।

शुटर्धनस्पर्धर्षी महामम इव द्रुतम् ॥ ३७ ॥

स्तुवंति स्म तदा शृणाः सर्वेऽप्यासन्नमभ्यक्षाः ।

वृणाव मन्यमानं तं पर्यं साम्नाभ्यसन्नमम् ॥ ३८ ॥

भयानदसमाप्तुक्तैः श्रेणिकादिवृपादिभिः ।  
 शिबिकायां स्थितो नीतो हस्तादस्ते स काननम् ॥ ३९ ॥  
 फलपुष्पसमाकीर्णमकालेऽपि फलोदयम् ।  
 तदा तत्काननं रेज किञ्चिन्मृष्टविशेषकम् ॥ ४० ॥  
 अनिष्टोद्भूतश्चात्मात्रैश्चसमानैरितस्ततः ।  
 जम्बूस्थामिकुमारस्यागम नृत्यमिवातनोत् ॥ ४१ ॥  
 तत्रस्यं मुनिमानस्य गुरुं सौधर्मसंग्रहकम् ।  
 अपविष्टो यथास्यान कुमारोऽमिमुत्स मुनेः ॥ ४२ ॥  
 चत्तमणि म विन्यस्य कुदमलीकृतहस्तकम् ।  
 तेन जम्बूकुमारेण विज्ञप्तो मुनिरादरात् ॥ ४३ ॥  
 कृपासागर सद्गुण मासुद्धर मषार्णवात् ।  
 नानादुःखशतवर्तीनिमज्जते कुयोनिषु ॥ ४४ ॥  
 अथ मे करुणां कृत्वा देहि दीप्तां मषापहाम् ।  
 पावनीं सस्पृहां सर्वैः कर्मनिर्मूलनसमाम् ॥ ४५ ॥  
 सम्भानुः स शुद्धात्मा गुरोः सर्षसमस्ततः ।  
 अंगादुच्चारयामास भूपणानि विरक्तपीः ॥ ४६ ॥  
 तावत्पुष्पस्रजो मुक्ताः स्पकिरीटाग्रकाटितः ।  
 श्रीकृता वसादेव मन्मथस्य शरा इव ॥ ४७ ॥  
 आसिपन्मुकुटं मूर्द्धधो हेलया रत्ननिर्मितं ।  
 मानौभत्यमिवाश्रये निर्जपान्माहभूपतेः ॥ ४८ ॥  
 ततोऽप्युच्चारयामास शरावस्थापलंकृतान् ।  
 मुद्रिकाशीघ्र सद्रत्ननिर्मितानंगतः स्फुटम् ॥ ४९ ॥

ततस्त्वस्याज ब्रह्माणि श्रुत्स्वर्गादीष निजान्ब्रयात् ।  
 पटञ्जानीष मायायाः क्षणादेव विचक्षणः ॥ ५० ॥  
 तुभ्यं कृत्स्नं च यन्त्रि मणिबद्धितं ।  
 दृढं वचनमस्यैव संसारस्य महाद्रिपः ॥ ५१ ॥  
 ततः कुण्डलपुग्मे च न्यक्कृतं कर्णयोः स्थित ।  
 मुद्गरवरयस्यैव चक्रपुग्ममिदामुना ॥ ५२ ॥  
 कृपमाचः कृतस्तेन करार्थ्या स्वस्य लीलया ।  
 पञ्चसुष्टि यथाभ्रायमाभ्रमधीश्वरमिति ॥ ५३ ॥  
 ततश्चाङ्गीकरोति स्य गुरारादन्नतः क्रमात् ।  
 शुठान्मूढगुणान्सदानष्टाविश्वविसंमिगान् ॥ ५४ ॥  
 महाव्रतानि पंचैव स्मृता समितयस्त्वया ।  
 इंद्रियाणां निरोधश्च पंचधति महीधितः ॥ ५५ ॥  
 मंत्राद्यको गुणा मुम्यः पादावभ्यक्तसत्क्रिया ।  
 अर्धसम्भं ततः प्राक्तं शुद्धपारिष्वपारिभिः ॥ ५६ ॥  
 अहिंसाव्रतसिद्धयर्थे यतीनां ज्ञानवर्जनम् ।  
 प्राभुक्तापना क्षयं वैराग्यादिबिचूदये ॥ ५७ ॥  
 दत्तकाष्ठादिभागश्च विरागीप्सामनुत्तमः ।  
 गन्तुपाद्रिफ्रिया चापि कृत्तव्या न यतीश्वरैः ॥ ५८ ॥  
 क्वापात्सर्गेण भोक्तव्य स्थितियोगनयेकञ्च ।  
 कर्तव्यं दृढसिद्धयर्थे न भोगार्थे कदाचन ॥ ५९ ॥  
 एते मूढगुणाः मौक्ताः भ्रमणानां जिनेश्वरैः ।  
 संत्युत्तरगुणामावि सप्ताश्वतुरशौचिक्याः ॥ ६ ॥

सर्वेऽप्यामरण नीत्वा पालनीया मृगमृगिभिः ।  
 एतत्समुदितं सर्वं निश्चितं स्यान्मुनिव्रतम् ॥ ६१ ॥  
 इत्युक्तं गुरुणा स्वन गुरुणा सहृणैरपि ।  
 भुत्वा जम्बुकुमारोऽसौ सर्वं जग्राह शुद्धधीः ॥ ६२ ॥  
 ततो जयजयारावं शक्रुः सर्वेऽपि संमुदा ।  
 श्रेणिकप्रमुत्वा भूषा सर्वे पौरजनास्तथा ॥ ६३ ॥  
 ततः केचिन्नु मृपालाः शुद्धसम्पन्नत्वमृपिताः ।  
 बभूवुर्मुनयो मूनं यथाभातस्वस्वकाः ॥ ६४ ॥  
 केचिन्मोहावृतेस्तत्र ह्रीयस्वेन कद्रथिता ।  
 भावकस्य व्रतान्युच्चैस्तेऽपि जगृहः सादरात् ॥ ६५ ॥  
 अथ विद्युच्चरो दस्युर्विरक्ता यवमोगतः ।  
 सर्वसंगपरिस्थागलक्षण व्रतमग्रहीत् ॥ ६६ ॥ ८  
सार्धं पंचशतैर्भूपुत्रैरासीत्स सपत्नी ।  
दस्युकर्मरतैः सर्वैः प्रमदादिसुसंश्लिष्टैः ॥ ६७ ॥  
 अतः परं मुनिर्बिष्णुः सोऽर्षबासो षण्णिवरः ।  
 सकलभ्रं गृहं त्यक्त्वा दृढाऽभून्मुनिर्कुन्तरः ॥ ६८ ॥ ९  
 सुमभासातिष्ठा पार्श्वे माता भिनमती तत ।  
 संसारासारतां मत्वा स्यादायिका (याः) व्रतान्विता ॥ ६९ ॥  
 पद्मभ्रीप्रमुत्वा शब्दो बीह्व संसृतिसस्यतिम् ।  
 सुमभां गणिनी नत्वा वृद्धं वि स्र तपा महत् ॥ ७० ॥  
 प्रणम्यागु तत सर्वान् सौपर्पादिमुनीन्परान् ।  
 अगु भणिकमृपायाः प्रतिसप्तसमुत्सुका ॥ ७१ ॥



कृतार्थं मन्यमानः स स्वात्मानं सद्व्रतान्वित ।  
 कृतापासाविधिस्तत्र स्थितो वाचयमी वने ॥ ७० ॥  
 यथात्रक्ति समाधाय तंऽपि विशुद्धराज्य ।  
 नीत्वापवासरसंभ्याम् तस्युर्ध्वानावसविनः ॥ ७१ ॥  
 सिद्धमार्क्तं समाध्वयं पठिस्वाय महामुनिः ।  
 प्रतस्यश्रौञ्चय मार्गं पारणार्यं कृतायमः ॥ ७४ ॥  
 विप्रन्तामपृष्ट रम्य पुरे क्षामात् सुसपत ।  
 अहो पुण्यपत्रार्थोऽयमायाता मूर्तिमानिव ॥ ७५ ॥  
 आगच्छंतं तमात्मावय दूरादानन्नमस्तदाः ।  
 मण्डुः श्वरकाः सर्वे श्रेयाऽर्थे शीतमस्तराः ॥ ७६ ॥  
 केषिचिन्नमिवासांभय सन्नप्रत्युः सत्रिसायम् ।  
 याऽयू (३) प्राग्रर्षाः पूर्वे सोऽयं जाता मुनीश्वरः ॥ ७७ ॥  
 अहा देवस्य वैचित्र्य कर्मणां रसपाकृतः ।  
 का वेचि किं कथं भावि ज्ञानादन्यत्र माहृष्टः ॥ ७८ ॥  
 कश्चिद्धानरसाः घृक्ताः प्रतिप्राहितुमुत्सृक्ता ।  
 तस्युर्ध्वस्ताः स्वबीर्ध्यतमार्गासाकनवत्पराः ॥ ७९ ॥  
 वदंति स्म जनाः केषित् स्थायिभ्यश्च कृपां कुरु ।  
 पविश्रीकुरु ना वैष्णव चरणाम्पुनरशुभिः ॥ ८० ॥  
 तिष्ठ तिष्ठात्र मन्त्रेहे जम्बूस्वामिन्महामुने ।  
 प्राशुक्कामं गृहाणाथ निरवर्ध मरुत्या (अया) पितम् ॥ ८१ ॥  
 इहैवागच्छ मद्रहमिहैवागच्छ मद्रहम् ।  
 कशुराग्नेहितं मय्या मियः केषिदितोऽसुतः ॥ ८२ ॥

काचिदूचे वयस्योऽय मन्मथाकारमिग्रह ।  
 संकरांगः कथं कुर्यात्तथा हुष्करममसा ॥ ८३ ॥  
 भगमद्वंद्वनाभ्याजात्काचिदाक्षी(रा?)भिरिसतुम् ।  
 कामदेवनिभ देवमकाममपि स्यामिनम् ॥ ८४ ॥  
 इत्यादिभिषिधाष्ठापैः समदस्सुमनेष्वपि ।  
 अगादधिस्यहृत्स्यासौ जिनदासस्य सद्यनि ॥ ८५ ॥  
 नवफोटिविशुद्धं स भग्राहाहारमन्वशः ।  
 अशूदानातिशायित्वात्पचाभर्ये तदगणे ॥ ८६ ॥  
 नीत्वाहारं स शुद्धात्मा निरीहाऽपि समीहया ।  
 कृतेर्यापयसंशुद्धिश्चालानुवनं मुनि ॥ ८७ ॥  
 क्रमादाप वनस्यांत पार्श्वे सौधर्मसन्मुनेः ।  
 समतः सुतपःसिद्धये निर्वाणस्य महौजसः ॥ ८८ ॥  
 अथ सौधर्मसङ्घस्य मुनः कतिपयैर्दिने ।  
 मादुरासीत्स्वभावात्थ कबलज्ञानममसा ॥ ८९ ॥  
 पादमूलेऽस्य सर्वार्थबदिनाऽन्तर्षर्मणः ।  
 धरति स्म तपभोग्रं मम्पूस्वामी महामुनि ॥ ९० ॥  
 तपोऽनश्ननन(?)मार्थं करति स्म स सादरात् ।  
 वेगाश्रमविशुद्धपर्यमद्धिसंख्या पुरःपरम् ॥ ९१ ॥  
 द्वितीयमथमौदर्ये धरति स्म तपो महत् ।  
 एकआसादिकं भुंजभोदनं सजल श्रमी ॥ ९२ ॥  
 विषाय सद्यसंख्यादि यथास्तुरूपमस्तुरूपक\* ।  
 वृत्तिसंख्यानमेवैतत्तृतीय तप आसन्त् ॥ ९३ ॥

समाधरस्तपस्तुर्षे रसानां परिहापनम् ।  
 हृषीकाणां निषघाय अरोद्रेकस्य घातये ॥ ९४ ॥  
 शून्यागारपनाद्यद्रौ चकार वसतिं यञ्ची ।  
 तपोऽद्ः पंचम नात्ना विविक्तशयनासनम् ॥ ९५ ॥  
 पष्ठसंज्ञं समाख्यातं कायकैश्चामिर्षं तपः ।  
 महापसर्गमैत्राक्षं कर्त्तव्यं मुमनीपिभिः ॥ ९६ ॥  
 इदं शास्त्रं तपः पोढा चर्करीतिं स्य हेसया ।  
 जम्बूस्वामी महावीर्यो धैर्यस्यैकपद महत् ॥ ९७ ॥  
 यश्च्यवतं तप मीकं प्रायश्चित्तं यदादिमम् ।  
 कुमार स्वीकरोति स सम्मान्वर्यामिषानकम् ॥ ९८ ॥  
 निश्चयादात्ममयेषु मोक्षमार्गेष्वनुद्धत ।  
 विनयं तमकपीत् स यथास्त्रं परमेष्ठिषु ॥ ९९ ॥  
 नातिश्रमा मुनीशानां नमस्कारक्रियादिषु ।  
 बैयाहृत्य तपं प्राक्तं तृतीयं मुस्त्रपदम् ॥ १०० ॥  
 शुद्धस्वात्मानुभूतः स्वाहृष्यासात् परमं तपः ।  
 स्वाध्याय निश्चयाच्छुद्धं चतुर्थमकरोन्मुनिः ॥ १०१ ॥  
 क्षीरापाधिभद्रेषु मयस्वपरिबर्जनं ।  
 ध्युत्सगोम्य तपस्तप्य पञ्चमं मुनिना कृतम् ॥ १०२ ॥  
 ततोऽप्यनुत्तरध्यानं तपः पष्ठमनुत्तरम् ।  
 कृष्णचित्तानिगधेन यश्चित्तन्यासखंडनम् ॥ १०३ ॥  
 चांदेत्याभ्यंतरं शुद्धं तत्तपा मुक्तिकारणम् ।  
 स निर्विघ्नपनाः सर्वे निरतिशारमाद्द ॥ १०४ ॥

अप्यमिभ्यस्करूपश्च जातजातस्वरूपतः ।  
 यत्सो गृप्तिप्रयेणोच्चैर्षास्मनोयोगनिघ्नहात् ॥ १०५ ॥  
 कृपायारिचमूं जेतुं बद्धकस्त इषावभौ ।  
 भृत्वा प्रथमैः शकं सन्मुखं योद्धुमुद्धत ॥ १०६ ॥  
 मन्मयस्य प्रियामाराद्रतिं प्रागेव निघ्नता ।  
 प्रभारितो भये मारो हेस्रया येन निर्जितः ॥ १०७ ॥  
 द्वादशांगमहाविद्यावारिषेः पारगः सुधी ।  
 द्रुष्यभाषाद्विद्येद्रेन नैकपार्यप्रपञ्चकः ॥ १०८ ॥  
 एषमष्टादशाब्दानां व्यतिक्रान्ता इष क्षणं ।  
 जम्बूस्वामिनि घोरोय तप हर्षति नैकधा ॥ १०९ ॥  
 तपोमासे सिते पक्षे सप्तम्यां च शुभे दिने ।  
 निर्वाणं प्राप सौधर्मो विपुलाचलमस्तकात् ॥ ११० ॥  
 अनंतमुखपायोषौ निमग्नं बलसूपितम् ।  
 अनंतदर्शनज्ञानं तमहं नीमि भेषसे ॥ १११ ॥  
 तत्रैवाहनि यामार्धभ्यवधानवति प्रभोः ।  
 बत्पन्न केवलज्ञान जम्बूस्वामिमुनस्तदा ॥ ११२ ॥  
 नष्ट मोहरिपौ ज्ञानदञ्चनावरणक्षये ।  
 आसीत्यघासनस्वस्य ज्ञान धीर्पाद्वृतेः क्षयम् ॥ ११३ ॥  
 ततः केषसपूजार्थमाजगुस्त्रिदशाम्बयाः ।  
 सास्ताहा सपरीवारा निजद्वेषाद्विसमन्विताः ॥ ११४ ॥  
 प्रणमुस्त्रिपरीत्याय स्वामिनं त्रिजगद्गुरुम् ।  
 उर्ध्वर्जयजयारावमुत्परंवाऽमराधिपा ॥ ११५ ॥

पूजयित्वाय सामग्या तुष्टुमुः प्रभुमादरात् ।  
 गद्यपद्यादिसद्दृष्टैरनौपम्यै सुरभरा ॥ ११६ ॥  
 जय प्रसङ्गकंदर्पदर्पसर्पापह प्रभा ।  
 जय कवसमार्षेढ मन्त्राश्रितमगत्रय ॥ ११७ ॥  
 स्तुत्वति बहुधा स्तापैः प्रांस्यकवसिन्निं मिनम् ।  
 ययुर्देवा निज घाम मन्पमानाः कृतार्थताम् ॥ ११८ ॥  
 विमहय ततो भूमौ भितो गंपह्वरीं मिनः ।  
 मगपादिमहादिशमपुरादिपुरीस्तथा ॥ ११९ ॥  
 कुर्वन् धर्मोपदृष्टं स कवसज्ञानलोचनः ।  
 वर्षाष्टावक्ष्यपर्यंतं स्थितस्तत्र निनापिप ॥ १२० ॥  
 ततो जगाम निर्वाणं केवलीं विपुसाश्रमात् ।  
 कर्माष्टकविनिर्मुक्तः क्षान्तानतसौख्यमाह् ॥ १२१ ॥  
 ततोऽन्तरमेवासाभार्हासा मुनीश्वरः ।  
 अंतं सल्लेखनां कृत्वा पष्टेऽभूद्विपि दवराद् ॥ १२२ ॥  
 नाज्जा मिनमती सापि कृत्वा सल्लेखनां शुमाम् ।  
 ब्रह्माक्षरे सुरेन्द्राऽभूच्छिख्त्वा योपित्कृच्छिगर्हं ॥ १२३ ॥  
 ततो पञ्चमवस्तुता घासुपूजयमिनासये ।  
 सुत्वा खंपापुणे तत्र देवीजाता महर्द्धिकाः ॥ १२४ ॥  
 अथ त्रिष्टुप्चरो नाज्जा पर्यट्यन्निह सन्मुनिः ।  
 एकादशांगविद्यावामपीती विदमक्षयः ॥ १२५ ॥  
 अथान्येषुः स निःसगो मुनिर्पंचस्रतैर्हृतः ।  
 मधुरापी महाघानभ्रेऽश्वममन्मुदा ॥ १२६ ॥

तदागच्छत्स वैश्व(र)क्त्य भानुरस्ताचञ्चं भित ।  
 धारोपसर्गमेतेषां स्वयं द्रष्टुमिवाप्तमः ॥ १२७ ॥  
 अत्रषीष्घटमारीति काचिचद्वनदेवता ।  
 मुने पंचदिनान्यत्र स्यात्तथ्य न स्वयाधुना ॥ १२८ ॥  
 आगत्य सप्त (?) यात्रायै भूतप्रेतादयस्त्विह ।  
 श्चुप्र शार्धां करिष्यति युष्माकं साहुमसमां ॥ १२९ ॥  
 अतस्त्रैवत्परित्यज्य स्नानमन्यत्र गम्यताम् ।  
 दुर्निमित्तं त्यजेति ज्ञाः सयमध्यानसिद्धये ॥ १३० ॥  
 इत्युक्त्वा सा गता तूर्णं घटमारी निजालयम् ।  
 ऊषे विष्टुश्चर माहो मुनिमुशिश्य साम्यत ॥ १३१ ॥  
 अहो वृद्धगणा यूयं मा कुर्वतु इठक्रियाम् ।  
 निष्पमादतया चात स्यानादन्यत्र गम्यताम् ॥ १३२ ॥  
 भुत्पैतन्युनयः केचिद्दुर्निश्चंक्रिताश्रया ।  
 अस्तं गते दिवानाये नेयं क्वलोचितक्रिया ॥ १३३ ॥  
 बिम्पतां कीदृशो धर्मः स्वामिभिर्भंक्रितामिभः ।  
 उपसर्गसहो यागी प्रसिद्ध परमागमे ॥ १३४ ॥  
 ममस्वप्न ययामाम्य भाविकर्मशुभाशुभम् ।  
 तिष्ठामो वयमथैव रजन्यां मौनवृत्तयः ॥ १३५ ॥  
 निश्चम्यैतद्दृष्टेतेषां तस्यौ भिष्टुश्चरो मुनि ।  
 नेष्टं याग प्रतिष्ठाप्य मौनमात्मन्य धीरधीः ॥ १३६ ॥  
 ततोऽप्यवमसा व्याप्तमाश्रामास्य दुरीक्षणात् ।  
 दिशं मिपत्सुमायातां सयं काल इव सप्तात् ॥ १३७ ॥

अघ्रातरे समायाता भूतमेताश्च राससा ।  
 इताऽभुतश्च पापता भीषणाकृतिधारकाः ॥ १३८ ॥  
 केषिन्मद्यकदशा दंष्ट्रकृनिपाः परे ।  
 केषिषु कुन्कुटाकाराः सतीक्ष्णा नक्षत्रचक्रः ॥ १३९ ॥  
 फल्कारादिरथ केषिस्तुर्बेतोऽतिभयानकाः ।  
 नमस्पृष्टाभयस्युष्मैर्मोसखंडानितस्ततः ॥ १४० ॥  
 सद्य भ्रांषितसंस्मिरुपासांकितपाणयः ।  
 निर्यद्दमाषिभीमास्याः कंठबद्धास्मिसंघयाः ॥ १४१ ॥  
 रक्तासा भ्याददानास्या केषिदस्तादृर्नमूढगाः ।  
 ठरुस्यरुद्धमाम्नास्त इसंत इव स्मिया ॥ १४२ ॥  
 गृहार्पणं गृहार्पणं मारयेति षष्ठांश्विताः ।  
 सङ्काररथं रौद्रा रापाब्रह्मापराः परे ॥ १४३ ॥  
 मयोमाम्फाल्य मक्ष्मैर्न तादयेत् फुक्तिभीषणाः ।  
 प्रयत्नं मरुमार्गं केषिस्सप्रासनिर्दयाः ॥ १४४ ॥  
 इत्यादिषिषिषापायैः पापाः पापक्रियारताः ।  
 षड्गुणहापसर्गे त मुनीनां षक्तुमक्षमं ॥ १४५ ॥  
 तथा विपुष्परा पीरा महाधैर्यपरायणः ।  
 धितपद्मिनि धिते स्त्रे शुद्धा द्वादशमावनाः ॥ १४६ ॥  
 जीवनाशां परिन्यश्य कृत्वा सन्यासमादरात् ।  
 इवाकिंविस्करस्व त मन्यमानः स्थिरोऽभवत् ॥ १४७ ॥  
 तथा यथा स्वयन्पेपि मुनयः स्वस्वधतस ।  
 उपमगमहा जाता व्रातसंमतिभ्रमणाः ॥ १४८ ॥

स्वाध्यायनिरताः केचित्केचिद्दधानापलभिनः ।

केचित्कर्मविपाकज्ञा तस्युर्मैरुरिवाचला ॥ १४९ ॥

धर्मः सर्वसुखाकरो हितकरो धर्मं युपाधिन्वते

धर्मैव समाप्यते शिवसुख धमाय तस्मै नमः ।

धर्माभास्ति परः सुहृद्भवभृता धर्मस्य मूल दया

तस्मिन् श्रीविनधर्मधर्मनिरतैर्धर्मं मतिर्धार्यताम् ॥ १५० ॥

इति श्रीजम्बूस्वामिश्चरित्रे मगवच्छ्रीपरिचमतीर्थकरोपदेशानुसरित-

स्याद्वादानवधगधपधमिशाशारदपण्डितजनमल्लिरचितं साधु

पासासुतसाबुटोडरसमम्यधिति जम्बूस्वामि

निर्वाणगमनवर्णनो नाम द्वादशः पर्वः ।



## अथ त्रयोदश पर्वः ।

सूयास्त धर्मेषु ब्रह्मसूयामी निष्कर्मता भितः ।  
 साधुपासांगमस्यास्य तत्र भीसाधुटाडर ॥ १ ॥ इत्याधीर्वादः ।  
 पार्श्वनायमई नौमि इतारं निघ्नकर्मणाम् ।  
 बर्द्धमानं धुनाभ्रापि प्रमाणाश्च निमाभतम् ॥ १ ॥  
 अथोपसर्गसंभूतां त च विद्युश्चरादयः ।  
 मुनयो मानयामासुरिमाः पादध्रमावनाः ॥ २ ॥  
 अनित्या धरणा चैव संसृतेभानुषितनम् ।  
 एकत्वचितनं चैवमन्यत्सं च ततः परम् ॥ ३ ॥  
 अशुण्यास्रवमंडे द्वे संवरो निर्मरा ततः ।  
 श्लोकसंस्था तथा भीषिदुर्मयी धर्म एव च ॥ ४ ॥  
 संवेगपर्येनापर्येयां तत्त्वानुषितनम् ।  
 अनुमेताः स्मृतास्वाभ द्वादशैषानुपूर्वतः ॥ ५ ॥  
 ये याता याति पास्यति यमिनः पदमभ्ययम् ।  
 द्वादशैवाभ ताः सर्वा मानयित्वा धुमावनाः ॥ ६ ॥  
 अन्यत्सं सर्वमेवैतदस्तुजातं चराचरं ।  
 वैमाधिकस्वभावत्वात्कर्मणां रसपाकसात् ॥ ७ ॥  
 भाकसौद्रयमेवैतत्कर्मप्रीक्षादिपरस्वतः ।  
 तन्निर्माणं कथं श्लोके नित्यं भवितुमर्हति ॥ ८ ॥  
 अतः कर्मोदयाज्जाताः पर्याया बपुरादयः ।  
 स्वानुमृत्यैकमात्रस्याग्निभास्व सप्तमधुराः ॥ ९ ॥

- प्रमाणादागमान्वापि स्वानुभूते समस्ततः ।  
 वेपामनित्यसंसिद्धौ को विष्णुमेत् प्रगल्भधीः ॥ १० ॥
- कृत्वावधिं सहस्रांशुरुदस्यप्र महीतले ।  
 कृत्वावधिं तथा जीवा उत्पद्यत चतुर्गती ॥ ११ ॥
- यथा वृक्षात्फलं पक्वं विशिष्टमनुभूतले ।  
 मानस्यकं पतत्येतद्यथा तनुमृतोऽप्यमी ॥ १२ ॥
- धीवितं धपसं शोके जलबुद्बुदसन्निभम् ।  
 रोगै समाभिता भोगा जराक्रांत हि यौवनम् ॥ १३ ॥
- सौन्दर्यं च क्षणध्वंसि संपदो विपद्रंतकाः ।  
 मधुबिंदूपमं पुसां सौख्यं दुःखपरंपरा ॥ १४ ॥
- इंद्रियारोग्यसामर्थ्यचसान्यश्चोपमानि च ।  
 इन्द्रनालसमानानि रामसौषधनानि च ॥ १५ ॥
- पुत्रपौत्रकलप्रादि मिश्रवापयसङ्गताः ।  
 संपोषणरूपलक्षणाश्च हृष्टनष्टा इव क्षणम् ॥ १६ ॥
- इत्यधुवं जगत्सर्वं नित्यधात्मा सनातनः ।  
 भव सद्भिर्न कर्त्तव्यं ममत्वं चपुरादिषु ॥ १७ ॥
- ॥ अनित्यानुप्रेक्षा ॥
- ध्रमताऽस्य भवावर्त्ते भेतार्गतिषतुष्टये ।  
 यमारतिशुद्धीतस्य न कोऽपि क्षरणं भवेत् ॥ १८ ॥
- यथा व्याघ्रशुद्धीतस्य भृगुश्चावस्य कानने ।  
 पुण्योदयादत कश्चिद्रसितं न क्षयोऽस्तिनः ॥ १९ ॥

अणिमादिगुणघनां तपामपि दिवोकृत्याम् ।  
 दिवः प्रच्युतिरेवासीत्का कयान्यधरीरिणाम् ॥ २० ॥  
 मणिर्यत्रौपधादीनि तावत्सर्वाणि संस्पृही ।  
 यानद्वक्त्रकरास्ताऽसौ यमो नायाति सन्मुखम् ॥ २१ ॥  
 कृषान्तेन गृहीतोऽसौ कुपितेन यदा तदा ।  
 इद्रक्कस्रगेद्यापैः क्षर्णं प्राप्तुं न शक्यते ॥ २२ ॥  
 मत्सेस्पशरणं विन्धं श्वरभ्यं जैनघासनम् ।  
 उपादेयतया सन्निर्युहीतभ्यं प्रयत्नत ॥ २३ ॥  
 अर्हेत श्वरणं सिद्धाः साधवः श्वरणं विधा ।  
 श्वरणं तस्मिन्पीतम्य धर्मः सर्वत्र धीयताम् ॥ २४ ॥  
 मत्सेति धीयनैरेक्य धर्मः कार्यः स च द्विधा ।  
 म्यबहारात् क्रियारूपा निधयादात्मदर्शनम् ॥ २५ ॥  
 ॥ अशरणानुप्रेक्षा ॥  
 द्रव्यं क्षेपं तथा कालो भवा मापस्तयैव च ।  
 एतत्सौपपदाभ्यायात् संसारः पंचधा स्मृतः ॥ २६ ॥  
 तावत्स द्रव्यसंसारो सक्ष्यो सूक्ष्मार्थदर्शिभिः ।  
 कर्मनाकर्मरूपेण पुत्रसादानसप्तज ॥ २७ ॥  
 गृहीताभ्यागृहीताभ्य मिधाश्चापि निसर्गतः ।  
 विधत्ते पुत्रसाक्षात् सोकैऽस्मिन्निधिताः स्फुटम् ॥ २८ ॥  
 तद्विदिततन्निधेन तै भेषापीह पुत्रसा ।  
 कर्मनोऽकर्मभावेन नीत्या धारामनेतन्तः ॥ २९ ॥  
 मुक्तोऽग्निताः पुनश्चापि पुनर्नीत्या पुनस्तथा ।  
 एव समुदितः सर्वो द्रव्यसंसार उच्यते ॥ ३० ॥

सोऽप्यनेनैव जीवेन कृतपूर्वो जनतश्च ।  
 क्षेममाकाशदेशः स्यात्तच्छात्रुप्रमिषितोऽङ्गिनः ॥ ३१ ॥  
 हानिद्विक्रमाद्ब्याप्तो जन्मना मृत्युनायथा ।  
 क्लृप्ताद्रिमहास्त्रुषाः सत्यष्टौ मर्ष्यदेशकाः ॥ ३२ ॥  
 विख्याता गास्तनाकारैर्मूनं लोकस्य मर्ष्यगाः ।  
 अयं कूर्वस्तदारभ कश्चिज्जीवी विपक्षित ॥ ३३ ॥  
 तावदानष्टदेशाश्च नीत्वोत्पन्नो निजोदरे ।  
 ब्रुक्तायुः सोचिते काले मृत्योत्पन्नो स कुप्रक्षित ॥ ३४ ॥  
 एकलेश्वरतिष्ण्य तत्रैवोत्पद्यते पुनः ।  
 एवं क्रमात्परित्यज्य तमेकैकं प्रदेशकम् ॥ ३५ ॥  
 कश्चित्समूर्च्छते जीवे मृत्वा मृत्वा पुन पुनः ।  
 यावतः सर्वलोकस्य सर्वदेशाः प्रपूरिताः ॥ ३६ ॥  
 मर्षत्येकेन जीवेन जन्मना मृत्युना तथा ।  
 कदा समुदितः सोऽयं क्षेमससारलक्षण ॥ ३७ ॥  
 सोऽप्यवश्यं कृतोऽनेन पूर्णो वाराननंतश्च ।  
 निरंशः समयः काल साऽपि संलक्ष्यते मिनैः ॥ ३८ ॥  
 अणोः पर्यटतो मदगत्या ह्युद्भस्य मानतः ।  
 अयोत्सर्पाषसर्पाभ्यां देहादीनां स्वभावतः ॥ ३९ ॥  
 लब्धान्वर्याभिधानौ द्वौ काळमदौ यथाक्रमम् ॥ ४० ॥

१ तत्र सर्वकालं जीवात्प्रमत्तप्रवेष्टा निरपनाशः सर्वजीवान्दं स्थिता एव ।  
 केवलानामपि अयोगित्यं सिद्धान्दं च सर्वे प्रवेष्टा स्थिता एव । अस्यामनु-  
 योरेकपरिपत्तना जीवान्दं अयोत्सर्पाषसर्पाभ्यां देहादीनां इतरे प्रवेष्टा  
 अवस्थिता एव । देवानां प्रथिनां स्थितारथास्थितारथेति । तत्त्वाप्यवकाशसिद्धिं ३. १. ३ ।

तद्यवोत्सर्पिणीकालौ यावदष्टप्रमाणकः ।  
 सोऽप्यवसर्पिणीकालस्वावानेव मिनागमै ॥ ४१ ॥  
 कोटीक्षेत्र्यो दक्षाब्दानां वार्दीणां स्वस्य संस्यया ।  
 ममार्षं तत्र प्रत्यकं दर्शितं विश्वदर्शिना ॥ ४२ ॥  
 तस्यामारभ्य मानायामाद्यैकस्मिभिरंशके ।  
 सञ्चमन्वा यदा कश्चित् भवेत्सारभकस्तदा ॥ ४३ ॥  
 मृगस्था स्वायुषयाकालं मृतोत्पन्नश्च कुत्रचित् ।  
 तस्यां द्वितीयेऽस्मिंश्चिदुत्पन्नो भवेत्तदा ॥ ४४ ॥  
 अतिक्रान्ता निरंशः स समयश्चैकमात्रकः ।  
 विज्ञेयाऽयं क्रमः सन्निरान्याहृष्टः क्रमः कश्चित् ४५ ॥  
 यावन्तं समयास्तस्या भक्ष्यमाना निरंशकाः ।  
 नीताः सर्वेऽपि जीवेन जन्मना मृत्युना च ते ॥ ४६ ॥  
 तदार्यं मस्तिः सर्वैः कालसंमृतिरिष्यते ।  
 साप्यनुमृतपूर्वस्य जीवस्थानंतश्चः स्फुटं ॥ ४७ ॥  
 भवौ जीवस्य पर्याय साऽप्यशुद्धश्च कर्मसात् ।  
 नारकइषापि तिर्यग्वा देवश्चेति चतुर्विधः ॥ ४८ ॥  
 वत्सराणां जयस्त्रिंशदब्द्या दिशि नारकः ।  
 उत्कर्षेणापकर्षेण सहस्राणि दश स्थितिः ॥ ४९ ॥  
 तत्र वदां नरः कश्चिच्छ्रवामी स्थितिमनुचमां ।  
 मुक्ताग्निता मृतश्चाथ बभ्रम्येत यतस्वतः ॥ ५० ॥  
 यदा तु देवयोगात्स स्थितिं व्रजति तादृशी ।  
 प्रारंभकस्तदा ज्ञेयो नान्यथा भवसंज्ञितः ॥ ५१ ॥

जघन्यास्पतिर्षाणां यावन्त समया स्मृता ।  
 तावन्ता शारानसर्वा ( कृत् ) मृता जातः पुन पुन ॥ ५२ ॥  
 तत साधिकमकन ततोऽप्यपेन साधिकम् ।  
 समयन यदापु स्याद्दर्दमानं धरीरिणाम् ॥ ५३ ॥  
 तदाप्यप क्रमो ज्ञेया नान्यया तदतिश्रमात् ।  
 क्रमादीनाऽधिकं चापि नोद्धेग्य वदावन ॥ ५४ ॥  
 षट्दमानं क्रमादापु सर्वोत्कर्षे यदा भवेन् ।  
 पग्याता भवससारो दबनारकपास्तदा ॥ ५५ ॥  
 एष त्रियग्मनुष्याणां स्थितिरात्ममुहूर्तिरी ।  
 भवस्यानुपकर्षेण प्रियत्यापमसंमिता ॥ ५६ ॥  
 अथारभ्य जघन्याद्वा पूर्ववत्समपाधिकम् ।  
 पुनर्षध्वा क्रमादापुर्षावतात्कर्षतां प्रजेन् ॥ ५७ ॥  
 तावानर्षीकृत सर्वे स युक्तः समरापवान् ।  
 उच्यते भवसंगारस्तद्गतनिर्दीर्घ ॥ ५८ ॥  
 साऽप्यनर्षे जीवन मपूरीता घनतश्च ।  
 कृत् त्रिन्यनिगादाद्वा सर्वेणाप्यटता भवम् ॥ ५९ ॥  
 धारा जीवस्य पर्याप परिणामगुणान्वयः ।  
 म शाशुद्धप शुद्धप द्विषा स्याद्व्यपभागत ॥ ६० ॥  
 परद्रव्यान्वयः कर्म ज्ञानापावरण इव ।  
 तद्विषाकनिमित्तान्ने जाता शुद्ध म तन्मिन ॥ ६१ ॥  
 कृत्प्रवयसप पन्तु भावो जीवस्य निष्पिप ।  
 म शुद्ध इति रिद्धया यथा मांम्यवतीन्द्रियम् ॥ ६२ ॥

तत्रोपाभययुक्तिरवादशुद्धे परिषर्षनम् ।

शुद्धे भवि स्वरूपत्वाच्चभास्ति स्वरमृंगषत् ॥ ६३ ॥

स्थितेरभ्यवसायानां स्थानानीह मुसस्मया ।

पतितानि चतुःस्थानैर्लोकसंख्यातमाश्रयः ॥ ६४ ॥

एवमभ्यवसायानायनुमागोचितसंज्ञाम् ।

पतितानि च पदस्थानैर्लोकसंख्यातमाश्रयः ॥ ६५ ॥

लोकसंख्यातमाश्रयि योगस्थानानि संस्पृश्या ।

पतितानि चतुःस्थानैर्द्विद्विहानिक्रमादिति ॥ ६६ ॥

अतश्चैषामनन्ताः स्युर्भेदास्ते च निरंशकाः ।

चत्कृष्टीऽनुत्कृष्टश्च अघन्योऽप्यप्रघन्यकः ॥ ६७ ॥

सर्वा अघन्यादारम्य यावदुत्कृष्टतां नपत् ।

जीवः सर्वानिमा-माना-मावसंसार इत्ययं ॥ ६८ ॥

उक्तं च—

“पेहमवस्त्रो भवतगदा आदिगदे संकर्मदि विदियवस्त्रो ।

दोष्ण वि गंतूर्णतं आदिगद सकर्मदि तदियवस्त्रो ॥ १ ॥ ”

कृते नित्यनिर्गोत्राद्वा भवसंसारमप्यतः ।

एषोऽपि भावसंसारः भासा मदैरनंततः ॥ ६९ ॥

पंचप्रकारसंसारं मत्वा मौसमुत्सार्थिनः ।

नि-संसारं निजात्मानं शिष्याप्याराधयंतु भाः ॥ ७० ॥

॥ इति संसारमुपेक्षा ॥

१ प्रथमाद्य अष्टमत् आदिगदे संकर्मदि द्वितीयाद्य ।

दोष्ण वि गंतूर्णतं आदिगद सकर्मदि तृतीयाद्य ।

एको द्रव्यस्वभावात्त्वादिनिषनः स्वतः ।  
 पर्यापार्यादनेकत्वेऽप्यस्य विद्वेषमाप्रतः ॥ ७१ ॥  
 एकाकी भ्रमते दीनो मोहकर्मावृतः क्षतः ।  
 ऊर्ध्वार्थस्तिर्यगास्त्रीकादशेषैरितोऽमृतः ॥ ७२ ॥  
 कदाचिन्नारकं दुःस्वमेकाकी सहते नरः ।  
 न कोऽपि तत्र साहाय्यं कुर्याद्यत्रदिति क्षणम् ॥ ७३ ॥  
 एकाऽथ स्वर्गसौख्यानि मुंक्ते पुण्योदयादिह ।  
 तिर्यक्त्वेऽपि नरत्वेऽपि सहायपरिबर्जितः ॥ ७४ ॥  
 सत्यघतेऽथ पचस्वं याति नीवो रुदन्निभ ।  
 तदापि पुत्रपौत्रादि विप्रबांभवसज्जनाः ॥ ७५ ॥  
 ये क्लृप्तप्रादयस्तेन नापि सार्द्धं पर्यं दधुः ।  
 भसस्यावरकायेषु दुःस्वयोनिसतात्मसु ॥ ७६ ॥  
 एकाकी भ्रमते प्राणी नानाङ्गिभ्रौघपीडितः ।  
 न सार्ध्यङ्गीऽपि तत्राहो क्षणं यावदिति स्फुटम् ॥ ७७ ॥  
 एकस्तपोऽसिना इत्वा कर्मारातीः स्वपौरुषात् ।  
 केमस्रज्ञानसाम्नाग्न्यं निर्मयं पद्मश्नुते ॥ ७८ ॥  
 इत्येकत्वं परिज्ञाय भंतोः संसारमोक्षयोः ।  
 सावधानतयादेयो मोक्षोऽर्जतमुत्वात्मकः ॥ ७९ ॥  
 ॥ इति एकत्रालुप्रेक्षा ॥

वपुषोऽपि विभिन्नरूपेऽजीवः ससस्यते क्षये ।

सप्तजादप्यतः स्युस्तं कथं स्वीयाः सुतादयः ॥ ८० ॥



मिध्यास्य च कृपायाश्च योगा विरतयस्त्वया ।  
 संति मानाभवस्थेह भेदाः श्रीमिनदेशिताः ॥ १०२ ॥  
 एभिर्द्वारैस्तु जीवानामाभवन्तीह पुत्रसाः ।  
 यथा सच्छिन्नपोतस्य वारिमध्ये स्मितस्य च ॥ १०३ ॥  
 तत्कार्याणामभद्धानं भद्धानं वा तदन्वया ।  
 मिध्यास्यं प्रोच्यते प्राज्ञैस्त्वच्च भेदादनेकभा ॥ १०४ ॥  
 सामान्यादेकमेवैतन्मिध्यास्य जातिरूपतः ।  
 विधेयात्पंचषा यद्वा स्रोकसंख्यावमाश्रतः ॥ १०५ ॥  
 एकमकावमिध्यास्यं द्वितीयं विपरीतकं ।  
 तृतीयं विनयस्तुर्यं संस्रयोऽस्तु पंचमम् ॥ १०६ ॥  
 उक्त च—

“ एर्यतबुद्धदरसी विवरीभो बंम तापसो विचर्या ।  
 ईदी वि य संसयिदो मच्छडिभो शेष अण्णाणी ॥ १ ॥ ”  
 एतेषां सप्तजं प्राज्ञैर्विद्वेयं परमागमात् ।  
 यद्वासंख्यातस्रोकाः स्युः स्रुस्म्यास्ते बुद्धयगाधराः ॥ १०७ ॥  
 कर्पस्यात्मानमेवाथ कृपायादिति दर्शिताः ।  
 पंचविधविसंख्याका योहकर्मोदयोद्गवाः ॥ १०८ ॥  
 ऋषी मानश्च माया च सोमश्चैति चतुर्विधः ।  
 प्रत्येक ते ज्ञानता स्यु(म्बा)नुर्बधिन उदाहृता ॥ १ ९ ॥  
 द्वितीय तश्चतुर्कं स्यादप्रत्याख्यानसंज्ञकम् ।  
 प्रत्याख्यानं तृतीयं स्याचुर्यं संज्ञकनास्यया ॥ ११० ॥

१ एकमन्त्रो बुद्धदर्शी विपरीतो मम तापसो विन्द ।

स्रोत्रि च संज्ञितो मच्छ्री वैराणी ॥ पञ्चमस्तु जीवयति वा. १६ ।

एवं संमिश्रिता भंगैः कृपाया पौडस्य स्मृताः ।  
 नोकृपायास्तथा ज्ञेया सस्यया नव तथया ॥ १११ ॥  
 हास्यो रत्यरती चैव श्लोको मीतिस्तथैव च ।  
 शुद्धप्सास्त्रीनरलीबेदशब्देष्विज्ञिताः क्रमात् ॥ ११२ ॥  
 एवमेकीकृताः सर्वे पञ्चविंशतिसंख्यकाः ।  
 कर्माश्रयस्य कर्तृत्वान्महानर्षविभाषिनः ॥ ११३ ॥  
 भविरतिस्तु विख्याता सर्षतो द्वादशाख्यया ।  
 अंतर्भूता कृपायेषु पृथगप्युपदेशिता ॥ ११४ ॥  
 इंद्रियाणि च पंचैव मनः षष्ठमुदाहृतम् ।  
 तेषामनिग्रहात्मोक्ता षोडश विरतिरिष्यपि ॥ ११५ ॥  
 पंचस्याबरमीधानां षष्ठस्यापि प्रसस्य च ।  
 प्राणापरोपणं हिंसा षोडश सा चैति संमिता ॥ ११६ ॥  
 धर्मः स्वात्मानुभूत्याख्य प्रमादोनपधानता ।  
 हेतो कर्माश्रयस्यास्य भेदा पञ्चदश स्मृता ॥ ११७ ॥  
 उक्तं च—  
 “ विकंहा तथा कृसाया इंद्रियणिहा तद्देव पणगी च ।  
 बहु बहु पणमेगेम ह्येति पमादा इव पण्णरसा ॥ १ ॥ ”  
 योगश्चात्मप्रदेशानां परिस्पर्दस्त्रिषा मतः ।  
 मनोवाक्कायरूपाणां वर्गानां विपाकतः ॥ ११८ ॥  
 सोऽपि सत्यादिरूपेण मिथते नैकधा सुधैः ।  
 औदारिकादिभद्वैश्च काययोगोऽप्यनेकधा ॥ ११९ ॥

१ विकृताद्यथा कृपाया इन्द्रियनिहास्यैव प्रसस्यते ।

बहु-बहु-पणैरेकं भवन्ति प्रमादा इव बहु पञ्चदश ॥

श्रीरात्र्यंघ्रिपाणीह भिन्नरूप्याणि निष्पात् ।  
 मनःकायवर्षादीह कमत्रया (न्या) विश्वत ॥ ८१ ॥  
 ये च गगाद्या मारा भास्वर्माद्यात्मका ।  
 विष्णुभामाद्य हे सर्वे भिन्नाद्यतन्वरूपतः ॥ ८२ ॥  
 श्रीरम्यानगुणम्यानर्षपम्यानान्यपि प्रमात्र ।  
 पागम्यानानि भिन्नानि स्वात्मनः सर्वयाप्यत ॥ ८३ ॥  
 ब्रह्मयध्यवसायानां म्यानानीह बहुनि च ।  
 भिन्नसङ्गमस्यम्यादन्पानीह विदात्मन ॥ ८४ ॥  
 पमापमनसः कामद्वयस्याभ्यनेतव्य ।  
 विविक्तान्यादि नगच्छाप भिन्नान्यात्वपद्रुष्टयात् ॥ ८५ ॥  
 मूलस्याणरम्भे पि तुन्यदना म्पिताः स्तन ।  
 पञ्चाशत्पञ्चाशत् ज्ञानादन्य स्वभारत ॥ ८६ ॥  
 ब्रह्मस्यारि यथा सस्यस्यपोर्विद्वितिरगणाः ।  
 मनादीषास्य हे सर्वे स्रष्टा गूणतानयः ॥ ८७ ॥  
 ज्ञानापाहृतिरुपाणि कृपास्यष्टाधमस्यया ।  
 नाहमास्याय भिन्नानि विदूषदृष्टरूपतः ॥ ८८ ॥  
 तापावशासका भावा वनिज्ञानादप प्रमात्र ।  
 हे सर्वे तस्य श्रीरम्य न मर्त्यानि विनिष्पयात् ॥ ८९ ॥  
 धर्म वा ब्रह्मधर्मगणकामाह्लादुपः ।  
 सुख्या विन्मारमाधानमनाप्यमन परम् ॥ ९० ॥  
 गद्यस्य वर्गिज्ञाप वात्राप्यवर्ण प्रश्न ।  
 अविश्वस्य वीतापविश्वसिर्ष्वे वम ॥ ९१ ॥

॥ इति चन्त्त्वानुप्रेक्षा ॥

अशुचि सर्पदेहोऽयं शुकशोणितयोनिजः ।  
 असृग्मांसवसाकीर्णः का कया बाहवस्तुषु ॥ ९१ ॥  
 यर्षोमूत्रसमाकीर्णं चर्मवदास्थिसंचयम् ।  
 भ्रातृवयुर्बिभानीहि बीमत्सुसयितापक ॥ ९२ ॥  
 यस्किञ्चिस्तुदरं वस्तु पूत वा यन्निसर्गतः ।  
 यपु संसर्गतो नूनं क्षणादशुचितां व्रजेत् ॥ ९३ ॥  
 जले जबांस्यन्मूर्नं फाल्गुव्येनोपलसिताः ।  
 सर्वे रागादयो भावा हेयाश्चाशुचिर्मदिरा ॥ ९४ ॥  
 रागसञ्जायता मूर्नं भिदशेषि दिनौकसाम् ।  
 शुचि कृतस्वनी तेषां इक्ष्मलैर्दूषितात्मनाम् ॥ ९५ ॥  
 अतश्चैकः स शुद्धात्मा चिद्रूपो रूपवर्जितः ।  
 भिक्षाशेषेषु शुचि साक्षात् स्वतोऽर्जतयुष्मात्मकः ॥ ९६ ॥  
 यदि वा दर्शनज्ञानधारिभ्राणि शुचीन्यही ।  
 सम्यक्पद्मोपलस्याणि तन्मसापगमादितः ॥ ९७ ॥  
 अशुचिस्तु परित्यज्य शुचिर्ब्राह्म मनीषिभिः ।  
 चैतन्यसङ्गणः सोऽयमयमर्षो निरूप्ये ॥ ९८ ॥

॥ इत्यशुचित्वानुप्रेक्षा ॥

आभवः स द्विषा प्राक्को भावद्रव्याभिमेदतः ।  
 तत्र रागादयो भावाः कर्मागमनहेतवः ॥ १०० ॥  
 तस्मात्प्राणाभवो द्वेषो रागमायः क्षरीरिण्यात् ।  
 तद्देतोः कर्मरूपेण भावो द्रव्याभवः स्मृतः ॥ १०१ ॥

मिथ्यात्वं च कृपायाश्च योगा विरतपस्वभा ।  
 संति भाषाभवस्येह भेदाः श्रीगिनदेशिताः ॥ १०२ ॥  
 एभिर्द्वारैस्तु श्रीवानामाभनतीह पुत्रलाः ।  
 यथा सच्छिद्रपोतस्य पारिमध्ये स्वितस्य च ॥ १०३ ॥  
 तत्कार्यानामभदानं भदानं वा तदन्यथा ।  
 मिथ्यात्वं प्रोच्यते प्राज्ञैस्तत्र भेदादनेकधा ॥ १०४ ॥  
 सामान्यादेकमेवैतन्मिथ्यात्वं जातिरूपतः ।  
 विशेषात्पंचधा यद्वा लोकासंख्यातमामतः ॥ १०५ ॥  
 एकमेकांतमिथ्यात्वं द्वितीयं विपरीतकं ।  
 तृतीयं विनयस्तुर्यं सङ्घयोऽस्तु पंचमम् ॥ १०६ ॥  
 उक्तं च—

“ एयंतपुद्गदरसी विवरीभो धम तापसो विषर्जा ।  
 इदो नि य संसयिदो मङ्गडिभो धेव अण्णाणी ॥ १ ॥ ”  
 एतथां सप्तमं प्राज्ञैर्विज्ञेय परमागमात् ।  
 यद्वासंख्यातलोकाः स्युः सूक्ष्म्यास्ते बुद्धपगीचराः ॥ १०७ ॥  
 कर्पस्यात्मानमेवात्र कृपायादिति दर्शिताः ।  
 पञ्चविंशतिसंख्याक्य मोहकर्मोदयोद्भवाः ॥ १०८ ॥  
 क्रोधो मानश्च पाया च सोमश्चेति चतुर्विधः ।  
 मत्पकं तं जनता स्यु(स्वा)नुवपिन चदाहताः ॥ १०९ ॥  
 द्वितीयं तच्छतुष्कं स्यादमत्याम्प्यानसंज्ञकम् ।  
 मत्याम्प्यानं तृतीयं स्यात्तुर्यं संख्यसनास्यया ॥ ११० ॥

१ एषन्ते पुद्गदधीं विवरीभो धम तापसो विषर्जा ।

इदोऽपि च संशयिता मत्पकी वैष्णवी ॥ गोमयकारे श्रीकण्ठे वा. १६ ।

एव समिष्टिता भंगैः कृपाया पोदञ्च स्मृता ।  
नीकपायास्तया ज्ञेया सस्यया नम तद्यया ॥ १११ ॥

हास्यो रत्यरती चैव शोको भीतिस्तयैव च ।  
शुद्धप्तास्त्रीनरह्नीबेदाभोवेश्चिता क्रमात् ॥ ११२ ॥

एवमेकीकृताः सर्वे पंचविंशतिसंस्पृकाः ।  
कर्माभवस्य कर्तृत्वान्महानर्थविधायिनः ॥ ११३ ॥

अधिरतिस्तु विख्याता सर्वतो द्वादशास्यया ।  
अंतर्भूता कृपायेषु पृथगप्युपदेशिता ॥ ११४ ॥

इंद्रियाणि च पंचैव मनः पष्ठमुदाहृतम् ।  
तेषामनिग्रहात्मोक्ता पोढा विरतिरित्यपि ॥ ११५ ॥

पञ्चस्याधरमीधानां पष्ठस्यापि अस्य च ।  
प्राणापरोपणं हिंसा पोढा सा चैति संमिता ॥ ११६ ॥

धर्मः स्वात्मानुभूत्यास्य प्रमादोनबधानता ।  
हेता कर्माभवस्यास्य भेदाः पंचदश स्मृता ॥ ११७ ॥

उक्त च—

“ विक्रंहा तहा कसाया इन्द्रियणिहा तहेव पणगो य ।  
चहु चहु पणमेगेग होंति पमादा हु पण्णरसा ॥ १ ॥ ”

योगश्चात्मपदेष्वानां परिस्पर्दस्त्रिषा मतः ।  
मनोवाक्कायरूपाणां धर्षणानां विपाकतः ॥ ११८ ॥

सोऽपि सत्यादिरूपेण भिद्यते नैकपा शुचैः ।  
औदारिकादिभेदैश्च काययोगोऽप्यनेकपा ॥ ११९ ॥

१ विक्रमस्तथा कसाया इन्द्रियनिहातावैव प्रकल्पम् ।

चहु-चहुः-पंचैकैकं भवन्ति प्रमादा चहु पंचदश ॥

उक्त च—

“कर्मवृत्तयेण एकं द्रव्यं मानं तु होइ द्विविह तु ।  
 ते पुण अहविहं वा अहदाससय असंखसौग वा ॥ १ ॥”  
 तारतम्यात्मकं सस्य (य) निकृष्टोत्कृष्टमध्यम ।  
 निरवधपात्स्वेषो हि वेदितव्यं महागमात् ॥ १२० ॥  
 सर्वे इय विनानीयादाभयं परमार्यतः ।  
 एक्य निराभयः स्वात्मा ब्राह्मो शुद्धात्पूतितः ॥ १२१ ॥  
 ॥ इति आश्वानुप्रेक्षा ॥

आभवाणां निरोधो यः संवरः प्रोच्यते पुनैः ।  
 द्रव्यमावविभक्तेन सोऽपि द्विविध्यमश्नुते ॥ १२२ ॥  
 यनाश्रितेन कपायाणां निग्रहः स्यात्सुख्यष्टिनाम् ।  
 तनाश्रितेन प्रयुज्येत संवरो भावसङ्गक ॥ १२३ ॥

उक्त च—

“वैदसमिदीगुत्तीभो धम्मजुपहापरीसहजभी य ।  
 चारितं बहुमेया णायन्वा भावसपरविसेसा ॥ १ ॥”  
 कर्मणाभाभयी भावा रागाग्नीनामभावत ।  
 तारतम्यतया सोऽपि प्रोच्यते द्रव्यसवर ॥ १२४ ॥

१ कर्मवृत्तयेण एक द्रव्यं मानं तु होइ द्विविहं तु ।

ते पुण अहविहं वा अहदाससय असंखसौग वा ॥

सौम्यसाराधर्मधर्मो ॥

१ आश्वानुप्रेक्षा कर्मवृत्तयेण प्रोच्यते ।

वैदसं बहुमेया इत्यस्या भावसपरविसेसा ॥ इत्यन्तये ॥

अयमेकः सदा सेव्यः संबरो मोक्षसाधनम् ।

अथ तत्राविनामृतः शुद्धः सेव्यमिदात्मक ॥ १२५ ॥

॥ इति स्वराधुप्रेक्षा ॥

निर्मरापि द्विषा ज्ञेया भावद्रव्यविभेदतः ।

अपि वैकादशस्यानैः स्याताः सरस्यगुणक्रमाः ॥ १२६ ॥

आत्मनः शुद्धभावेन गलस्येतत्पुराकृतम् ।

वेगाद्भुक्तस कर्म सा भवन्नाविनिर्मरा ॥ १२७ ॥

आत्मनः शुद्धभाबस्य तपसोऽतिशयादपि ।

यः पातः पूर्ववदानां कर्मणां द्रव्यनिर्मरा ॥ १२८ ॥

यथाकाष्ठे समागत्य दत्त्वा कर्मरसं पचत् ।

निर्मरा सर्वभीषानां स्यात् सविपाकसङ्क ॥ १२९ ॥

इयं मिथ्यादृष्टामेव यदा स्याद्भ्रमपूर्विका ।

मुक्तये न तदा ज्ञेया मोहोदयपुरःसरा ॥ १३० ॥

सविपाका विपाका वा सा स्यात्सवरपूर्विका ।

निर्मरा सुदृष्टामेष नापि मिथ्यादृष्टा क्वचित् ॥ १३१ ॥

निर्मरालक्षणं ज्ञात्वा मोक्षसिद्धिमपीप्सुभिः ।

सर्षारंभेण शुद्धात्मा सवितम्बस्तर्दगत ॥ १३२ ॥

॥ इति निर्भगधुप्रेक्षा ॥

अधो वैशासनाकारा मध्ये स्याद्गच्छरीनिमः ।

मृद्गसदृशमाग्ने लोकास्येति त्रिषा स्थितिः ॥ १३३ ॥

पापास्तु पापपाकेन पच्यंत छिन्नादिभिः ।

सप्तभध्रेन्द्रधोभागे नारका नारकः सह ॥ १३४ ॥

केचित्पुण्योदयेनेह स्वर्गेषु सुखसंपद् ।

भुंनंतो दिव्यभोगांश्च सागरावधिमीविनः ॥ १३५ ॥



कश्चित्सौख्यं कश्चिदुःखं मध्यलोके कश्चिद्वपम् ।  
 प्राप्नुवति वृत्तिर्यथाः पुण्यपापवशीकृताः ॥ १३६ ॥  
 सोऽद्यै शान्तं धाम मनुष्यसेप्रसमितम् ।  
 अनंतसुखसपत्नाः सिद्धा यत्र वसंस्तदा ॥ १३७ ॥  
 एतल्लोकत्रयं ज्ञात्वा तन्मूर्द्धस्वं शिवालय ।  
 इत्या मोहं हगायैदथ साधयंतु महर्षयः ॥ १३८ ॥  
 ॥ इति ध्येऽनुपेक्षा ॥

बोधिशोधनमित्युक्तमनन्यमनसात्मनः ।  
 दुर्लभा सा हि जीवानां बोधिदुर्लभा इष्यते ॥ १३९ ॥  
 अनंतानंतमीवानां सद्धानादिबनस्पतौ ।  
 निःसरंति ततः कश्चिद्वेऽन्तिष्यनेहसि ॥ १४० ॥  
 ततः कथं कथं चिद्वै पृथ्वीकायिकादिषु ॥ १४१ ॥  
 उत्पद्यते तथा देवात् दुर्गतौ सम्पत्तिनिधिः ।  
 ततः कृष्णतमाधे हि साधनान्दुष्टकर्मणाम् ॥ १४२ ॥  
 द्वीन्द्रियादिषु जायंते विरह्यामिब दुर्गतौ ।  
 पर्याप्तत्वं ततः कृष्णस्त्राप्यते मामिभिः कश्चित् ॥ १४३ ॥  
 प्रायोऽप्यसोऽसौ जीवा संत्यज बहसो यतः ।  
 तपाद्बुद्ध्यासमाश्रयन्मानि मरणानि च ॥ १४४ ॥  
 सस्वापापाष्टादष्टापर्यं जायंते दुःखजात्यहो ।  
 अतस्त्वतोऽपि निःसृत्य कृष्णस्त्राप्येन्द्रियौऽम्बत् ॥ १४५ ॥  
 ततः कथं कथं चिद्वै संज्ञी भवति मानवः ।  
 तत्राप्यार्यसंज्ञेऽस्मिन्नुत्पत्तिर्दुर्लभा शुणाम् ॥ १४६ ॥  
 तत्राप्युषीःकुस्रं अन्यं दुर्लभं जैनपरमणि ।  
 प्राप्तोऽप्यायुः सुसंपूर्णं बपुरारोग्यदेव च ॥ १४७ ॥

तयोत्तरं सुदुष्प्राप्य प्राप्यते दैवयागतः ।  
 तत्रापि विपरीतानां धर्मबुद्धिस्तु दुर्लभा ॥ १४८ ॥  
 प्राज्ञायां धर्मबुद्धी च दुर्लभा धर्मपाठ्यं ।  
 प्राप्तिं तस्मिन्नपि प्राया दुर्लभा गुरुद्वेषना ॥ १४९ ॥  
 प्राज्ञौ तस्यां कृपायाणां निग्रहश्चातिदुर्लभः ।  
 सति यस्मिन् भवत्येव संयमः कर्मनाशकृत् ॥ १५० ॥  
 सन्धे तस्मिन्नपि प्राज्ञ ( प्राज्ञा ? ) फालसम्भ्रियवशीकृतः ।  
 शुद्धचैतन्यरूपस्य बोधिसामस्तु दुर्लभः ॥ १५१ ॥  
 उक्तं च—

“ स्वश्रीवसमविसीही देसणपाभोगकरणसद्धी य ।  
 चत्तार वि सामण्णा करणं सम्भत्तुचत्त ॥ १ ॥ ”  
 इदमत्र हि तात्पर्यं विज्ञेय परमार्थिभिः ।  
 दुर्लभे बोधिसामेऽस्मिन् प्रमादो दस्युरत्र हि ॥ १५२ ॥  
 ॥ इति बोधिदुर्लभानुप्रेक्षा ॥

धर्मशब्दस्त्वनेकार्येऽप्येकार्ये प्रत्ययत्यहो ।  
 यस्मादुच्यतेऽपदे धत्ते जीवं नीचैः पदादपि ॥ १५३ ॥  
 धर्मो बस्तुस्वमावः स्यात्कर्मनिर्मुक्तनक्षमः ।  
 तच्चैव शुद्धचारित्रं साम्यमानधिदात्मनः ॥ १५४ ॥  
 व्यवहारेण तत्त्वोक्तो धर्म संयमसंज्ञकः ।  
 सर्वमाभिदयामुल्लस्यतः श्रीसप्तमन्वितः ॥ १५५ ॥

१ कात्थेऽपि कविभिः देसणायायोगकरणसम्भवत्त्व ।

चत्तारोऽपि सामण्णाः करणं सम्भत्तुचत्त ।

क्वचित्सौख्यं क्वचिदुत्सवमप्यसाके क्वचिद्वसम् ।  
 प्राप्नुवन्ति नृतिर्येषः पुण्यपापवशीकृताः ॥ १३६ ॥  
 सोऽक्षयं शान्तेन धाम मनुष्यसेवसंमितम् ।  
 अनंतमुत्सवमपमाः सिद्धा यत्र वसस्यही ॥ १३७ ॥  
 एतच्छोकवयं ज्ञान्ता तन्मूर्द्धस्थं शिवालयम् ।  
 इत्था माहं दृगाद्यैश्च साधयंतु महर्षयः ॥ १३८ ॥  
 ॥ इति शोकानुभेदा ॥

बोधिर्बोधनमित्युक्तमनन्यमनसात्मनः ।  
 दुःखमा सा हि जीवानां बोधिर्दुर्लभ इष्यते ॥ १३९ ॥  
 अनंतानतजीवानां सघानादिबनस्पती ।  
 निःसरन्ति ततः क्वचिद्भतेऽनंतऽप्यनइसि ॥ १४० ॥  
 ततः कथं कथं चिद्दृष्ट्वा शिवायिकादिषु ॥ १४१ ॥  
 उत्सर्षन्तं तथा द्वात् दुर्गती सम्पर्सनिधिः ।  
 ततः कृच्छ्रतमात्त हि साधवाद्दुष्टकर्मणाम् ॥ १४२ ॥  
 द्वीन्द्रियादिषु आर्षन्ते विरह्यामिव दुर्गती ।  
 पयोस्तत् ततः कृच्छ्रात्प्राप्यत माणिभिः क्वचित् ॥ १४३ ॥  
 प्रायाऽप्ययोस्तथा जीवा सत्यत्र बहवो यतः ।  
 तपामुच्छ्वासमाभजन्तानि मरणानि च ॥ १४४ ॥  
 समुपायाष्टाद्दशावश्यं आर्षन्ते दुःखजान्यहो ।  
 अनस्ततोऽपि निःसृत्य कृच्छ्रात्सर्वेन्द्रियाऽभवत् ॥ १४५ ॥  
 ततः कथं कथं चिद्दृष्ट्वा भवति मानवः ।  
 तत्राप्यायस्येऽस्मिन्ननुत्पत्तिर्दुर्लभा नृणाम् ॥ १४६ ॥  
 तत्राप्युर्ध्वाङ्गुले जन्म दुर्लभं जैनधर्मणि ।  
 प्राप्तऽप्यायुः सुसंपूर्णं वपुरारौम्यमेव च ॥ १४७ ॥

प्रयस्त्रिंशत्समुद्रायुर्मुक्त सौख्य निरतरम् ।  
 दुर्लभं चान्यपुष्पानां सर्वे वाचामगाधरम् ॥ १६६ ॥  
 म्बायुरस वतश्च्युत्वा समाप्य चरम मधु ।  
 कवलज्ञानमुत्पाद्य गंतातः परमां गतिं ॥ १६७ ॥  
 नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमाञ्जतमुत्सात्मने ।  
 नमश्चानंतवीर्याय केपलज्ञानमानवे ॥ १६८ ॥  
 शतानां पद्मसंख्याका ममवादिमुनीश्वरा ।  
 भक्ते सष्टस्तनां कृत्वा दिव अग्नुर्यथापर्य ॥ १६९ ॥  
 ज्ञेयस्वामिभिर्देशस्य चरिप्रसिद्धमुत्तम ।  
 जैनागमानुसारण प्रोक्तमव्यथिया मया ॥ १७० ॥  
 यद्म स्वलितं किंचित्प्रमादाश्चारद मम ।  
 स्वरम्यजनसंख्यादि तत्संतम्य जगन्नुते ॥ १७१ ॥  
 अपार चातिगंभीर महाशब्दऽतिदुस्तर ।  
 का न मुच्यति श्लाघार्थो विद्वानपि महीतले ॥ १७२ ॥  
 जयस्वामिषदुत्तम प्रकुरुत भूर्मा तपा या जनः ।  
 पंचाक्षरिबिज्ञास्यामगहनभ्रणीषु दावापमे ॥  
 स स्यात्सौम्यनिषेधनं ग्वलु बुधा शास्त्रति चित्तंनिश्चं ।  
 कुर्वीत्य करणापरा निषमुत्र बांजास्ति रम्या यदि ॥ १७३ ॥  
 धे गृणंति चरिप्रमुत्तमपिद्भीर्भिषुनाम्ना मुन ।  
 नानाधिप्रकृयाधिभूषितपतिप्रार्थायमंभापनं ॥  
 तपा स्यात्कृष्ण्यकर्मनिपुणा बुद्धिः म्ययंभूरिष ।  
 त्यवत्वाद्यपभरप्रमृतगुणमापस्याथु यमाभ्यदम् ॥ १७४ ॥

द्विषा सौऽप्याभमादेदात् सृहस्यघामिनार्द्रयो ।  
 त्रिषा सहर्षेनज्ञानधारिणाहस्यभद्रतः ॥ १५६ ॥  
 दशभापि ततो धर्मस्तथासक्तणसंमवात् ।  
 उच्यमादौ समा देया माद्वर्जवसत्यबाह् ॥ १५७ ॥  
 शौचं सयम एवानुतपस्त्यागस्तथोत्तमम् ।  
 आर्क्षिचन्यमया ह्ययं ब्रह्मधर्म्ये सुदुष्करं ॥ १५८ ॥  
 भर्माऽशुभेह पापेयं सधूपह् ( सधूपह् ) नित्योपकारकं ।  
 पिता माता च बहुश्व दीपश्वार्प्यगिनामिह ॥ १५९ ॥  
 मत्स्यैति धीपनैः कार्यं धर्मशुद्धिः सनातनी ।  
 न हि काष्ठकसैः कापि नेतव्या स्वतृपाग्निता ॥ १६० ॥  
 सर्वभापि दिशः शुन्या पिना धर्मेण प्राणिनाम् ।  
 मत्स्यैतत्सहितं कार्यं बावशुकतवाप्यम् ॥ १६१ ॥  
 ॥ इति धर्मानुपदेशा ॥

॥ इति द्वादशानुपदेशा ॥

एवं पितृपतस्त्वस्य इति द्वादशभाषनाः ।  
 अमातपिष तत्रासीदोरं वाप्युपसर्गकम् ॥ १६२ ॥  
 दशान्निभं विद्यात्मानं स्वानुपूत्यैकमावतः ।  
 विद्युत्तरं समार्कस्य जयति म्य परीपहान् ॥ १६३ ॥  
 व्यतीते चापसर्गेऽथ मुनिर्विद्युत्तरो महान् ।  
 व्यन्ने व्यान्नि यथादित्यो तमार्धुज इवा(व)द्युतः ॥ १६४ ॥  
 प्रातःकाष्ठेऽथ संभाते मात्स्यसङ्घेस्वनाविधौ ।  
 यदुविचारावनां कृत्वागमत्सर्वापिसिद्धिके ॥ १६५ ॥

## अथ प्रशस्ति

शब्दार्थरयवच्छास्त्र यथेद याति पूर्णताम् ॥

तया कल्याणमासाभिर्षर्द्धता साधुद्वारः ।

अथ सप्तसरेऽस्मिन् धीनृपविक्रमात्स्यगताम्सवत् १६३२ वर्षे  
 चैत्र सुदि ८ वासरे पुनर्बसुनक्षत्रे धीजर्गस्यपुरदुर्गे धीपातिसाहिबख-  
 दीनअकबरसाहिप्रवर्धमाने धीमन्काणसभे माधुरगच्छे पुष्करगण  
 खेच्छाचार्यान्वये महारकधीमलयकीर्तिदेवा । तस्ये महारकधीगुणमद्रम्  
 रिदेवा । तस्ये महारकधीमानुकीर्तिमा । तस्ये महारकधीकु-  
 मारसेननामधेयास्तान्नायेऽश्रोतकाम्भये गर्गगोत्रे मद्यनियाकोउपाम्तम्य  
 धावकसाधुध्री (न)न्दन तद्भाता साधुध्रीआमू तन्नाया सरो तथा  
 पुत्रत्रय । श्वेष्टपुत्र साधुव्यपच तस्य भार्या त्रिनमती । तस्य पुत्रत्रय ।  
 प्रथमपुत्र साधुवसरय । तस्य भार्या गाधो तस्य पुत्रत्रय । प्रथम  
 साहजोरचद्र भाया व्यापी । तस्य पुत्र साहजरीपत्तस भार्या इमीरने  
 तस्य पुत्रा पञ्च । प्रथम साहजेमरात्र भार्या गरीबत्तस्यपुत्र  
 श्री । दुरगन तृतीयपुत्र हरिपश साहजसरयपुत्र-  
 द्वितीयसाधुध्रीऽम्भ तस्य भार्या मबानी तस्य पुत्र साधुचानसाल-  
 भार्या वृषा जसरयतृतीयपुत्र साधुध्रीऽम्भ तस्य भार्या भागमती तस्य  
 पुत्रद्वयम् । प्रथम पुत्र साधुभोयात्र भार्या पारो पुत्र छालच साधु  
 ध्रीऽम्भ । द्वितीयपुत्र जारपत्तम भाया साधुव्यपचद्वितीयपुत्र

पठनीयं पाठनीयं शास्त्रमेतन्मृनीश्वरैः ।

जम्बूस्वामिचरिणाय रोमाचमननसमम् ॥ १७५ ॥

संतुष्टं क्षारदे देवि यदप्र गविते मया ।

न्यूनाधिकं भवेत्किञ्चित्प्रमादाद्भ्रातितोऽप्यथा ॥ १७६ ॥

जम्बूस्वामी मिनाशीक्षो मूयान्मंगलसिद्धये ।

मदतां मुनि मो धन्याः श्रीदीरार्तिमङ्कवली ॥ १७७ ॥

इति श्रीजम्बूस्वामिचरिते भगवन्कूर्मपतिवर्मतीर्थकरोपदेशालुचरित

स्याद्भट्टानकपगणपचबिद्याविहारदपण्डितरजमञ्जुविरचिते

साधुपासाहम्यसाधुटोडरसमन्वयिते मुनिश्रीविष्णुवर

सर्वार्थसिद्धिगममर्णनो नमः श्रयोस्तथा पर्ब ॥

इति जम्बूस्वामिचरितम् समाप्तम् ॥

## अथ प्रशस्ति

सुभ्यार्यैर्ययच्छास्त्र यथेदं याति पूर्णताम् ॥

तथा कस्याणमासाभिर्षर्द्धता साधुदोढरः ।

अथ सुभ्यसरेऽस्मिन् धीनृपविक्रमादिस्वगाताम्दसप्त १६३२ वर्षे  
 चैत्र सुदि ८ वासरे पुनर्बसुनक्षत्रे श्रीअर्गलपुरदुर्गे श्रीपातिसाहिबका-  
 दीनअकवरसाहिप्रवर्धमाने श्रीमत्काष्टसधे मायुरगच्छे पुष्करगण  
 श्रेष्ठाचार्यान्वये महारकधीमन्मपकीर्तिदेवा । तत्पद्मे महारकधीगुणमद्रसू-  
 रिदेवाः । तत्पद्मे महारकधीमानुकीर्तिदेवा । तत्पद्मे महारकधीकु-  
 मारसेननामधेयास्तदाभायेऽप्रोतकान्वये गर्गगोत्रे मटानियाकोष्ठास्तम्य  
 श्रावस्तुसाधुधी (न) मदन तद्भता साधुधीवास्तु तद्भार्या सरो तयो  
 पुत्रत्रय । अ्येष्टपुत्र साधुरूपचंद तस्य भार्या जिनमती । तस्य पुत्रत्रय ।  
 प्रथमपुत्र साधुनसरथ । तस्य भार्या गाषो तस्य पुत्रत्रय । प्रथम  
 साधुखोरचद्र भार्या प्यारी । तस्य पुत्र साधुगरीकदास भार्या इमीरदे  
 तस्य पुत्रा पञ्च । प्रथम साधुहेमराज भार्या गरीकदासपुत्री  
 डी । दुरगन तृतीयपुत्र हरिषय साधुनसरथपुत्र-  
 द्वितीयसाधुधीष्टम्भ तस्य भार्या मबानी तस्य पुत्र साधुचौबसतक  
 भार्या हूषो नसरथतृतीयपुत्र साधुचौबसतः तस्य भार्या मानमती तस्य  
 पुत्रद्वयम् । प्रथम पुत्र साधुमोबास भार्या पारी पुत्र साधुचंद साधु  
 चौबस । द्वितीयपुत्र नारपदास भार्या साधुरूपचंदद्वितीयपुत्रः



साधुसममञ्जु भार्या विरो तस्य पुत्र साहजयमञ्जु भार्या चोदन्दे सप्त-  
 रूपचन्द्रतृतीयपुत्रः साधुश्रीपासा भार्या घोषा तस्य पुत्र साधुदेवः  
 तस्य भार्या कस्तूरी तस्य पुत्रत्रय । पुत्र साधुश्रीशङ्करभद्रास तस्य भार्या  
 कस्तूरी । साधुदेवः तृतीयपुत्र मोहमन्त्रस्तः तद्भार्या मधुरी । साधुदेवः  
 तृतीयपुत्र विरज्ज्वली रूपमङ्गल एतेषां मध्ये परमसुभाषकसाधुश्री-  
 देवरेम अबुस्वामिचरित्र कथयित । विख्यापित च कर्मसुपनिमित्तम् ॥  
 विहित गगनारसेन ।

॥ इति ॥

# अध्यात्मकमलमार्तण्डः

## प्रथम परिच्छेदः

मणम्य भाव विशद विदात्मक, समस्तवस्वैर्यसिद्धं स्वमार्तण्डः ।  
प्रमाणसिद्धं नपर्युक्तिसयुतं, विमुक्तदापोवरणं समंततः ॥ १ ॥

१ नर्या । २ परमात्मवत् । अत्र मात्रस्यः व्यक्त्याद्यो प्रज्ञाः । "भाव" सत्त्वस्वमा  
वामिप्रान्तेऽप्रमन्नम्" इत्यमरः । ३ निर्मलम् । अशास्त्रोपरिहितम् । ४ विवेकना  
एव आत्मा स्वस्मै कस्य च निदामकं । वेत्तन्नास्त्वमित्यर्थः । ५ तस्य भावस्यै ।  
योऽर्थो यद्य व्यवस्थितस्तस्मात्स्य तथा भावो मयने तत्त्वमुच्यते । अर्धेण मन्वते  
ज्ञाने निश्चिन्ते इत्यर्थं तत्त्वेनार्थस्तत्त्वार्थः । तत्त्वमेव त्वार्थस्तत्त्वार्थः । तत्त्वार्थ  
परमार्थभूतपर्यवर्तः । अत्र तत्त्वमेव बीजपरिपूर्या इत्यादि । तत्त्वार्थस्येन  
प्रयोजनमिधेयध्यायिकं प्राज्ञं तत्त्वार्थं मोक्षप्राप्तेरुच्यते । अर्धस्यस्त्वानेवार्थत्वं ।  
तदुच्यते— हेतो मन्वते वाच्यं निश्चिन्ते विषय तथा । प्रकृते वस्तुनि इत्यर्थं अर्धस्य  
प्रवर्तते । १ । समस्तास्य ते तत्त्वार्थाः परार्थास्तान् वेत्ति ज्ञान्यतीति समस्तवत्त्वार्थ-  
वित् तम् । २ त्वामिप्रान्तेऽप्रमन्नम् इत्यमरः वा । ३ प्रमायैः मल्लस्येकादिभि सिद्धं  
परमप्रमत्तकम् । ४ त्वामिप्रान्तेऽप्रमन्नम् इत्यमरः वा । ५ त्वामिप्रान्तेऽप्रमन्नम् इत्यमरः  
वत्त्वार्थस्येन प्रवर्तते तत्त्वार्थस्येन नव उच्यते ज्ञान्यतीति त्वामिप्रान्ते  
इत्यर्थः । नर्धेति प्राप्तेति प्रमाणस्येति विवेकना मुक्तियोगे विवित्रमन्वते  
संयोजनम् अथवा मन्वते नैयमादीनि युक्तस्तत्र सर्वत्र संयुते युक्तम् । १ संयुते  
बीजस्य बोधान्माहरणमात्तत्त्वं वर्ततेऽतो बीजस्य साक्षात्परत्वस्यैवमन्वते २  
इत्यर्थे परमप्रमत्तकम् । अथवा बोधा साक्षात्परत्वमूला अथवा अन्वकारस्य, अन्वकार  
ज्ञानपरत्वस्यैवमन्वते । विमुक्तं मुक्तिं बोधपरत्व इत्यर्थम् । अर्थात् केवलात्त्वार्थ-  
वित् तम् । १ समस्तवत्त्वार्थस्यैवमन्वतेऽतोऽपि त्वामिप्रान्तेऽप्रमन्नम् इत्यमरः । अथवा  
समंततो मन्वतेऽतोऽपि त्वामिप्रान्तेऽप्रमन्नम् इत्यमरः ।

अनन्तैर्षमं समयं धर्तान्द्रियं, कुवादिर्वादाप्रवृत्तस्वमज्ञानम् ।  
 युवेऽप्यगमणिर्धनुमर्द्धत, पदाथतरुं भवतापज्ञान्तये ॥२॥ इत्यत्र  
 नमाऽस्तु तुभ्यं जंगम्भ भारति, मसादेपांशं कुरु मां हि क्रिंहेरम् ।  
 तव मसान्नाद्रिह तस्वनिर्षय, यथास्वैवापं विदेधे स्वसंनिदे ॥३॥  
 मोहः संतानवती भववनजस्रश द्रम्यकर्मोपहतु-  
 स्तस्वैधानमूर्तिर्बेमनमिव स्वस्य \*भ्रष्टीत न तव ।  
 योऽसौभेजमुक्ता हगंभगमपुतास्त\*धरिश्राप्युतिभ ।  
 गच्छत्स्वप्यात्मकमपुमणिपरपरिम्यापनान्य धितोऽस्वम् ॥ ४ ॥

१ अमन्तान्तरात् । धर्मो पुत्रकाम्यव्यवसायावाचारतोभ्यत् । इत्यन्तः ।  
 २ इत्यत्रे धरिभ्योऽस्तु इत्यम् । नमसा धर्यावाभ्यन्निद्रान्तर्निहः इत्यम् ।  
 अथवा धर्मं कुर्वन्पाति गच्छति प्रयेति वैत्यन्ते इत्यर्थेनद्रिकेन ताः तववर्त  
 सम्यम् । “ इत्यत्रपुत्रं धर्मं तवपुत्रं न शोभि परब्रह्मेण । सुखं जगत् वैश्वि-  
 पाहं तुभं तु तं शोभि ” इतिवचनम् । ३ अर्धनिर्षयं विदुलक्यन्तर्धनिर्षय-  
 वाग्रम् । \* इत्यन्तेना कल्पिताना यतोऽन्तरात् तेषामज्ञानमूर्तिं स्वं स्वीयं कल्प-  
 यन् त अथान् विदुलक्यन्तर्धनिर्षयैरपतिह्यज्ञानम् । ४ वचिम् । ५ अन्तर्धने  
 मोहत्व प्रथितेनुदीप्ति रतदीप्यन्तर्धनित्वम् । ६ आर्धनिर्षयं इत्यत्र संज्ञक-  
 त्वेन चक्यन्तर्धम् । एतात्तान्तरात्तये । ७ हे अमन्त्याः । ८ अन्तर्धने  
 चम् । ९ अन्तर्धने । १० तवनिर्षयम् । ११ अन्तर्धनेन । १२ युवे ।  
 १३ अन्तर्धनेन । १४ अन्तर्धनेन । १५ अन्तर्धनेन । १६ अन्त-  
 र्धनेन । १७ अन्तर्धनेन । १८ अन्तर्धनेन । १९ अन्तर्धनेन । २० अन्तर्धनेन ।  
 २१ अन्तर्धनेन । २२ अन्तर्धनेन । २३ अन्तर्धनेन ।

इत्यत्रपुत्रं न शोभि परब्रह्मेण इत्यम् ।

\* भ्रष्टीत इत्यम् । × धरिश्राप्युतिभ इत्यम् ।



अनन्तैर्धर्मैः समर्थं यतीन्द्रियं, कुनादिर्षोदाप्रवृत्तस्वसत्तमम् ।  
 सुखेऽप्येवमपिपेतुमर्हते, पदाथतस्व भवतार्पश्चान्तव ॥२॥ इत्  
 नमाऽस्तु त्वय्य जगदम्ब मारति, प्रसार्द्र्पात्रं कुरु मां हि किंरेत् ।  
 तव मसाडादिह तस्वेनिणयं, ययास्वैर्षीर्षं विद्महे स्वसंभिते ॥  
 माहः संतानवतीं पञ्चवनजसदा द्रव्यकर्मापहतु-  
 स्तस्त्वेवान्ममूर्तिर्विपनमिष सत्त्व \* भवधीते न तत्त्व ।  
 पाहसांभेप्रमुक्ता हर्गबगमपुतात्म×धरिषाच्युतिम् ।  
 गच्छत्स्वप्यात्मकं प्रमुमणिपरपरिख्यापनान्म धितोऽस्त्वम् ॥ ४४

१ अनन्तस्वसत्तमम् । धर्मैः पुण्यकर्मण्यवस्थाभावात्तद्विषयः ॥ इत्यन्तः ।  
 २ समर्थं ब्रह्मिणेत्तत्स्वसत्तमम् । समयाः धन्यात्तत्स्वसत्तमविद्यामन्तैर्विदुः ॥ इत्यन्तः ।  
 अथवा समं पुण्यपाति पच्छति प्रयोजति त्रैलोक्येभ्यो ह्यनन्तैर्धर्मैरेव च कल्प  
 तमम् । " ईश्वरपुत्रं त्वत्वं सद्गुरुत्वं न पीयिष्य उवाचोपमा । सुपुत्रं क्वमा देवैः  
 पाहं सुपुत्रं तु ते शशि " । इति कवचम् । ३ यतीन्द्रियं विद्यात्स्वसत्तमविदित  
 तमम् । ४ कुनादिना मरुतिभया कथाऽनन्तस्वसत्त्वे तेषां प्रवृत्तमपुनितं तं तानं स्वयं  
 क्वमा तं कर्तुं विद्यात्स्वसत्तमविदितैरुपविद्यैरुपविद्यैरुपविद्यैरुपविद्यैरुपविद्यैः । ५ यती । ६ अनन्तैः  
 मोक्षत्वं अधिकैः पुनितैः त्वत्त्वेऽनन्तैर्मिषत्त्वं । ७ अन्तर्भावक इत्यन्तः संख्या  
 यति चक्रेत्तमम् । ८ अन्तर्भावक इत्यन्तः । ९ इत्यन्तः । १० अन्तर्भावक  
 यत्तम् । ११ अन्तर्भावक इत्यन्तः । १२ अन्तर्भावक इत्यन्तः । १३ अन्तर्भावक  
 १ यतीन्द्रियं विद्यात्स्वसत्तमविदितैः । १४ अन्तर्भावक इत्यन्तः । १५ अन्तर्भावक  
 इत्यन्तः । १६ अन्तर्भावक इत्यन्तः । १७ अन्तर्भावक इत्यन्तः । १८ अन्तर्भावक  
 इत्यन्तः । १९ अन्तर्भावक इत्यन्तः । २० अन्तर्भावक इत्यन्तः । २१ अन्तर्भावक  
 इत्यन्तः । २२ अन्तर्भावक इत्यन्तः । २३ अन्तर्भावक इत्यन्तः । २४ अन्तर्भावक  
 इत्यन्तः । २५ अन्तर्भावक इत्यन्तः । २६ अन्तर्भावक इत्यन्तः । २७ अन्तर्भावक  
 इत्यन्तः । २८ अन्तर्भावक इत्यन्तः । २९ अन्तर्भावक इत्यन्तः । ३० अन्तर्भावक  
 इत्यन्तः । ३१ अन्तर्भावक इत्यन्तः । ३२ अन्तर्भावक इत्यन्तः । ३३ अन्तर्भावक  
 इत्यन्तः । ३४ अन्तर्भावक इत्यन्तः । ३५ अन्तर्भावक इत्यन्तः । ३६ अन्तर्भावक  
 इत्यन्तः । ३७ अन्तर्भावक इत्यन्तः । ३८ अन्तर्भावक इत्यन्तः । ३९ अन्तर्भावक  
 इत्यन्तः । ४० अन्तर्भावक इत्यन्तः । ४१ अन्तर्भावक इत्यन्तः । ४२ अन्तर्भावक  
 इत्यन्तः । ४३ अन्तर्भावक इत्यन्तः । ४४ अन्तर्भावक इत्यन्तः । ४५ अन्तर्भावक  
 इत्यन्तः । ४६ अन्तर्भावक इत्यन्तः । ४७ अन्तर्भावक इत्यन्तः । ४८ अन्तर्भावक  
 इत्यन्तः । ४९ अन्तर्भावक इत्यन्तः । ५० अन्तर्भावक इत्यन्तः । ५१ अन्तर्भावक  
 इत्यन्तः । ५२ अन्तर्भावक इत्यन्तः । ५३ अन्तर्भावक इत्यन्तः । ५४ अन्तर्भावक  
 इत्यन्तः । ५५ अन्तर्भावक इत्यन्तः । ५६ अन्तर्भावक इत्यन्तः । ५७ अन्तर्भावक  
 इत्यन्तः । ५८ अन्तर्भावक इत्यन्तः । ५९ अन्तर्भावक इत्यन्तः । ६० अन्तर्भावक  
 इत्यन्तः । ६१ अन्तर्भावक इत्यन्तः । ६२ अन्तर्भावक इत्यन्तः । ६३ अन्तर्भावक  
 इत्यन्तः । ६४ अन्तर्भावक इत्यन्तः । ६५ अन्तर्भावक इत्यन्तः । ६६ अन्तर्भावक  
 इत्यन्तः । ६७ अन्तर्भावक इत्यन्तः । ६८ अन्तर्भावक इत्यन्तः । ६९ अन्तर्भावक  
 इत्यन्तः । ७० अन्तर्भावक इत्यन्तः । ७१ अन्तर्भावक इत्यन्तः । ७२ अन्तर्भावक  
 इत्यन्तः । ७३ अन्तर्भावक इत्यन्तः । ७४ अन्तर्भावक इत्यन्तः । ७५ अन्तर्भावक  
 इत्यन्तः । ७६ अन्तर्भावक इत्यन्तः । ७७ अन्तर्भावक इत्यन्तः । ७८ अन्तर्भावक  
 इत्यन्तः । ७९ अन्तर्भावक इत्यन्तः । ८० अन्तर्भावक इत्यन्तः । ८१ अन्तर्भावक  
 इत्यन्तः । ८२ अन्तर्भावक इत्यन्तः । ८३ अन्तर्भावक इत्यन्तः । ८४ अन्तर्भावक  
 इत्यन्तः । ८५ अन्तर्भावक इत्यन्तः । ८६ अन्तर्भावक इत्यन्तः । ८७ अन्तर्भावक  
 इत्यन्तः । ८८ अन्तर्भावक इत्यन्तः । ८९ अन्तर्भावक इत्यन्तः । ९० अन्तर्भावक  
 इत्यन्तः । ९१ अन्तर्भावक इत्यन्तः । ९२ अन्तर्भावक इत्यन्तः । ९३ अन्तर्भावक  
 इत्यन्तः । ९४ अन्तर्भावक इत्यन्तः । ९५ अन्तर्भावक इत्यन्तः । ९६ अन्तर्भावक  
 इत्यन्तः । ९७ अन्तर्भावक इत्यन्तः । ९८ अन्तर्भावक इत्यन्तः । ९९ अन्तर्भावक  
 इत्यन्तः । १०० अन्तर्भावक इत्यन्तः ।

सुखे-कर्मण्य च हेतुमत्तुत इत्यपि ।  
 \* अन्तर्भावक इत्यन्तः । × अन्तर्भावक इत्यन्तः ।

तस्वायानां स्वभावाद् ध्रुवविगमसमुत्पादसक्षमप्रभाजां  
 तत्सम्यक्त्वं ब्रूयति व्यसहरणनयात्कर्मनाशापशान्तेः ॥ ७ ॥  
 एषाऽह मिर्मलक्ष्मा ह्यवगमधरिभ्राणिसामान्यरूपो  
 ध्यानैर्घटिकविद्राभाति बहुगुणितेणैवैतिलेक्ष्म परं तत् ।  
 धर्म चाधर्ममाकाश्वरं सैव स्वर्गोर्गद्रव्यजीवांतरौणि

प्रमाणं इति मन्वति । केचित्तु संनिक्रया प्रमाणं इति मन्वन्ते । तन्निक्रयं इति  
 बोध्यः ? इन्द्रियं विषयश्च तयोः संबन्धः संनिक्रयः तदुभयमपि निराकृत्य मतिभुता-  
 न्नादि सूत्रमिदं अत्रान्वाहितुक्तम् । १८ अनुमितिः कर्ममनुमानं तस्याहनुमान-  
 प्रमाणात् । अत्र परोक्षप्रमाणं मतिभुतद्वयं बोद्धव्यम् । किञ्चिन्नं परोक्षं इति वेदुष्यते  
 इन्द्रियनीन्द्रियानि परानि प्रत्यक्षानि च आदिप्रमाणात् गुणधरेष्वधिकं च परं ।  
 मतिभुतात्परोक्षत्वमप्यसंभवत्परं उच्यते । तत्परं वाप्येतुमपेक्ष्य ज्ञानस्य अज्ञानतः  
 उत्पद्यते तद्व्यान्वयं तत्परोक्षम् । इन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तं तत् । धृतमनिन्द्रियत्व  
 इतिवाक्यात् । अत्राम्मोपमानापापस्वभावात् संबन्धः । १९ कृतं रचितं तत् गुणा-  
 न्नादि सुविन्यासैर्वा निर्वृत्तिर्निश्चयं तेन युक्तं । २ गुणैर्निःसंख्यप्रतिभिराद्यं युक्तम् ।

१ नवतत्त्वानां पदद्वयान्ना वा । २ ध्रुवसम्बन्धेन प्रौढं विषयसम्बन्धेन व्यय- समु-  
 त्पादसम्बन्धेनोत्पादस्तदेष कस्य चिद् तत्प्रमाणंति तेषामिति । ३ न्यथा क्वचः उप-  
 षांतिरुपसृप्तो वा अज्ञोपरांतिः क्वचोपसृप्त इत्यत्र सम्बन्धस्वत्रयं परिग्रहीतमिति ।  
 ४ ध्रुवसम्बन्धोऽयम् । मित्तं पुरस्कृत्य घटीपरिनिर्भन्न इति भावः । ५ रश्मिद्वयान्ना  
 रिशारित्तमान्तरूपः । ६ इति निश्चयेन । ७ द्वादशैवद्रव्यान्तरात्परं । ८ प्रति-  
 मतिः । ९ बहवो गुणिनो द्रव्यवात्सवैर्वा गुणान्तरं तस्मिन् गुणतामन्वन्तौ द्वैक्यवचन-  
 मितिः । १ प्रवर्तन् ११ । विद्वन् । १२ अन्वत् । १३ अत्र एतदप्यहो द्रव्यवात्सवः ।

एषां पक्षे क्वचै रीर्षे तिच्छरी इत्यवयवयो रिति मेदिनीबोधः । १४ गुणै र्वापि  
 व्यसहरणकाले गन्तः संन्यास करिन्त् तस्मिन्त्वचं तत्फलं च तद्द्वयं च सुखवन्तत्वं  
 कान्तत्वं इत्यर्थः । १५ जीवोत्पत्ते मध्ये करिन्त् तज्जीवोत्तम् पुरस्कृत्यमिति ।  
 पश्चाद्द्वैतः क्वचः । आद्यपरतय सुखवन्तत्वं च जीवोत्तरं वेति ।



तस्मांर्यानां स्वभावाद् ध्रुवविगमसमुत्पादलक्ष्ममार्जा  
 तत्सम्यक्त्वं वर्दति व्यवहरणनयात्कर्मनौशोपधान्ते ॥ ७ ॥  
 एषोऽहं विर्भसस्मो इगवगोमैपरिभ्रादिसामान्यरूपो  
 सन्न्यैघर्लिकाधिदार्माति बहुगुणितुणं वृत्तिलेक्ष्म 'परं तत् ।  
 धर्म चाधर्ममाकाश्वरंसैमुस्वगंभद्रम्यजीवांतरौभि

प्रमथे इति मन्थति । केचित्तु संश्लिष्यः प्रमाथं इति मन्थन्ते । संश्लिष्यं इति  
 श्लेषार्थः । इन्द्रियं विवक्ष्य ततोः संश्लेषः संश्लिष्यः तदुभयमपि निराकर्तुं मतिभ्रुता-  
 न्भ्यादि सूत्रादिषु अनाप्यवहित्युक्तम् । १८ अतुमिति अत्रमनुमानं तस्मात्तुमन्-  
 प्रमथत् । अत्र परोक्षप्रमाण मतिभ्रुतद्वयं बोद्धव्यम् । किञ्चिन्नं परोक्षं इति वेदुष्यते  
 इन्द्रियादीन्द्रियानि पश्यामि प्रकाशपरिष्कं च आदिसम्भत्तु इत्यनेत्कारिकं च परं ।  
 मतिभ्रुतान्नावरणव्ययोपपन्नत्वं परं उच्यते । तत्परं बाधोद्गमनेभ्य अक्षय्य जातनाः  
 उत्पद्यते अक्षय्यद्वयं तत्परोक्षम् । इन्द्रियादिन्द्रियनिमित्तं तत् । ' भ्रुतमतिन्द्रियत्वं  
 इतिवाक्यत् । अत्रामोपमात्वात्पत्त्यभावा अर्थात् । १९ इत्ये रचितं तत् पुन्य-  
 त्वं गुणितत्वं तेषां निर्वातिनिवर्तनं तेन युक्तं । २ गुणैर्विन्ध्यत्परिमित्तं युक्तम् ।

१ नवतन्त्रान् बहुरभ्याना वा । २ भ्रुतसम्येन श्लेषं विवमसम्येन व्यव तनु  
 त्यादसम्येनोत्पादत्तत्वेन अस्म विर्भं तत्प्रमथंति तेषामिति । ३ नासः श्वः उप  
 शातिरुपसमो वा नाशोऽवर्तिः क्षयोपसम इत्यत्र सम्यक्त्वं च परिग्रहीतव्यंति ।  
 ४ पुन्यविद्योऽयम् मित्रः पुत्रकथं शरीरविनिर्भ इति भावः । ५ वर्धनद्वयत्वा  
 रिश्वरिधामन्वस्म । ६ हीति निवर्तनेन । ७ इत्येवैवद्वयत्वं । ८ प्रति-  
 मतिः । ९ बहवो गुणिनो इत्याद्यात्वं तेषां पुन्यत्वं तस्मिन् पुन्यतामन्वामेक्षैकवचन-  
 मिति । १ प्रवत्त ११ । विद्यम् । १२ अन्वत् । १३ अत्र एतदर्थो इत्यवचनः

एते धर्मो कथं धर्मो विद्यते इत्यवचनो रिति मेदिनीश्लेषः । १४ एते वा  
 न्यवहारकाले तेषां संख्या वरिम्न तन्मुक्तत्वं तत्कार्यं च तत्पर्यं च मुक्तगत्पर्यं  
 अस्मत्पर्यं इत्यर्थः । १५ धर्मोऽन्तरे मध्ये वरिम्न तन्वीच्यतम् पुत्रकथनमिति ।  
 १६ इत्येवैव । अत्रासत्त्वं मुक्तगत्पर्यं च धर्मोऽन्तरे भेति ।



मत्तः सर्वे हि भिक्षं परपरिणतिरप्यात्मकर्मप्रजाता ॥ ८ ॥  
 निधित्थेतीह सम्यग्भिगतसकलदग्माहभावः स जीव ।  
 सम्यग्दृष्टिर्भवेभिन्नयनयकयनात्सिद्धकल्प्यश्च किञ्चित् ।  
 यथास्मा स्नात्मतत्त्वे स्थितितनिस्त्रिभेदैकतानी यमाति  
 साभात्सद्दृष्टिरेषायमय विगतरागश्च लोकेकपूज्यः ॥९॥ पुग्मम्  
 बीवाजीवादितश्च मिनर्बरगदित गौतमादिप्रयुक्तं  
 षष्ठीवादिमुक्तं सदभूतविद्युसूर्यादिगीत यथावत् ।  
 तच्च ज्ञानं तथैव स्वपरमिदमलं द्रव्यभावार्यदक्षम्  
 संदेहादिप्रयुक्तं व्यनहरणनयात्सविदुक्तं दृगादि ॥ १० ॥  
 स्वात्मन्येषोपयुक्तः परपरिणतिभिश्चिद्गुणग्रामदर्शी  
 चिञ्चित्पर्यायभेदाधिगमपरिणतत्वाद्रिकल्पपापेसीदः ।  
 सः स्यात्सद्गोर्भेर्बद्धः परमनेयगतत्वादिरागी कर्षणि-  
 च्चेद्वात्मन्यव मप्रप्युत्तसकसनयो वास्तवज्ञानपूर्णः ॥ ११ ॥

१ अक्षयम् । २ लोचनेभ्योमोहादिपरिणतिः । ३ सिद्धये मोक्षाय कल्प  
 सत्ता । ४ मिनर्बरेण गदितं कथितमिति । ५ तद्यत् यौतज्जमिर्मिर्नपरि. प्रयुक्तं  
 दृष्ट्यात्करोण पुत्रिणम् । ६ बुद्धदृष्टारिमिच्छुर्दृष्ट्यात्कर्मण्य कथितमिति । ७ अक्ष-  
 त्तवद्व्यप्यार्थे गीतं कथितमिति । ८ चिञ्चित्तयेन चेतन्य । ज्ञानमन्वेन स्वस्मन्नेक-  
 मिति ज्ञानचेतना ज्ञानस्मन्नेकमिति चेतनं ज्ञानचेतना । सा द्विविधा कर्मकर्मक-  
 चेतन्य च । तत्र ज्ञानस्मन्नेकमिति कर्तव्यमिति चेतनं कर्मचेतना । ज्ञानस्मन्नेकं चेत-  
 न्येति चेतनं कर्मकर्मचेतन्य । तत्र ज्ञानचेतना सिद्धता भवति । संछादिवीवाद्य-  
 मन्वे ह मन्तः ज्ञानचेतना चेति ज्ञानइतिमानेन चेतन्यात्वा दृष्टो मेघ इवास्तेषाम-  
 विषयो ज्ञानं तत्र परिणतत्वादिति । ९ मेराजकीद. । १० तद्दृष्ट्यात्तत्र निश्च-  
 द्यम् । ११ मित्तकनकत्वात् । १२ कर्मण्यवपत्तयित ।

अ मित्सविद्दृष्टार्थं ननु समसमये सभषत्सत्त्वतः स्या-  
 दक सक्षेम द्रुपाया तदस्त्रिसंसमयानां च निर्णीतिरथ ।  
 दार्भ्यामथाविश्वपादिति मतिरिह \*चक्षैव शक्तिर्द्रयात्स्या-  
 त्संविन्मोक्ष इि घोषो रुधिरतिभिषम्ला तंत्रैर् सौ सदृङ्गव ॥१२॥  
 पर्षाधारादिरूपं हृगंभगमयुतं सन्धेरिभ च भाक्त  
 द्रभ्यानुष्ठानइतुस्तदनुगतमहारागभाच\* कथंचित् ।  
 भदशानानुभावाद्दुपन्नमितंरूपायप्रकर्षस्वभावा  
 माया जीवस्य र्तः स्यात्परमनयगतः स्याच्चरिभ सरागैम् ॥१३॥  
 स्वात्मज्ञान निर्लीना ' गुण इष गुणिनि त्यक्तसबप्रपंचा  
 राग' कथिभ सुदौ खलु फयमपि र्धां सुदिभः स्यात्तु तस्यै ।

१ को भू १२ ज्ञानदर्शनम् । १३ मन्त्रिति वितर्के । ४ तमः समस्त समयः  
 काल इति समनमयस्तस्मिन् । ५ सञ्चक्षम् । ६ समस्तान्बन्धविद्वान्प्रानाम् । ७  
 निषवमेव । ८ ज्ञानरसभाव्यामेव । ९ विक्षेपां भेदस्तेन रक्षितम् । १० ज्ञानरसज्ञ  
 इषाम् । ११ ज्ञानमात्रे । १२ भद्रा । १३ कथि । १४ भद्रा । १५ सत्त्वम्ब-  
 कत्वमेव । १६ पंचविधमाचारं र्धन्यजनपरिजनरोषीषेभेहात् अद्विष्टान्देन द्वार  
 एतदसि दद्यापमा\* पञ्चदशकृत्वा इत्यदिर्के परिष्कारं तद्विष र्ण स्वर्णं वरय तम् ।  
 १७ दसनज्ञानमनुक्तम् । १८ सम्बन्धपरिषम् । १९ सेविर्णं सत् भक्तिर्बिभातो  
 स्यात्वाभिनि मेदिनी । २० इच्छस्वपरमोऽनुष्ठान भाषितानं प्रमादस्तस्व इतुः ।  
 २१ मद्रता कतेन । २२ भेदविज्ञानप्रमादात् । २३ उपर्यामिन् कथापातं प्रकृत  
 स्तोत्रैकस्व स्वभावा येन सः । २४ ता भावः । २५ एगम्बरागचारिभनक्षणे प्रति  
 धारणम् । २६ मित्तं सीनां निर्जीनः । २७ स्वच्छं नर्षं शरीरा विस्तारं संवय-  
 प्रसारणं वा येनानो त्यक्तगर्वद्वन्द्वान्-र्षादाद्वारदुश्चिन्तादिभ्यो-चरा लक्ष्मीकानो  
 प्रजापतेन रक्षितः । ' प्रोच' भेदभेदनि र्वादिभ्यार च प्रजापते " इति मेदिनी ।  
 २८ वा लक्षणा । २९ सुदिभः सुदिभ्यो वाचः । ३० श्रुतिं वादृष्टये । ३१ युनेः ।

केच स्वभावरदेगात् इत्यपी ।

सूक्ष्मत्वाच्च हि गौण यतिवररूपमाः स्याद्विषयस्युत्थंति  
 चक्षुषारिर्ष विराग यदि स्वच्छ निगच्छस्सौऽपि साक्षाद्द्वैरागम् ॥१४॥

इति श्रीमदध्यात्मकमहामार्तण्डामिबाने शास्त्रे मोक्षमोक्षमार्गच्छरण-  
 प्रतिपादकं प्रथम परिच्छेद ।

१ अक्षयम् । २ यतिवररूपं मये इवमाः वेद्याः । ३ अक्षयम् । ४ लोभो  
 बुद्धिभ्रंशो रोगः । ५ अक्षयम् अक्षयं चक्षुषम् ।

## द्वितीय परिच्छेद



\*जीवाजीवायाभवधन्वौ क्रिस संबरथ निर्मरणं ।  
 मोक्षस्वरत्र सम्यग्दर्शनसहाषपिपयमस्त्रिसं स्यात् ॥ १ ॥  
 \*आभवधं धांतर्गत पुष्यं पापं स्वभावतो न पृथक् ।  
 तस्मात्तद्विष्टं स्वच्छ तच्चदृशा घूरिणा सम्यक् ॥ २ ॥  
 जीवमजीवं द्रव्यं तत्र तदन्य मर्तति मोक्षोन्ता ।  
 चित्तपुद्गलपरिणामाः केचित्तयागैजाश्च विमजनमाः ॥ ३ ॥  
 द्रव्याप्यनाद्यनिर्धनानि सदास्मैकानि  
 स्थास्मस्थितानि सदकारणमन्ति नित्यम् ।

१ आभवध इत्यथ तदोर्मध्येऽन्तर्गतं मन्वयत्वमिति आभवधन्वोर्ताप्यम् ।  
 २ ज्ञानादिभेदेनास्मैक्यमप्यत्र वेत्तव्यं सा दृश्यं यस्यासौ जीवश्चाद्विपरीतोऽजीवः ।  
 ३ अस्मिन्जीवोः । ४ जीवाजीवाभ्यामप्ये । ५ सुमात्रुमर्मागमद्वारकश्च आभवधः,  
 अस्तव्यः कर्मत्वत् परस्परप्रदेहासुप्रवेद्यकश्चो कश्चः । आभवधितोयकश्चः । ६ तत्र ।  
 एतदेककर्मसहकश्चो निर्जंत । सर्वकर्मनिमोक्षो मोक्षः । ७ कश्चो जीवपुद्गलमोः  
 एवात्मा । ८ आभवधं च सुखाः संयोग्याः पुनः केचित् संवर्धितोऽमोक्ष विमज-  
 नमावेति भावाः । ९ यथास्व फलवैर्जुम्ते इत्यति वा तासि इत्यादि । १० आस्त-  
 रित्विति । ११ अस्तस्य आस्ता कश्चो येषां तासि सदास्मकानि । १२ एवास्तमि  
 स्थितानि आभवधस्थितानीकर्म ।

\*पृथी शोभ्ये कश्चोत्पन्नितरिते ( २-११ १२ ) अदि कश्चोत्पे ।

\*आभवधवत्तदुत्पिर् इत्यपि ।

एकत्र संस्थितवपूष्यपि मिश्रस्य-

स्रक्ष्याणि तानि कषयामि यथास्वैशक्ति ॥ ४ ॥

गुणपर्ययैषद्द्रव्यं विगमात्सादृशवस्त्वन्वापि ।

सञ्ज्ञप्तमिति च स्याद्द्वाम्योमेकेन वस्तु स्रक्ष्येद्वा ॥ ५ ॥

अन्वयिनः क्लिप्त नित्या गुणाश्च निर्गुणावयवो (वा) ह्यनर्थाः ।

द्रव्याभेदा विनाशमादुर्माना स्वशक्तिभिः स्रक्षत् ॥ ६ ॥

सर्वेष्वविशेषेण हि ये द्रव्यपु च गुणाः प्रवर्तते ।

त सामान्यगुणा इह यथा सदादि प्रमाणतः सिद्धम् ॥ ७ ॥

तस्मिन्नेव निषक्षितवस्तुनि यथा इहेदमिति सिद्धाः ।

ज्ञानादयो यथा ते द्रव्यप्रतिनियमिनी विश्लेषगुणाः ॥ ८ ॥

व्यतिरेकिणो ह्यनित्यास्तस्फले द्रव्यतन्मयाश्चापि ।

ते पर्याया द्विविधा द्रव्यावस्थाविश्लेषपर्यायाः ॥ ९ ॥

एकानेकद्रव्याभ्येकानेकमद्वेषसपिष्टः ।

द्रव्यमपर्यायाऽप्यो वेशावस्थातरे तु तस्माद्भि ॥ १ ॥

१ एतद्द्रव्याभ्येकत्र स्थितान्यपि कदाचित्कालस्य न पश्यति । २ एतद्विद्यमान-  
तिद्रव्येति यथास्वच्छिद । ३ गुण्यते स्थित्यन्ते पृथक्काले इत्यं इत्यंततत्पदेत्ये  
गुणाः पर्ययः पर्ययः स्वभावविभावरूपताया परिश्रमितीत्यर्थः । गुण्यते पर्यय  
गुणपर्ययाः तदुच्यते एतौति गुणपर्ययवद्द्रव्यमिति । अत्र मनुप्यस्यो कर्तव्ये  
हस्तः । ४ द्रव्यस्य एतं अतिमज्जत सम्यग्निमित्तकाल् म्बान्ततववृत्तिरु-  
दमनुत्पत्तः । तथा पूर्वव्यवस्थितं यथा । अतदिपरिधामिकस्यसायेव व्ययो-  
दवाभावात् प्रवृत्ति स्थितिमनतीति एतत्तदव म्बो धोत्वं तुष्टं वा । ५ पूर्वोक्तम्यं  
कालान्तरम् । ६ इत्येवमैक्यकारेण वा । ७ गुण्यते स्थित्या इति निर्गुणाः  
निर्गुणा अवस्थाः सत्त्वया वैद्यं ते निर्गुण्यतया । ८ अन्त्या वैद्यं अवस्थान्तर-  
व्येदा वैद्यं ते । ९ द्रव्यमात्रो वैद्यं ते ।

- या द्रव्यान्तरसमिति विनैष वस्तुमदक्षसपिण्डः ।  
 नैसर्गिकपर्याया द्रव्यज इति क्षपमेव गदित स्यात् ॥ ११ ॥  
 द्रव्यान्तरसयागादुत्पन्ना दणसंघया द्वयज ।  
 वैभाविकपर्याया द्रव्यज इति नीचपुत्रभयाः ॥ १२ ॥  
 एकैकस्य गुणस्य हि येऽनंतांश्च प्रमाणतः सिद्धाः ।  
 तेषां शानिबुद्धिर्वा पर्याया गुणात्मका स्युस्त ॥ १३ ॥  
 पर्यगरण हि य भावा धर्मात्मात्मका (हि) द्रव्यम्य ।  
 द्रव्यांतरनिरपसाम्त पयायाः स्वभावगुणतनवः ॥ १४ ॥  
 अयद्द्रव्यनिमित्ताद्य परिणामा भवति सम्यैव ।  
 पमद्वारण हि त विभावगुणपर्या (य) या द्वयारंभ ॥ १५ ॥  
 वैधिस्यपयविगमप्येति द्रव्य वृत्ति ममकाले ।  
 अन्यः पपयभवेर्धर्मगरण नाशत द्रव्यम् ॥ १६ ॥  
 बहिरंतरगसाधनसञ्चार सति यथह • रंत्वादिषु ।  
 द्रव्यावस्थान्तरा हि प्रादुर्भाव पगादिवश्च सतः ॥ १७ ॥  
 सति कारण यथाम्ब द्रव्यावस्थान्तर हि सति नियमान् ।  
 पूषारम्याविगमा विगमधर्माद् सतिना न सत ॥ १८ ॥  
 पूषारम्याविगमेऽपुनरपयापममुत्पाद् हि ।  
 उभयावस्थाप्यापि च तज्जावाप्यपमुराण तमिन्यम् ॥ १९ ॥  
 मद्द्रव्य मद्य गुण गत्वयाप स्वप्नलणाद्भिन्ना ।  
 तयापद्याम्बिस्त्वं गर्व द्रव्यं प्रमाणत मिष्टम् ॥ २० ॥  
 धाप्याम्यादविनाशा भिन्ना द्रव्यान्तरधेविदिति नयत ।  
 युगपत्मान्ति विविधे इयाद्द्रव्य मन्वृत्तिरिह नष्टेत् ॥ २१ ॥



## तृतीयः परिच्छेदः ।

जीवाश्च द्रव्यं प्रमितिर्विपर्यं तद्गुणान्मत्यनन्ताः  
 पयायास्त गुणिगुणभवास्त च शुद्धा षशुद्धा ।  
 मस्यक स्युस्तदखिलनयार्थानमव स्वरूपम्  
 तेषां मस्ये परमगुरुताऽहं च किंचिज्ज्ञ एव ॥ १ ॥  
 मार्गजीवति या हि जीवितपरं जीवित्प्यतीह घृष  
 जीवः सिद्ध इतीह मक्षणबलात्प्राणास्तु सतानिनः ।  
 भावद्रव्यविभक्ता हि षट्पुधा मेवा कथयिस्वत  
 सासात् शुद्धनय मष्टय विमत्सा जीवस्य ते घतना ॥ २ ॥  
 मस्य्यातीतमदन्नास्तदनुगतगुणान्मद्वयापि भावा  
 एतद्द्रव्यं हि सर्वं चिदभिदधिगमार्त्तनुर्जायन्त्यादिषुज ।  
 मवस्मिमेव पुट्टिः पट इति हि यथा जायत माणभार्त्ता  
 मस्य मस्य प्रवेति मवरमतिपुतः कापि काल न चाहः ॥ ३ ॥  
 जीवस्य यथात्तं विविधविधिपुतं सरदन्तु पाव  
 ज्ञावः कथमार्त्तं परिणमति यथा शुद्धमन्म तावत् ।  
 भावापसाविशुद्धा पटि मस्य विगमेदुपातिर्ममदन्तः  
 मासाद्द्रव्यं हि शुद्धं पटि कथमपि वा पातिवर्मापि नयेत् ॥ ४ ॥  
 मस्य्यातीतमदन्तु पुणपदनिर्गं विभवंभिन्निपा  
 म्ना नामान्या विभवा परिणमनभवान्कथद्वनभदा ।



नित्याज्ञानादिमात्राभिद्बगमकरा मुक्तिमात्रप्रभिन्नाः  
 श्रीसर्ष्वैर्गुणास्ते समुद्रितमपुषा ज्ञात्मवत्त्वस्य तत्त्वात् ॥ ५ ॥  
 मुक्तौ कर्मममुक्तौ परिणमनमः स्वात्मधर्मेषु श्वभ  
 दर्माश्वैश्च स्वकीयागुरुसपुगुणतः स्यागमास्तिदसत्त्वात् ।  
 युक्तेः शुद्धात्मना हि प्रमितिविषयास्ते गुणानां स्वभावा  
 स्पर्यायाः स्युश्च शुद्धा मननविगमरूपास्तु शुद्धम ज्ञानं ॥ ६ ॥  
 संसारश्च प्रसिद्धे परसमयवति प्राणिनां कर्मपार्जा  
 ज्ञानाद्वत्यादि कर्मोत्थयसमुपपन्नमाम्नां स्याच्छांतिता वा ।  
 ये भावाः क्रायमानादि(?)समुपपन्नेमाम्नां सम्यक्त्वाद्या हि  
 बुद्धिभ्रुत्यादिबाधाः कुमतिकुहगचारिभ्रग(?)त्याद्यश्च ॥ ७ ॥  
 चक्षुष्टृणादि वैतदि समसपरिणामाश्च संख्यातिरिक्ता ।  
 सर्वे वैमात्रिकास्ते परिणतिमपुषा धर्मपर्यायसंज्ञाः ।  
 प्रत्यक्षादागमाद्वा अनुमितिमतिता सप्तषाबैति सिद्ध  
 स्वस्मृत्स्मांतः प्रमेदाश्च गठसकसहस्रमोहमायैविविष्यः ॥ ८ ॥ युग्म  
 आत्मासंख्यातद्वैशमयपरिणतिर्जावितत्वस्य तत्त्वा  
 त्पयाय स्यादप्रस्थान्तरपरिणतिरिस्त्यात्मवत्त्वन्तरा हि ।  
 द्रव्यात्मा स द्विषाक्षो विमलसमसभेदादि सर्ष्वज्ञगीत-  
 भिद्द्रव्यास्तित्वदर्शी नयविमजनो रोचनीयः प्रदर्श ॥ ९ ॥  
 कर्मापाय परमवपुषः किंचिदूनं शरीरं  
 स्वात्माज्ञानां तत्रपि पुरुषाकारसंस्थानरूपम् ।  
 नित्यं विहीनमनमिति वा कृषिर्मं भूर्तिवर्धम्  
 चित्तपयाय विमलमिति धामेधमयान्धयंगम् ॥ १० ॥

ये दहा देहभावा गतिषु नरकतिर्यग्मनुष्यादिकास्तु  
 स्वात्मांशानां स्वदेहाकृतिपरिणतिरित्यात्मपर्याय एव ।  
 द्रव्यात्मा चेत्यशुद्धो जिनवरगदित कर्मसंयोगता हि  
 देशावस्थांतरभेददिवरमपुपि स्याद्विबर्त्यन्तरश्च ॥ ११ ॥  
 एकाऽप्यात्मान्वयात्स्यात्परिणतिमयता भावमदास्थिषाक्तः  
 पर्यायायाभयादौ परसमयरतत्वाद्बहिर्जीवसद् ॥  
 भेदज्ञानाधिदात्मा स्वसमयमपुपो निर्विकल्पात्समाहः  
 स्वात्मद्वन्वांतरात्मा विगतसकलकर्मा स चेतस्याद्विशुद्धः ॥ १२ ॥  
 कर्ता भोक्ता क्यचित्परसमयरतः स्याद्विधीनां हि श्व  
 शगादीनां हि कर्ता स समस्तनयता निश्चयात्स्याच्च भाक्ता ।  
 शुद्धद्रव्यार्थिकाद्वा स परमनयत स्वात्मभावात्कराति  
 संक्त चैतान क्यचित्परिणतिनयता भेदशुद्धात्प्यभेद ॥ १३ ॥  
 भेदज्ञानी करोति स्वसमयरत इत्यात्मविज्ञानभाषान्  
 संक्त चैतांश्च श्वत्तदपरमपद् वर्तत साऽपि यावत् ।  
 तावत्कर्माणि बध्नाति समस्तपरिणामान्विषत्त च जीवा  
 बध्नेर्नकेन तिष्ठत्स तु परमपदे क्षम कता च तयाम् ॥ १४ ॥  
 शुद्धाशुद्धा हि भावा ननु युगपदिति स्वकृतस्त्र कथं स्यु  
 रादित्याशुद्धोत्ततमसारिच अद्वैतपयार्था विरुद्धस्वभावात् ।  
 इत्यारका हि क्ष क्षम स्वतु नयमसासुत्यकालऽपि सिद्धे  
 स्वैपामेव स्वभावादि करणवर्तता जीवतश्चस्य भाषान् ॥ १५ ॥  
 सद्गमोदसत स्युस्तद्दुदयमनि(१) भाषमणान्नात्शुद्धा  
 भावात्तयावत्तदौदयमवपरिणामाप्रणाशुद्धा ।

इत्येष शीत्तरीत्या नयनिमजनतो धीप इत्यात्ममाषान्  
 र्हाष्टि कृत्वा विद्युद्दि तदुपरिवनतो माषता शुद्धिरस्ति ॥ १६ ॥  
 संकृशासक्तचित्तो विषयमुत्तरतः संयमादिभ्यपेता  
 जीवः स्यात्सूर्यषट्काश्रुमपरिणतिमान् कर्ममारमबाह्य ।  
 वानेभ्यादा मसक्तः भुतपठनरतस्तीव्रसंक्रुष्टमुक्ता  
 वृत्त्याघास्तीव्रभाषः शुभपरिणतिमान् सद्विधीनां विषाता ॥ १७ ॥  
 शुद्धात्मज्ञानदक्षः भुतनिपुणमतिर्भावदर्शी पुगपि  
 पारिभादिमरुहो विगतसकलसंक्रुष्टमाषो मुनीन्द्रः ।  
 साक्षात्पुष्टापयागी स इति नियमवाचाषभापेति सम्य  
 क्र्मद्याश्र्य सुख स्यात्तपविमजनतो सद्विकृत्याश्रयिकृत्यः ॥ १८ ॥  
 द्रव्यं मूर्तिमद्वास्मयया हि तदिदं स्यात्पुद्गलः संमता  
 मूर्तिभापि रसादिभमवपुषो प्राधाद्य पंचेन्द्रियैः ।  
 सषट्पागमत समसमिति भो छिगम्य बोधान्विता  
 तद्द्रव्यं गूणवृन्दपर्यययुतं संक्षपतो वक्ष्येहम् ॥ १९ ॥  
 शुद्धः पुद्गलश्च एकपरमाणुः सद्गया मूर्तिर्मा  
 स्नहनाभितरुपापरससंस्पर्शादिषमाद्य य ।  
 तज्जायाद्य अगाद्य पुद्गलमिति द्रव्यं हि चैतस्त्रयं  
 सर्वं शुद्धमभद्रबुद्धित इदं चाताविर्गं सस्यया ॥ २० ॥  
 रूतास्त्रिगुणः प्रदन्नगणसंपिण्डी गुणानां व्रज  
 स्नवाप्यषमसुखयोऽस्तिस्त्रिभिर्द्रव्यं यदुदे च तत् ।  
 पयापार्थिकनीतिता हि गणितास्सख्यातदक्षी विधिः ।  
 मम्प्यातीतसम श्रमाद्भवति वानंतमदक्षी विधा ॥ २१ ॥

शुद्धाणुसमाभितास्त्रिसमय तत्रैव चार्णा स्थिता  
 धन्वारं किल रूपगणरससंस्पर्शा धनतामिन ।  
 पूर्तद्रव्यगुणाश्च पुद्गलमया भेदमभन्स्तु त ।  
 पनक परिणामिनाऽपि नियमाद्द्रव्यात्मका सर्वदा ॥ २२ ॥  
 पयायः परमाणुमात्र इति मशुद्धाऽन्वयान्यः स हि  
 कृतस्त्रिगुणैः प्रदेशचयत्रा शुद्धय मूर्त्यात्मन ।  
 द्रव्यस्यति विभक्तनीतिरुपनात्स्याद्भदत्त स प्रिया  
 मूर्त्सातभिर्दनेषुषा भवति सापीति भावात्मकः ॥ २३ ॥  
 पुद्गलान्य मूर्त्समूर्त्सा सस्थानभदमेतमसम् ।  
 जायानपमकागाः पुद्गलवस्तारशुद्धपर्याया ॥ २४ ॥  
 शुद्धेऽर्णा ग्वलुरुपगणरससंस्पर्शाश्च ये निश्चिता  
 मर्णा विज्ञतिषा भिदो हि हरितात्पीता यथात्रादिवत् ।  
 तद्देहात्परिणामरक्षणषमाङ्गान्तर सत्यता  
 पमाणां परिणाम एव गुणपयाय स शुद्ध इत्य ॥ २५ ॥  
 त्रार्णा परम स्थिताऽप्य रसरूपस्पर्शनगोपात्मका (१)  
 ण्कृत्तद्विपर्ययभद्वरुपः पयापरुपाप्य य ।  
 पचरेति मदा भवति नियमाङ्गताप्य तत्राऽऽप्यो  
 पयायः क्षतिरद्विरूप इति तार्णा पमसंज्ञाऽप्यम (१) ॥ २६ ॥  
 स्फंभु मणुशान्तिषु मगतमशुद्धम्यमाप्यु य  
 य पया क्लृप्त रूपगं परमगंस्पर्शाऽप्य तन्न्ययाः ।  
 तेषां य म्यभिता भिदतत्तनुमावड्य तत्पुक्तया  
 व्यप्यगतनिर्वाङ्मय इति पाशुदस्य पयावदत् ॥ २७ ॥

लीलाकाशमित्तप्रदेशवपुषी धर्मात्मकौ संस्थितौ  
 नित्यौ देवगणप्रकृत्परहितौ सिद्धौ स्वतन्त्रौ च ।  
 धर्माधर्मसमाह्वयाविति तथा शुद्धौ भिक्खासि पूयक  
 स्यातां हौ गुणिनामय प्रकलयामि द्रव्यधर्मास्तयोः ॥ २८ ॥

शुद्धा वैश्वगुणाश्च पर्ययगणा एतद्धि सर्वे समम्  
 द्रव्यं स्यान्नियमादमूर्तममल धर्मं ह्यधर्मं च तत्  
 तद्देशाः किञ्च लोकाप्रगणिता पिटीवपुषुः स्वयं  
 पयाया विपलः स एष गुणिनोऽधर्मस्य धर्मस्य च ॥ २९ ॥

धर्मद्रव्यगुणो हि पुद्गलचित्तोरिषदद्रव्ययोरात्ममा  
 गच्छन्नावर्ततोर्निमित्तगतिद्वयत्वं तयोरेव यत् ।  
 मत्स्यानां हि जलादिवद्भवति चोदास्येन सर्वत्र च  
 मत्स्यैकं सकृद्ब्र शब्दनयोगस्यात्मशक्तावपि ॥ ३० ॥

तिष्ठन्नावर्ततोश्च पुद्गलचित्तोरिषावास्वभाव नय  
 द्रव्यत्वं पयिस्त्व मागमटवदृष्ट्याया यथावस्थिते ।  
 धर्मो धर्मममाह्वयस्य गतमाहात्म्यप्रद्विष्टः सदा  
 शुद्धास्य सकृद्ब्र शब्दनया म्यस्यात्मशक्तावपि ॥ ३१ ॥

धर्माधर्माद्ययोर्वै परिणयनमदस्तत्त्वयोः स्वारथनैव  
 धर्माधर्म स्वस्त्रियागुरुलघुगुणत स्यात्प्रधर्मेषु शब्दत्  
 सिद्धात्मर्षिद्वयाः प्रतिसमयमय पययः स्याद्द्वयाश्च  
 शुद्धा धर्मात्मसंज्ञः परिणयिपयतां ज्ञादिबस्तुस्वभावात् ॥ ३२ ॥  
 गगनतत्त्वपनतमनादिप्रतसकृत्तत्त्वनिष्ठासन्मात्मर्षी  
 निविपमाह कर्षयिद्वन्हितं किञ्च तदपमपीह समन्वयात् ॥ ३३ ॥

चावत्स्वाकाशदेशेषु सकलचिद्विषयसत्तास्ति नित्या  
 चावता साकसंज्ञा जिनवरगदितास्तद्ग्रहिये प्रदेशा ।  
 सर्वे संश्लोकसंज्ञा गगनमभिदपि स्वात्मदेशेषु नृश  
 ज्ञेदार्याषापलंभाद्द्विविधमपि च तत्रैव बाध्यत इवा ॥ ३४ ॥  
 यथातीतमदेशा गगनगुणिन इत्याभितास्तत्र पमा  
 सत्यर्थायाश्च तत्त्वं गगनमिति सदाकाशपर्ये विशुद्धम् ।  
 द्रव्याणां चावगाह वितरति सकृदेतद्दि यन्मु म्यमावा  
 द्दर्शितं स्वात्मधर्मात्मतिपरिणमनं धर्मपर्यायसंज्ञम् ॥ ३५ ॥  
 गगनानर्वाशानां पिण्डीभावं स्वभावात्ता भय ।  
 पयाया द्रव्यात्मा शुद्धा नमसं समागम्यात् ॥ ३६ ॥  
 मात्तं द्रव्यं प्रमाणाद्भवति स समयानु क्लिप्त द्रव्यरूपो  
 सांस्कृतिकमदेशस्थित इति नियमात्सा अपि चैकमात्रः ।  
 संख्यातीताश्च सर्वे पृथगिति गणिता निश्चयं काष्ठनक्ष  
 मात्तः काष्ठा हि यः स्यात्समपपटिकारामगादि मसिद्ध ॥ ३७ ॥  
 द्रव्य काष्ठाणुमात्रं गुणगणकमित्तं चाभितं शुद्धभावं  
 तद्द्रव्यं काष्ठसंज्ञं कथयति जिनया निश्चयाद्द्रव्यनीतः ॥  
 द्रव्याणामात्मना सत्यपरिणमनमिदं वचनात्तत्र दृष्ट  
 काष्ठाणुमात्रं च पर्यः म्यगुणपरिणतिपमपयाय एव ॥ ३८ ॥  
 पयाया द्रव्यात्मा शुद्ध काष्ठाणुमात्र इति गीत ।  
 सानेहसा णवधामसंख्याता यत्नराशिरेव च पृथक् ॥ ३९ ॥  
 पयाय किम जीवपुद्गलमर्था या शुद्धशुद्धाहव  
 म्यर्थावयवनात्मकं च गदितं कथञ्चिन्ना न्यना

तस्याः स्याच्च परस्वमतद्रपरस्वं मानमवाप्सिषं  
 तस्मान्मानविध्वपती हि ममयाभिर्भाक्तकामः स यः ॥ ४० ॥  
 एन व्यस्यति कासं निश्चयकालस्य गाति पर्याय ।  
 श्रद्धाः कुर्यादिदिति तद्विचारणीयं यथोक्तनयवादैः ॥ ४१ ॥  
 अस्तित्व स्याच्च पञ्चामपि स्वच्छ गुणिनां विद्यमानस्वभवात्  
 पञ्चानां द्वेषपिडात्समयविरहितानां हि फायस्वमय ।  
 सूक्ष्माणोद्योपधारात्प्रथयविरहितस्यापि इदुत्वसत्त्वात्  
 क्षयत्वं न मदेष्टमयविरहितत्वादि कासस्य क्षयत् ॥ ४२ ॥

इति श्रीमदध्यात्मकमहामार्तण्डाभिधाने शाब्दे  
 द्रव्यविशेषप्रज्ञापकमूर्तस्य परिच्छेदः ।

## चतुर्थ परिच्छेद ।

भाषा वैभाषका ये परसमपरता\* क्यजाः प्राणभाजः  
 सर्वोगीणाश्च सर्वे युगपदिति सदावर्तिनो लोकाभाः  
 य सस्याभैरिक्वस्ते स्वयमनुमितिताऽप्येन चान्हिकास्त  
 प्रत्यक्षज्ञानगम्याः समुदित इति भाषाभवा भाषबन्धः ॥ १ ॥  
 एतेषां स्युमतस्य भुतमुनिकथिता जातयो मर्त्य ताव  
 निष्प्यात्व ससितं तद्वचनिरतिरपि सा यो वचरिभभाः ।  
 क्यलुप्य स्यात्कपायः समसपरिणतौ द्वौ च चारिभमोहः  
 योगः स्यादात्मद्वयप्रचयचसनतावाक्यमनःक्यमार्गैः ॥ २ ॥  
 चत्वारः प्रत्यास्ते ननु क्यमिति भाषाभवा भाषबंध  
 श्वैकत्वाद्स्तुतस्ते बत मतिरिति चेतश्च अकिर्दयाः स्यात् ।  
 एकस्यापीह यद्वैर्दनपचनभाषास्मयकिर्दयाद्वै  
 पक्तिः स्यादाहकश्च स्यगुणगणबलात्पाचकश्चति सिद्धे ॥ ३ ॥  
 मिष्प्यात्वाद्यात्मभाषाः प्रथमसमय एवाश्वये इतयः स्युः  
 पदवाचत्कर्षबंधं प्रतिसमसमये तौ मवेतां क्यंचित् ।  
 नभ्यानां कर्मणामागमनमिति तदात्ये हि नाभाभवाः स्या  
 दायस्यां स्यात्स बंधः स्थितिमिति छयपर्यंतमेषो नयोर्भित् ॥४॥  
 पञ्चादौ ज्ञेहमात्री न परमिह रजीभ्यागमस्यैव इनु  
 र्यावत्स्याद्दुलिषधः स्थितिरपि सद्य तावच्च हेतुः स एव ।



सर्वेष्वेवं कृपायानपरमिह निदानानि कर्मागमस्य  
 वषस्यापीह कर्मस्थितिमतिरिति यावन्निदानानि मावात् ॥५॥  
 सिद्धाः काम्मणधर्मणाः स्वयमिमा रागादिभावैः फिस्त  
 ता हानावरणादिकर्मपरिणामं याति जीवस्य हि ।  
 सर्वांग प्रति सूक्ष्मकासमनिर्घ्नं तुस्पन्देक्षस्थिताः  
 स्याद्द्रव्याभ्रव एव एकसमये बन्धश्चतुर्षान्वयः ॥ ६ ॥  
 प्रकृतिस्यत्पनुभागमदेक्षमेदाश्चतुर्विधा बंधः ।  
 प्रकृतिमदेक्षधन्यौ योगात्स्मात्ता कृपायतश्चान्यौ ॥ ७ ॥  
 युगपद्योगकृपायौ चिह्नपटकंपर्बचितः स्याताम् ।  
 बंधोऽपि चतुर्धा स्यादेतुमतिनिषतक्षत्किता भेदः ॥ ८ ॥  
 स्यागो भावाश्रयणां मिनवरगदितः संवरो भावसंज्ञो  
 धेदज्ञानाश्च स स्यात्स्वसमयवपुपस्वारतम्यः कवचित् ।  
 सा दृष्टारमोपस्थेः स्वसमयवपुपा निर्मेरा भावसंज्ञा  
 नाज्ञा भेदानया स्यात्करणविगतः कापनाद्यप्रसिद्धेः ॥ ९ ॥  
 एकः शुद्धा हि भावा ननु कयमिति जीवस्य शुद्धात्मबोधा  
 ज्ञानाम्यः संवरः स्यात्स इति स्वच्छु तया निर्मेरा भावसंज्ञा ।  
 भावम्यप्रस्वतस्त मतिरिति यदि तमेव शक्तिर्द्वयोः स्या  
 त्पूर्वोपात्तं हि कम म्यमिह विगच्छेतेव वक्ष्येत नम्य ॥ १० ॥  
 अहाभ्यंगाभाव गमति रमः पूर्ववद्मिह मूनम् ।  
 नाप्यागच्छति नम्य यथा तथा शुद्धभावतस्तौ द्वौ ॥ ११ ॥  
 चिन्विद्वेदज्ञानाभिर्विद्वत्स्यात्समापितश्चापि ।  
 कर्मागमननिरोधस्तत्काळं द्रव्यसंवरं गीतः ॥ १२ ॥

गुडादुपयोगादिह निश्चयतपसश्च सयमादेर्भा ।  
 गलति पुरा बर्द्धं क्लिष्ट कर्मैषा द्रव्यनिर्जरा गदिता ॥ १३ ॥  
 मासो क्लिष्ट एव हि तथापि संलक्ष्यते यथाशक्ति ।  
 मासद्रव्यविभेदाद्द्विषिषः स स्यात्समाख्यातः ॥ १४ ॥  
 सर्वोत्कृष्टविशुद्धिर्बोधमती कृत्स्नकर्मलयहेतुः ।  
 ज्ञयः स भावमोक्षः कर्मक्षयना विशुद्धिरय च स्यात् ॥ १५ ॥  
 परमसमाधिबलादिह बोधानरणादिसकलकर्माणि ।  
 विशुद्धम्यो भिन्नीभवति स द्रव्यमोक्ष इह गीतः ॥ १६ ॥  
 देशैर्नैकेन गतेत्कर्मविशुद्धिश्च देशतः सेह ।  
 स्वाभिर्जरा पदार्थो मीक्षस्तौ सर्वतो द्वयोभिरिति ॥ १७ ॥  
 झुममाधैर्युक्ता ये जीवा पुण्यं भवंत्यमेदात्ते ।  
 संकृष्टैः पापं तद्द्रव्यं द्वितीयं च पौत्रलिङ्गम् ॥ १८ ॥  
 ये जीवाः परमात्मबोधपटयः श्लाघ्य त्विद् निर्मलं  
 नाभ्याध्यात्मपयोजमानु कथितं द्रव्यादिभिर्ग स्फुटम् ।  
 जानन्ति प्रमितेश्च शब्दबलतो यो भार्यतः भद्रया  
 ते सदृष्टिपुता भवति नियमात्संवातमाहाः स्वतः ॥ १९ ॥  
 अर्थाभाषयसानवर्जतनयः सिद्धाः स्वयं पानत  
 स्वच्छद्रव्यमतिपादकाश्च शब्दा निष्यन्नख्याः क्लिष्ट ।  
 मो विज्ञाः परमार्यत कृतिरियं शब्दार्थपात्र स्वतो  
 नस्य काव्यमिदं कृतं न विदुषा तद्राजमल्लन हि ।  
 इति श्रीमत्प्यात्मकमल्लमार्तण्डमिधाने शास्त्रे  
 सप्ततत्त्वनवपदार्थप्रतिपादकव्यतुर्थ परिच्छेदः ।

इति ज्ञान्यतमकमल्लमार्तण्ड समाप्तः ।

## एतदधिकमपि उपलभ्यते मूलप्रती

कम्पार्थं फलमेक (का) कञ्ज (एषां) व पाणफलमेक (मयमर्षी) ।  
 वेदयदि जीवरासि (सी) चदणभाषेण तिबिहण ॥ १ ॥

सम्ब त्वल्लु कम्मफलं पापरकार्यं ( या )

तस्स ( सा हि ) कञ्जजुत्तं ( द ) च ।

पाणदि चिदिकता (पाणिचमदिकता) पाणं विन्दति वे जीना ॥ २ ॥

तच्चाणेसण काले समयं बुद्धदि शुचमगेण ।

ओ आराहण समयं पक्कस्ता अणुहयां जम्हा ॥ ३ ॥

पचति मूलपयदी पूर्णं समुहण सम्बमीबाण ।

समुहण परमुहण य माहाजी बज्जया सम्बे ॥ ४ ॥

पण्णदि (परिणमदि) षेण दम्बं तं काले (तक्कालं)

तं मयीदि (सम्पयसि) पण्णदि (त्तं) ।

तम्हा धम्मो (म्म) परिणद्धो भादा धम्मो मुणेअम्भो ॥ ५ ॥

ज्ञानाद्धर्ममपुचिर्भवति भूषि धृणां पुण्यबंधमबंधा ।

ज्ञानास्तौभाग्यमुचैर्बिपुसमतियच्चः प्रार्थितार्थस्य सिद्धिः ।

ज्ञानाहृस्मीर्बिधिषा मयविनयगुणैर्ज्ञानतो बुद्धियोगो

ज्ञानादीर्गस्थनाश्चिद्व्यपतिपद ज्ञानतः सुमसिद्धम् ॥ १ ॥

दइति मदनबद्धिर्मानसं तावदेव

अमयति तनुमार्जा हृत्तइस्तावद्ब ।

छसयति गुरुहृष्णा राक्षसी तावदेव

छुरति इदि मिमोक्षी वाक्यर्मशो न यावत् ॥ २ ॥

शक्यो वारयितुं कसेन हुतसुक् छप्रेण सूर्यातपो  
 नागन्द्रो निश्चिताकृत्रेण समदो दण्डेन गोगवृभाः ।  
 व्यापिर्धेपअसर्गप्रदेष विविधैर्धेप्रप्रयोगैर्दिप  
 सवस्यौपपयस्ति शास्त्रविहित मूर्खस्य नास्त्यौपधं ॥ ३ ॥  
 ज्ञान मददर्पहरं तेनैव माघति तस्य कां वैधः ।  
 अमृतं यस्य विपायते तस्य चिकित्सा कय क्रियते ॥ ४ ॥

अथ प्रशस्तिका

वर्षे वेदाब्धिसिद्धीन्दु (१८४४) पित्त अमले (१) भाषणे मासि पूर्वे  
 कृष्ण पक्षे हि पशुत्या निजविमलकरात्याश्विनाथस्य गौरे ।  
 वृन्दावत्या नगर्या व्यसनहरिचूपे भीमुरेन्द्रादिकीर्तिः  
 नाम्ना भहारकेन्द्री युषपतिमहिताऽयु लिसैस्वातिभावात् ॥ १ ॥  
 मिनादिदासस्य विपदिचिताऽप्र पुस्तादशुद्धाश्च लिपीकृतं मे  
 श्रीप्राप्तयाज्ञानतया अशुद्धं यद्येखितं तद्विपुषैर्विशोष्यम् ॥ २ ॥  
 विपदिभ्यः प्रसर्गसुखास्याप्यनार्थं लिपीकृत मया ।



श्लोक	पृष्ठ	श्लोक	पृष्ठ
निर्गम विद्यारम्भोत्तर	२५२	नक्षत्रौ केहम्बो	२६१
निश्चिन्तौटीह	२५६	न्यतिः किंचो इतिमा	२६
परमसमाधि	२६३	सम्बो बन्धः सुताः	२६
पर्यय विद्य	२६५	सदा पुत्रवरेणः	२६१
पत्नयो इत्यन्ता	२६५	सद्व्यवहारसङ्घ	२६१
पर्ययः परमपुत्राज	२६७	सदा देवमुत्पन्न	२६
पूर्वाभ्यासियमे	२६१	सुखापुत्रवर्णविह	२६
पंचाचारविस्व	२७७	सुखसुखा हि	२६
प्रहृ निर्मिबन्धुभाग	२६१	सुदेवपुत्रमभित्ता	२१
प्रबन्ध माने विद्यार्	२४१	सुदेव्यो सङ्घ	२
प्रालेखीयनि	२६३	सुमन्मैरुता	२
श्रेष्ठ इत्थं प्रमाणात्	२	सति काले नक्षत्रं	३
बहिरंतरंग्याचन	२६१	सर्वत्रयं सच पुत्रा	३
माता वैमाविद्य	२६१	सर्वमोहकैः	
मैरुदानी कपोति	२७५	सम्बन्धव्यवहारा	
मिन्वात्वात्पम	२६१	सर्वेभ्योऽप्येव	
मुक्तकथ्यमुक्तौ	२६४	सर्वेभ्योऽप्येव	
मोक्षो बद्धित एव	२६३	सिद्धा धर्मनक्षत्रं	
मोक्षा न्यमप्रवेष्ट	२४३	सौम्यात्कथयिष्या	
मोक्षा संज्ञकती	२४२	संज्ञकतीत्यवेष्टा	
नक्षत्रानि विन्दन्तः	२४४	संज्ञकतीत्यवेष्टे	
नाकल्पस्य	२६१	संज्ञकतेऽत्र प्रसिद्धे	
नुपपद्योपकथयौ	२६३	स्वयिषु द्वन्द्वव्यरिषु	
वे जीवा परमात्म	२६३	श्रीहार्मन्मानि	
वे वेरा देहमात्रं	२६५	स्वप्नमाने निर्वीज	
वा इत्यन्तत्तमिर्ति	२६१	स्वप्नमेवौत्पुत्रता	
सङ्गिरवपुत्रैः	२६३	स्वीयव्यवहारं	
कोशव्यवहार	२६८		



इतिकर्तव्यतामूढः पर्याकुलितचतस ।  
 चिंतयामास चित्ते स्वे मयदनो नवाद्देहः ॥ १७३ ॥  
 निहृष्याय गृहं यामि किं वा गृह्यामि संयमम् ।  
 इति संशयदोषार्यां क्षणं नास्यायि तन्मनः ॥ १७४ ॥  
 उदाहस्यावशिष्टं यत्कार्यं कृत्वानया समम् ।  
 कांतया दुर्लभान् भोगान् सुंभामीति यथप्सितान् ॥ १७५ ॥  
 इदमाकृतं तु म चित्ते पतिते स्वमनीपितम् ।  
 कस्याग्रे कथयाम्यत्र व्रीहयाहृतमानसः ॥ १७६ ॥  
 कदं पदं मुनीशानां दुर्द्धरं महतामपि ।  
 अस्माहृष्टा पराकाः क दृष्टाः कामभुर्भगकैः ॥ १७७ ॥  
 अथ वैभ्र क्तोम्यत्र गुरुवाक्यमसूतणात् ।  
 अयं ह्येष्टो मम आता मामूल्लङ्घ्यापरायणः ॥ १७८ ॥  
 विमृश्योमयपक्षेऽपि कृत्याकृत्यविश्वपतः ।  
 सन्नस्यः कृतपैर्योऽसौ दीक्षामादातुगुघतः ॥ १७९ ॥  
 चिंतित तन चित्ते स्व सन्नस्येन विमृश्यता ।  
 गमिष्यामि पुनर्गोह यथाकालमतः परम् ॥ १८० ॥  
 विमृश्यैतत्सच्छ्रः स ममदेवो नताननः ।  
 अथादीन्मुनिमुचिष्य यथा पूर्तपिचष्टितम् ॥ १८१ ॥  
 मुने परोपकराय बद्धकक्ष महातप ।  
 मयि वीने कृपां कृत्वा देहि दीक्षां स्वमार्गतीम् ॥ १८२ ॥  
 विज्ञातो मुनिना तूर्णं साधपिज्ञानचक्षुषा ।  
 गीपयन्नपि दुर्लभं स्वामिमायं द्विजोत्तमः ॥ १८३ ॥

दीक्षामादातुक्कामाऽपि विद्यत सामिलापवान् ।  
 विरागा भवितव्यस्यै दीक्षां श्वा महाभुनि ॥ १८४ ॥  
 अयादायापि नैर्ग्रीषी दीक्षां सर्वममक्षत ।  
 दग्ध स्मरानलनति इति गत्यमधार्यत् ॥ १८५ ॥  
 मुग्धां सपूणतारुण्यां पूणचानिभाननाम् ।  
 श्वाभ्याम्यदं पत्न्य दीनां मृगाक्षी तां मुमस्मराम् ॥ १८६ ॥  
 यनस्तनभरानघ्रां कामस्यां पद्मवापराम् ।  
 मामृत विरहस्यात्तां चित्तयती मुहुर्मुहुः ॥ १८७ ॥  
 एव विनयतस्तस्याजस्रमच्छिद्यपारया ।  
 स्वाध्यायं ध्यानमप्यतश्चानमासीत्तया व्रतम् ॥ १८८ ॥  
 भयकदा स साधमो गणी सपसमन्वित ।  
 विहरामागतो भूया वदमानाभिष पुर ॥ १८९ ॥  
 बाषाध्यानमन्त्राणु स्थिता सर्वेऽपि सपता ।  
 पापान्तर्गणेण चैरात्र्यं श्रुत्वा मप्यानमिदये ॥ १९० ॥  
 पारणम्य कृत प्याजादनुग्रामं यनाम स ।  
 भयद्वरगणगिनीं भाया श्वा ममुमुष ॥ १९१ ॥  
 पयन्वधि वांथ गर्गितति म्म म गम्भर ।  
 भय भुजापि कांतां तां गालघारां गर्वाशुक्ताम् ॥ १९२ ॥  
 ताण्यजस्रधर्मोत्तं वृष्टीं कामदूयाविर ।  
 मर्षीविर विना तांय मामृते विरहाशुक्ताम् ॥ १९३ ॥  
 विनयप्रिति पागोण प्रयाद् ग्राममर्वाविप्रनु ।  
 गांयपरागारुणा भानु मर्षीषी य निर्गगनाम् ॥ १९४ ॥